Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद मंत्रों के देवता

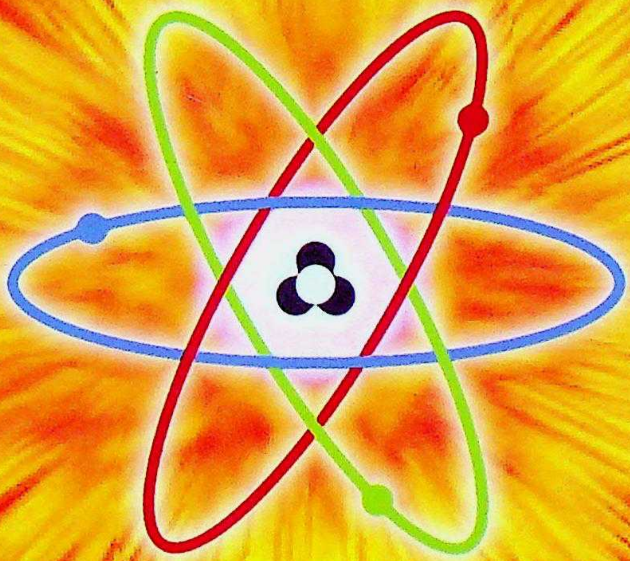

गुरुदत्त

143
-V
87

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति।।

मंत्र-मंत्र में प्रयत्न से उसके देवता (वर्णित विषय) को जानना चाहिए।
जो कोई मंत्र के देवता को जानता है, वह ही उसके अर्थ को समझ सकता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167987
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद मंत्रों के देवता

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8868821468
Web.: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद मंत्रों के देवता

Central Library
167987
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: aarshsahitya.com

081
167987

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-११० ००१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
099.9143
GUR-V

© सर्वाधिकार प्रकाशकाधीन

मूल्य : ₹ 100.00

प्रकाशक : **हिन्दी साहित्य सदन**
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग
समीप करोल बाग पुलिस स्टेशन, नई दिल्ली-5
फोन : 23553624/23551344/9213527666
www.hindisahityasadan.com
e-mail : hindisahityasadan@gmail.com
indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2015

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स, दिल्ली-110 032

VED MANTRON KE DEVTA *by* Guru Datt

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रकाशकीय

लेखक श्री गुरुदत्त जी का परिचय देने की विशेष आवश्यकता नहीं है। इस सदी में महर्षि स्वामी दयानन्द से प्रेरणा प्राप्त कर कई दिग्गज विद्वानों ने वेदान्वेषण को अपना जीवन समर्पित कर दिया था। पं० सातवलेकर, पं० विश्वबन्धु के नाम सर्वोपरि हैं। परन्तु श्री गुरुदत्त जी की विशेषता है सरल भाषा में विवेचना। 'वेद और वैदिक काल', 'वेद प्रवेशिका', 'वेदों में इन्द्र', 'वेदों में सोम' पढ़ें तो ऐसा लगता है मानो सृष्टि-रचना का रहस्य खोलकर सामने रखा जा रहा है।

श्री गुरुदत्त जी विज्ञान के विद्यार्थी होने से विश्लेषणात्मक बुद्धि रखते थे। इस पृष्ठ-भूमि पर उन्होंने वेदाध्ययन आरम्भ किया तो पाया वेदों में सृष्टि-रचना का इतिहास है तथा साथ ही अध्यात्म एवं जीवन-यापन सम्बन्धी ज्ञान भी भरा पड़ा है। केवल वेद मन्त्रों के अर्थ करने के रहस्य का ज्ञान होना आवश्यक है।

निरुक्ताचार्य यास्क एक स्थान पर लिखता है कि मन्त्रों का निर्वचन (अर्थ) करते समय तीन बातों का ध्यान रखना चाहिए—(१) जब हम मानते हैं कि वेद एक ज्ञानवान् द्वारा (परमात्मा द्वारा) दिया ज्ञान है तो मन्त्रों में विरोधी अर्थ नहीं हो सकते। (२) अर्थ तर्क द्वारा सिद्ध हो सकने चाहिएँ तथा (३) जिस देवता (विषय) का वर्णन हो रहा हो, अर्थ उसके अनुरूप ही होंगे।

इन बातों के रहस्य को समझकर, अपनी विश्लेषणात्मक बुद्धि द्वारा श्री गुरुदत्त जी ने वेद मन्त्रों के अर्थ किए हैं। उनकी युक्तियुक्त विवेचना एक सामान्य शिक्षित व्यक्ति को भी प्रभावित करती है।

प्रस्तुत रचना के कुछ अंश 'शाश्वत वाणी' पत्रिका में धारावाहिक रूप में लगभग १५-१६ वर्ष पूर्व छप चुके हैं परन्तु पुस्तकाकार में सम्पूर्ण रूप में पहली बार प्रकाशित हो रही है। रचना की पाण्डुलिपि लगभग १५ वर्षों से कहीं रखी गई थी तथा उपलब्ध नहीं हो पा रही थी। जब मिली तो देखा कि इसका सम्पादन होना शेष है परन्तु हमारा दुर्भाग्य यह रहा कि सम्पादन के उपरान्त पाण्डुलिपि श्री गुरुदत्त जी को दिखाई नहीं जा सकी। वैसे सम्पादन वेद-विषयक उनकी सभी रचनाओं को ध्यान में रखकर किया गया है सम्भव है विवेचना में कहीं अस्पष्टता रह गई हो। इस पर भी भाव अत्यन्त स्पष्ट हैं।

—योगेन्द्र दत्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

क्रम

उपोद्घात्

देवता—मन्त्रों का देवता—देवताओं के विषय में सामान्य बातें ९

खण्ड एक

प्रथम अध्याय—अग्नि-१ ३५

द्वितीय अध्याय—माईथॉलोजी ४४

तृतीय अध्याय—अग्नि-२ ५३

चतुर्थ अध्याय—वैश्वानर अग्नि ५९

पंचम अध्याय—अग्नि के विषय में पाश्चात्य मत ६८

षष्ठ अध्याय—माइथॉलोजी—२ ८३

खण्ड दो

प्रथम अध्याय—इन्द्र देवता ९२

द्वितीय अध्याय—इन्द्र के सामान्य कार्य ९६

तृतीय अध्याय—इन्द्र का प्रथम कार्य १००

चतुर्थ अध्याय—कास्मोगानी ११२

पंचम अध्याय—इन्द्र के कार्य ११६

षष्ठ अध्याय—इन्द्र के साथी १२९

सप्तम अध्याय—इन्द्र और वायु १३५

अष्टम अध्याय—अश्विनौ १३९

खण्ड तीन

प्रथम अध्याय—सूर्य १५४

द्वितीय अध्याय—सूर्य सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिकों की खोज १६५

प्रमाणानामनुक्रमणिका १६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपोद्घात

देवता

'देवता' दिव्य गुणयुक्त पदार्थ को कहते हैं। पदार्थ से अभिप्राय है वह सब-कुछ, जो शब्दों में वर्णन किया जा सके, अतः दिव्य गुणयुक्त पदार्थ व्यक्त अथवा अव्यक्त दोनों हो सकते हैं। परमात्मा से लेकर पृथिवी-पर्यन्त कोई भी पदार्थ वर्णनीय हो सकता है। यदि उसमें कोई दिव्य गुण हो तो वह देवता हो जाएगा।

देवता शब्द 'दिव्' धातु से व्युत्पन्न है। 'दिव्' का अर्थ है दीप्ति-(चमक)-युक्त अर्थात् अपने गुणों से प्रकट होनेवाला।

दिव्य पदार्थ में अन्य गुण भी हो सकते हैं। कम से कम एक गुण विशेष होने से ही वह दिव्य होगा और देवता माना जाएगा।

वेदों में ऐसे कई दिव्य पदार्थों के नाम आए हैं। जब उनमें से किसी दिव्य पदार्थ की स्तुति या वर्णन वेदमंत्र में हो तो वह उस मंत्र का विषय (देवता) कहा जाता है।

दिव्य गुणवाले पदार्थ मंत्र का विषय न होने पर भी कभी किसी विशेष प्रयोजन से मंत्रों में प्रयुक्त होते हैं। ऐसे पदार्थ होते तो देवता ही हैं। वहाँ पर वे अपने गुणों से देवता होते हैं।

उनका दिव्यत्व उनके कर्म से जाना जाता है। शौनक कहता है—

स्तोतृभिर्देवता नाम्ना उपेक्षेतेह मन्त्रवित्॥
तत्खल्वाहुः कतिभ्यस्तु कर्मभ्यो नाम जायते।
सत्त्वानां वैदिकानां वा यद्वान्यदिह किंचन॥

बृहद्दे० १-२२, २३

अर्थ है—मंत्रों को जाननेवाले स्तोताओं के द्वारा देवताओं के नाम से मंत्रों को जाननेवाला होता है।

इसी से कहा जाता है कि कर्म से ही नाम का ज्ञान होता है। वेद का वास्तविक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ अथवा जो कुछ भी सम्बन्धित बात है, वह इन नामों से ही जाना जाता है।

इसका अभिप्राय यह है कि मंत्र में शब्दों अथवा देवताओं के नामों का अर्थ उनके कर्म से जाना जाता है जो मंत्र में ही वर्णन किया होता है।

एक उदाहरण से बात स्पष्ट हो जाएगी। मंत्र है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्। होतारं रत्नधातमम्॥

(ऋ० १-१-१)

इस मंत्र का देवता अग्नि है। इसमें अग्नि की ही स्तुति है। अर्थ में अग्नि का ही वर्णन किया है।

अग्नि (रचना के समय) सामने उपस्थित हो यज्ञ कर रही थी। वह 'होता' है और धन-सम्पदा देनेवाली है।

इस मंत्र में अग्नि के दिव्य गुणों की ओर संकेत किया गया है। इस कारण अग्नि इस मंत्र का देवता है।

अग्नि नाम अग्रणी कर्म से पड़ा है। सबसे पहले, रचना-कार्य में यह यज्ञ करती है। जो पहले कर्म करे, वह अग्रणी (अग्नि) है। अग्रे से अग्नि नाम पड़ा है।

इस प्रकार शौनक ने कहा है कि वेदमंत्रों में दिव्य गुणवाले पदार्थों की स्तुति की जाती है और उस स्तुति से ही देवता के नाम की सिद्धि होती है।

एक अन्य उदाहरण ले सकते हैं। इन्द्र के विषय में एक मंत्र है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्य्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-१)

मंत्र का देवता इन्द्र है और इन्द्र की व्याख्या में यह मुख्य वचन है। कहा है—(यः मनस्वान् एव प्रथमः जातः) जो मन के गुणोंवाला पहले ही पैदा हुआ। (देवः देवान् क्रतुना परि-अभूषत्) जो (दिव्य गुणोंवाला) संसार के देवताओं को अपने कर्म से, अपनी कर्त्तव्य-शक्ति से सुन्दर (उपकारी) करता है। (यस्य शुष्मात् रोदसी अभ्यसेताम् नृम्णस्य मह्ना) जिसके बल से पृथिवी, आकाश पृथक्-पृथक् होते हैं और जिसके [सामर्थ्य] को महत्त्वपूर्ण कहा है, जिससे सब डरते हैं। धन (सामर्थ्य) की महिमा है। हे [विद्वान्] मनुष्यो! वह इन्द्र है।

पहली बात जो इस मंत्र में समझने योग्य है, वह यह कि इन्द्र को 'प्रथमः जातः' कहा है।

अग्नि को 'प्रथमः जातः' नहीं कहा, वरन् समक्ष उपस्थित (पहले ही उपस्थित) कहा है, अर्थात् अग्नि (आदि-अग्नि) पैदा नहीं हुई। और इन्द्र को सृष्टि की उत्पन्न होनेवाली वस्तुओं में पहले उत्पन्न हुआ कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जहाँ अग्नि के विषय में कहा है कि यह धन-रत्नादि (अर्थात् जगत् के सब पदार्थ) देनेवाली है, वहाँ इन्द्र को कहा है कि उससे संसार के अन्य दिव्य गुण-युक्त पदार्थों का निर्माण होता है और जिससे सब डरते हैं अर्थात् पृथिवी और आकाश पृथक्-पृथक् होते हैं और जिसकी महान् सामर्थ्य है।

यह हम आगे चलकर जब 'इन्द्र' का विस्तार से वर्णन करेंगे, तब बताएँगे कि यह कैसे पैदा होता है और किस प्रकार वस्तुओं को बनाकर उनको उपकारी करता है और साथ ही यह भी कि यह किस कारण भयंकर कार्य भी कर सकता है।

यहाँ तो इतना बताने से ही अभिप्राय है कि मंत्र में ही देवता को पहचानने के लक्षण वर्णन किए हैं।

जहाँ तक इन्द्र के नाम का सम्बन्ध है, शतपथ ब्राह्मण में इसके नाम की व्युत्पत्ति इस प्रकार कही है—

स योऽयं मध्ये प्राणः। एषऽएवेन्द्रस्तानेष
प्राणान्मध्यत ऽइन्द्रियेणेन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्धऽइन्धो ह वै तमिन्द्र''''।

(शतपथ ६-१-१-२)

अर्थ है—वह जो इस (परमाणु) के मध्य में प्राण (शक्ति) है, यह ही इन्द्र है। अपने इन्द्रिय अर्थात् बल से इन्हें (प्राणों को) दीप्त [प्रकाशित] करता है। दीप्ति करने से ही यह 'ईन्द्ध' अर्थात् इन्द्र कहा जाता है।

अर्थात् 'ईन्द्ध' (दीप्ति) प्रकाशित करने से इसका नाम इन्द्र पड़ा। शौनक ने भी कहा है—'कर्म देखकर नाम रखा गया है।'

इस प्रकार इन्द्र देवता है। वह दिव्य गुणवाला पदार्थ जिसका नाम उसके गुण, कर्म, स्वभाव से रखा जाता है, जिससे गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन किया जाए, वह उस मंत्र का देवता अर्थात् विवेच्य विषय कहा जाता है। कभी किसी अन्य प्रयोजन से भी किसी देवता का नाम मंत्र में आ जाता है, परन्तु तब वह मंत्र का देवता नहीं होता।

मंत्र का देवता

यास्काचार्य देवताओं का प्रकरण आरम्भ करते हुए अपने ग्रन्थ 'निरुक्त' में कहता है—

अथातो दैवतम्। तद्यानि नामानि प्राधान्यस्तुतीनां देवतानां तद् दैवतमित्याचक्षते। सैषा देवतोपपरीक्षा। यत्काम ऋषिर्यस्यां देवतायामार्थपत्यमिच्छन् स्तुतिं प्रयुङ्क्ते तद्दैवतः स मन्त्रो भवति। *(यास्क—निरु० ७-१)*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका अर्थ है—अब देवताओं का प्रकरण आरम्भ होता है। तो जो नाम प्रधान स्तुति [गुण, कर्म, स्वभाव का विशेष वर्णन] वाले देवताओं के दिए हैं, वे देवता प्रकरण वाले हैं। (अर्थात् जिनका वर्णन मंत्र में है, वे मंत्र के देवता होते हैं।)

इसका अभिप्राय यह है कि जब मंत्र में किसी का विशेष गुण, कर्म, स्वभाव वर्णन किया गया हो तो वह उस मंत्र का देवता होता है।

इसी बात को शौनक एक अन्य प्रकार से कहता है। वह अपने ग्रन्थ 'बृहद्देवता', के आरम्भ में ही लिखता है—

वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे मन्त्रे प्रयत्नतः।
दैवतज्ञो हि मन्त्राणां तदर्थमवगच्छति॥
तद्धितांस्तदभिप्रायान् ऋषीणां मन्त्रदृष्टिषु।
विज्ञापयति विज्ञानं कर्माणि विविधानि च॥
न हि कश्चिदविज्ञाय याथातथ्येन दैवतम्।
लौक्यानां वैदिकानां वा कर्मणां फलमश्नुते॥

(बृह० १-२,३,४)

"मंत्र-मंत्र में प्रयत्न से उसके देवता [वर्णित विषय] को जानना चाहिए। जो कोई मंत्र के देवता को जानता है, वह ही उसके अर्थ को समझ सकता है।

"वह व्यक्ति ही ठीक-ठीक सम्मति दे सकता है कि मंत्र कहने का उद्देश्य क्या है। वह उद्देश्य जो उस मंत्र में तब निहित था, जब वह मंत्र ऋषि पर प्रकट हुआ था।

"जिसको मंत्र के देवता का ज्ञान नहीं, वह न तो उस मंत्र के अर्थ को समझता है, न ही उसमें कहे कर्म को करने में सफल होता है।"

मंत्र के देवताओं का ज्ञान कैसे होता है, यह भी बताया गया है। प्रत्येक सूक्त अथवा मंत्र अथवा मंत्रांश पर बताया गया है कि उस सूक्त, मंत्र अथवा मंत्रांश में किस देवता की स्तुति की गई है (अर्थात् उसके गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन किया गया है)। यह प्रायः उन ऋषियों ने ही कहे हैं, जिन पर मंत्रों का आविर्भाव हुआ है।

इन मंत्रों के देवताओं का ज्ञान मंत्र के भाव से भी पता चल जाता है। मंत्रों में स्तुत्य देवता उस मंत्र अथवा सूक्त में मध्यम पुरुष के रूप में सम्बोधित किया हुआ होता है। यदि ऐसा न भी हो तो मन्त्रार्थ करने से पता चल जाता है कि मंत्र किसके विषय में कहा गया है।

कभी-कभी पाठक को ऐसा अनुभव होना भी संभव है कि ऊपर कहा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता मंत्रार्थ से सिद्ध नहीं होता। उस स्थिति में पाठक अथवा भाष्यकार को यह स्वतन्त्रता होती है कि वह अपनी बुद्धि से मंत्र का अर्थ लगाए और मंत्र में वर्णित विषय का ज्ञान प्राप्त करे।

इस विषय में निरुक्ताचार्य ने भी एक सिद्धान्त प्रतिपादित किया है। निरुक्ताचार्य कहता है—

....अयं मन्त्रार्थचिन्ताऽभ्यूहोऽभ्यूढः अपि श्रुतितोऽपि तर्कतः। न तु पृथक्त्वेन मंत्रा निर्वक्तव्याः, प्रकरणश एव तु निर्वक्तव्याः॥

(निरुक्त १३-१२)

अर्थात्—यह मंत्र के अर्थ के लिए चिन्ता-विचार-स्फूर्ति दिखाई है। (कहा है कि) वेद का अर्थ तर्क से पता चलता है। पृथक्-पृथक् मंत्र का निर्वचन नहीं किया जाता और न ही प्रकरण छोड़कर मंत्र का अर्थ किया जाता है।

इसका अभिप्राय यह है कि निर्वचन [निश्चय से अर्थ] करने के लिए तीन बातों का ध्यान रहना चाहिए—(१) वेद में परस्पर-विरोधी अर्थ नहीं हो सकते। वेदज्ञान एक ज्ञानवान् द्वारा कहा हुआ है, इस कारण इसमें एक स्थान का दूसरे स्थान से विरोध नहीं होना चाहिए। (२) तर्क से अर्थ सिद्ध हो सकना चाहिए। (३) प्रकरण, जिस देवता का (विषय का) वर्णन हो रहा हो, उसके अनुसार ही अर्थ होंगे।

यहाँ तर्क के विषय में बता दें, तो ठीक होगा। कुछ लोग तर्क को मिथ्या अर्थ का दर्शन करानेवाला मानते हैं। स्वामी शंकराचार्य और उनकी परिपाटी के अन्य विद्वान् भी तर्क पर विश्वास नहीं करते।

परन्तु सांख्य, न्याय और ब्रह्मसूत्रों में तर्क को अर्थ सिद्ध करने में समर्थ माना है। यह अवश्य कहा है कि तर्क आधारयुक्त होना चाहिए, अर्थात् किसी प्रत्यक्ष घटना के आधार पर किया गया तर्क उतना ही विश्वास-योग्य होता है जितना कि प्रत्यक्ष देखा होता है।

प्रत्यक्ष देखे हुए के आधार पर तर्क का अभिप्राय यह है कि जब हम प्रत्यक्ष में बार-बार किन्हीं दो वस्तुओं, घटनाओं अथवा विचारों का साथ-साथ होना देखें तो एक के होने से दूसरे का भी होना तर्क से मान लिया जाता है।

उदाहरण के रूप में, हम धुआँ और आग को साथ-साथ ही देखते हैं। इस कारण धुआँ देखकर वहाँ अग्नि का होना तर्कसिद्ध है। इसी प्रकार प्रत्येक उत्पन्न होनेवाले को मरता देखते हैं। इस कारण किसी बालक के जन्म के समय ही तर्क से कहा जा सकता है कि वह कभी मृत्यु को भी प्राप्त होगा।

इस शर्त के साथ ही तर्क का आधार प्रत्यक्ष हो तो इससे जो सत्य का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दर्शन होता है, वह सिद्ध ही है।

निरुक्ताचार्य आगे कहता है—

"मनुष्या वा ऋषिषूत्क्रामत्सु देवानब्रुवन्। को न ऋषिर्भविष्यतीति। तेभ्य एतं तर्कं ऋषिं प्रायच्छन्। मन्त्रार्थचिन्ताभ्यूहमभ्यूळहम्। तस्माद्यदेव किं चानूचानोऽभ्यूहत्यार्षं तद् भवति॥

(निरुक्त १३-१२)

अर्थ है—ऋषियों के अपने सुकृत लोकों को चले जाने पर मनुष्य देवताओं (विद्वानों) से बोले—कौन हममें अब ऋषि (मंत्रद्रष्टा) होगा? उनको (कहा गया कि) तर्क तुम्हारा ऋषि (मंत्रद्रष्टा) होगा। मंत्रार्थ में संगति को देखना चाहिए। जो पूर्वापर के अनुसार (तर्क से सिद्ध हो) वही अर्थ होगा।

इसका अभिप्राय यह है कि जहाँ मंत्र अथवा सूक्त पर उल्लिखित देवता पर सन्देह हो, वहाँ तर्क द्वारा पूर्वापर और प्रकरण से देवता का निश्चय किया जा सकता है। देवता से अभिप्राय है मंत्र का विषय।

इस सबका अभिप्राय यह है कि सूक्तों, मंत्रों अथवा मंत्रांशों पर जो देवता लिखे रहते हैं, वे मंत्र का विषय होते हैं और मन्त्रार्थ करते समय उनका ध्यान रखना चाहिए। जहाँ सन्देह हो, वहाँ मंत्र के अर्थ में से ही युक्ति द्वारा देवता का पता किया जाता है।

: १ :

पूर्व इसके कि हम देवताओं की गणना तथा उनके गुण, कर्म, स्वभाव के विषय में चर्चा आरम्भ करें, वेद के विषय में कुछ-एक बातें समझ लेनी आवश्यक हैं। उनको ध्यान में रखकर ही मन्त्रार्थ किए जाएँगे तो वेद में वर्णित किए देवताओं का ज्ञान ठीक-ठीक हो सकेगा।

जब देवताओं के गुण, कर्म, स्वभाव को वेदमंत्रों से ही जानना है तो वेदार्थ करने पर विचार करना ही पड़ेगा, अन्यथा वेदार्थ अशुद्ध होंगे और मंत्रों में वर्णित देवताओं का भी ज्ञान ठीक नहीं हो सकेगा।

उस शास्त्र को, जिससे वेदार्थ करने के ढंग का ज्ञान हो, निरुक्त कहते हैं। कई निरुक्ताचार्य हुए हैं। सबसे प्राचीन निरुक्ताचार्य, जिनका ग्रन्थ आज मिलता है, यास्क हैं। यास्क के निरुक्तशास्त्र में ही कुछ-एक उनसे पहले के निरुक्ताचार्यों का उल्लेख तो पाया जाता है, परन्तु उनके ग्रन्थ नहीं मिलते। यास्क के उपरान्त के कुछ-एक आचार्यों के लेख इस विषय पर मिलते हैं। कालान्तर में दुर्गाचार्य एक विख्यात निरुक्ताचार्य हुए हैं। इनका निरुक्तशास्त्र स्वतंत्र लिखा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुआ नहीं है। उन्होंने यास्क के निरुक्तशास्त्र के आधार पर ही अपने ग्रन्थ की रचना की है। कुछ अन्य निरुक्ताचार्य भी हुए हैं।

शौनक अपने बृहद्देवता ग्रन्थ में कुछ-एक के नामों का उल्लेख करता है। उसने (१-२४, २६) में निम्न निरुक्ताचार्यों के नाम गिनाए हैं—मधुक, श्वेतकेतु, गालव, यास्क, गार्ग्य और रथीतरा। शौनक अपने को भी इनमें से एक मानता है।

शौनक पहली बात यह मानता है—

सर्वाण्येतानि नामानि कर्मतस्त्वाह शौनकः।
आशी रूपं च वाच्यं च सर्वं भवति कर्मतः॥

(बृहद्देवता १-२७)

अर्थ है—शौनक कहता है कि उसका मत है—नाम कर्म से उत्पन्न होते हैं अर्थात् रूप और वचन भी तो कर्म से ही होते हैं।

ऊपर दिए गए नामों वाले विद्वानों में कुछ-एक कहते हैं कि नौ लक्षण हैं, जिनसे हमें देवता के नाम का ज्ञान प्राप्त होता है और कुछ-एक कहते हैं कि चार लक्षण हैं। शौनक का मत यह है कि वे सब भी कर्म से ही प्रकट होते हैं।

यास्क अपने 'निरुक्त' में केवल देवताओं के नाम के लिए ही नहीं, वरन् वेद में आए सब नामों के विषय में इस प्रकार कहता है—

इतीमानि चत्वारि पदजातान्यनुक्रान्तानि। नामाख्याते चोपसर्गनिपाताश्च। तत्र नामान्याख्यातजानीति शाकटायनो नैरुक्तसमयश्च... *(निरुक्त—१-१२)*

अर्थ है—इस प्रकार ये चार प्रकार के पद कह दिए गए—नाम, आख्यात, उपसर्ग और निपात।

नाम, आख्यातज अर्थात् क्रिया से उत्पन्न होनेवाले हैं।

यास्क इसके उदाहरण देता है। एक उदाहरण है—गौः। निघण्टु में पृथिवी के नामों में 'गौः' शब्द आया है। इसकी व्युत्पत्ति गम् धातु से है।

'गम्' से 'गा', और 'औ' प्रत्यय लगने से 'गौः' बना है, जिसका अर्थ है—जो चलती है, वह 'गौ' है।

पृथिवी भी चलती है। इस कारण पृथिवी को भी 'गौ' कहते हैं। गाय, पशु, सूर्य, रश्मि और अन्य प्रकार की तरंगें भी चलती हैं। वे सब भी 'गौ' शब्द से जानी जाती हैं।

इस प्रकार क्रिया (आख्यात) से नाम उत्पन्न होते हैं। परिणामस्वरूप यह सम्भव है कि शब्द का अर्थ करने में भूल हो जाए। कहनेवाले का अभिप्राय 'गौ' से गाय हो और पढ़नेवाला 'गौ' का अर्थ पृथिवी अथवा प्रकाश-किरण करने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लगे। इसी कारण शौनक ने यह भी कह दिया है कि उनके कर्मों को देखकर अर्थ लगाए जाने चाहिएँ।

उदाहरणार्थ—यदि यह कहा जाए कि 'गाय घास चर रही है' तो यहाँ 'गौः' का अभिप्राय गाय (पशु) होगा। यदि कहा जाए कि 'गाय की पीठ पर ओषधियाँ उत्पन्न हो रही हैं' अथवा कहा जाए 'गौः' पर पहाड़, नदी-नाले हैं, तो 'गौः' का अर्थ पृथिवी लिया जाएगा। इसका उदाहरण भी यास्क ने दिया है। वह इस प्रकार है—

आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा गृभ्णीत मन्थिना।
गोभिः श्रीणीत मत्सरम्॥ (ऋ० ९-४६-४)

मंत्र का देवता है "पवमानः सोमः" अर्थात् पवित्र हुआ हुआ सोम।

पदच्छेद—आ, धावता, सु-हस्त्यः शुक्रा, गृभ्णीत, मन्थिना। गोभिः, श्रीणीत, मत्सरम्॥

मन्त्रार्थ—(सुहस्त्यः आ धावता मन्थिना शुक्रा गृभ्णीत) हे कुशल कारीगरो! शीघ्र आओ। बल को सिद्ध करो। बलकारक पदार्थ बनाओ। मन्थन से। मथानी से बिलोकर।

(गोभिः श्रीणीत मत्सरम्) गाय के दूध के साथ मिलाओ सोम [आम इत्यादि स्वादिष्ट पदार्थ]।

'मत्सरम्' का अर्थ यहाँ 'प्रसन्न करनेवाला है'। इस सूक्त में सोम की स्तुति की जा रही है। इस कारण यहाँ सोम से अभिप्राय वह पदार्थ है जो स्वाद निर्माण करता है। जो इन्द्रियों को सुख देता है और पवित्र करनेवाला है।

हमने निर्वचन किया है—मीठे आम का रस। दूध में मिलाकर तैयार करने का वर्णन है।

मुख्य बात है 'गौभिः'—गौ द्वारा प्राप्त। अर्थ हैं—दूध। यही इस मंत्र में वर्णित कर्म से सिद्ध होता है।

गौः का एक अन्य उदाहरण है—

वृक्षेवृक्षे नियता मीमयद्गौस्ततो वयः प्र पतान् पूरुषादः।
अथेदं विश्वं भुवनं भयात इन्द्राय सुन्वदृषये च शिक्षत्॥

(ऋ० १०-२७-२२)

इस मंत्र का देवता 'इन्द्र' है।

पदच्छेद—वृक्षे-वृक्षे, नियता, मीमयत्, गौः, ततः, वयः, प्र, पतान्, पूरुष-अदः।

अथ, इदम्, विश्वम्, भुवनम्, भयात, इन्द्राय, सुन्वत्, ऋषये, च शिक्षत्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रार्थ—(पुरुष-अदः गौः ततः वयः नि-यता वृक्षेवृक्षे प्र पतान् मीमयत्) शरीर में बैठे हुए भोग करनेवाले गति से बहते हुए नियत शरीर से नियत शरीर में पहुँचते हैं और बोलने लगते हैं।

(पुरुष का अर्थ है—पुरि-शपः अर्थात् शरीर में बैठा हुआ। अदः का अर्थ है—खानेवाला अर्थात् भोग करनेवाला। वृक्ष से अभिप्राय है जो काटा-छाँटा जा सके अर्थात् प्रकृति—प्रकृति से बना शरीर।)

(अथ इदम् विश्वम् भुवनम्) और इस पूर्ण भुवन (भू-मण्डल) को।

(इन्द्राय सुन्वत्) इन्द्र के लिए यज्ञ करो।

(भयाते ऋषये च शिक्षत्) भयभीत होते हुए विद्वान् शिक्षा लेते हैं।

इसमें गौः से अभिप्राय है गति करता हुआ जीवात्मा। इसी प्रकार 'गम्' धातु से 'गा' और उससे 'गौः' बना। 'गाम्' कर्म उन सब पदार्थों का अर्थ है जो चलते हैं।

ऊपर दो उदाहरण देकर स्पष्ट किया है कि किस प्रकार एक स्थान पर गोभिः से अर्थ गाय का दूध है और दूसरे मंत्र में गौः का अर्थ आत्मा है।

ये उदाहरण तो सामान्य 'नामों' के हैं। इसी प्रकार देवताओं के भी अर्थ उनके कर्मों से लगाए जाते हैं। देवताओं के भी 'नाम' होते हैं। वे किसी क्रिया से उत्पन्न होते हैं।

अग्नि और इन्द्र के उदाहरण ऊपर दिए गए हैं। इस प्रकार अर्थ करने को निर्वचन करना कहते हैं।

निर्वचन का अभिप्राय है—निश्चित अर्थ करना। गौः का निर्वचन दो मंत्रों में किया गया है। एक में गौः से गाय और गोभिः से गौः द्वारा उत्पन्न पदार्थ (दूध) है, और दूसरे में 'गौः' से अर्थ शरीर से शरीर को जानेवाला आत्मा है। मंत्रों में वर्णित विषय को देखकर ही ये अर्थ किए गए हैं।

इस प्रकार निर्वचन करने के विषय में निरुक्ताचार्य दुर्ग कहता है—

अपिहितस्य अर्थस्य परोक्षवृत्तौ अति परोक्षवृत्तौ वा शब्दे निष्कृष्य विगृह्य वचनं निर्वचनम्॥

(निरुक्तभाष्य : पं० भगवद्दत्त, भाष्य २-१)

अर्थ है—शब्द में छिपे हुए अर्थ के परोक्षवृत्ति अथवा अति परोक्षवृत्ति [अदृश्य अथवा अति अदृश्य] होने पर खींचकर अथवा तोड़कर जो अर्थ हों, वह निर्वचन होता है।

सभी निरुक्ताचार्य कहते हैं कि वेदों में शब्दार्थ गौण होता है और निर्वचन मुख्य होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेदार्थ करने में यास्क एक अन्य बात कहता है। वह इस प्रकार है—

अथ निर्वचनम्। तद्येषु पदेषु स्वरसंस्कारौ समर्थौ प्रादेशिकेन विकारेणान्वितौ स्यातां तथा तानि निर्ब्रूयात्। अथानन्वितेऽर्थेऽप्रादेशिके विकारेऽर्थनित्यः परीक्षेत। केनचिद् वृत्तिसामान्येन। अविद्यमाने सामान्येऽप्यक्षर वर्णसामान्यान्निर्ब्रूयात्। न त्वेव न निर्ब्रूयात्। न संस्कारमाद्रियेत। विशयवत्यो हि वृत्तयो भवन्ति। यथार्थं विभक्तीः सन्नमयेत्॥

(निरुक्त २-१)

अर्थ है—अब निर्वचन के विषय में कहते हैं। जिन पदों में स्वर और प्रकृति तथा प्रत्यय के संस्कार मंत्र का अर्थ बताने में सफल हों अर्थात् प्रसंग के अनुसार अर्थ हों तो उसका वैसा ही निर्वचन करना चाहिए। इस अवस्था में अर्थ और निर्वचन समान होंगे। परन्तु जहाँ प्रकृति अर्थात् वेद के प्रत्ययादि से अर्थ ठीक न बैठते हों (व्याकरण से बने अर्थ ठीक न बैठें), तब व्याकरण का विचार छोड़कर पद में छुपे अर्थ प्रत्यक्ष करने चाहिएँ।

ये दोनों बातें वेद का अभिप्राय समझने में ध्रुव के समान पथ-प्रदर्शक हैं।

अतः देवताओं की स्तुति करते हुए कभी देवताओं की निन्दा नहीं हो सकेगी। यहाँ इतना बता देना चाहते हैं कि हमारे मन में वेदों में देवताओं की निन्दा, प्रलाप, उत्सर्ग, उनका उत्तेजित हो क्रोध करना इत्यादि बातें नहीं हैं। देवता दिव्य गुणवाले होते हुए भी प्रकृति के रूप-रूपान्तर ही हैं। प्रकृति सुख, दुःख, इच्छा, द्वेषादि गुणों से रहित होने से उक्त विचार नहीं रख सकती।

फिर भी इस विषय पर हम अधिक विस्तार से लिखना नहीं चाहते, क्योंकि इस विषय में अन्य भाष्यकारों का खण्डन हमारे इस ग्रन्थ का विषय नहीं है।

हम यहाँ केवल देवताओं के दिव्य गुणों का वर्णन और विश्लेषण करने का यत्न करेंगे।

कुछ यूरोपियन और उनकी परिपाटी पर लिखनेवाले भारतीय लेखकों ने भी वेदों में देवताओं के मानवों की भाँति विलाप अथवा युद्ध इत्यादि करने की बात कही है। इस विषय में इन शब्दों का अभिप्राय यथास्थान उनकी विवेचना के साथ कर देंगे।

: २ :

प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वेद-भाषा में शब्दों के अर्थ स्थिर क्यों नहीं हैं? इस विषय में भी बात स्पष्ट होनी चाहिए। वास्तव में मध्यकालीन भारतीय

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विद्वानों और उनकी ही नकल करते हुए यूरोपियन विद्वानों ने जो भूल इसमें की है, वह यह कि वे वेद के शब्दों के अर्थ स्थिर समझते हैं, अर्थात् एक शब्द का जो अर्थ एक स्थान पर आया है, वही अर्थ सर्वत्र होता है।

यह हम 'गौः' शब्द का उदाहरण लेकर बता चुके हैं कि 'गौः' के अर्थ गाय, पृथिवी, सूर्य, रश्मियाँ, जीवात्माएँ (जब एक शरीर से दूसरे शरीर में गति करते हैं) और अनेकों ही अन्य गति करनेवाले पदार्थ हो सकते हैं। यूरोपियन विद्वान्, और विशेष रूप में मध्यकालीन भारतीय विद्वान् इसके कारण को विस्मरण कर वेद-शब्दों के मिथ्या अर्थ लगाते रहे हैं और फिर वेदमंत्रों के भाव को न समझते हुए उसकी निन्दा करते हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि वेद-भाषा जिसे वेद में राष्ट्रीय भाषा के नाम से स्मरण किया है, वह आदि सृष्टि में विचार की गई थी। यूरोप के विद्वान् तो आदि-मनुष्य को पशुतुल्य ही समझते हैं। यदि उनकी इस बात को, जिसे वे विकासवाद के नाम से प्रसिद्ध कर रहे हैं, मान भी लें तो फिर यह कैसे हो गया कि वेद जैसी प्राचीनतम पुस्तक में वर्तमान ज्ञान की बातें आ गईं?

उदाहरण के रूप में वेद में, मरुतों की व्यवस्था समझने में जैमिनी ब्राह्मण रचयिता ने लिखा है—

ततो मरुतो सृजत्-ईशानमुखान्॥ *(जै० ब्रा० ३-३८१)*

अर्थ है—तब मरुत बने और उनके मुख ईशान कोण को हो गए।

ईशान कोण का अर्थ है—उत्तर-पूर्व के बीच की दिशा। यह अवस्था सब अणुओं (मॉलिक्यूल्स) की होती है। वर्तमान विज्ञान की यह जानकारी महाभारत-काल से भी पूर्व उत्पन्न हुए जैमिनी ऋषि को कैसे हो गई?

वेदों का काल कभी भी मानें, आज से छः-सात हजार वर्ष से कम तो माना ही नहीं जा सकता, और उसमें यह तथ्य घोषित किया गया है—

—त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्॥

(ऋ० १-१६३-३, ४)

अर्थ है—(गुह्येन व्रतेन त्रितः) त्रित (परमाणु) गुप्त प्रबन्ध (arrangement) से बँधा हुआ था।

(असि सोमेन समया वि-पृक्तः) शान्त अवस्था की समीपता पृथक्-पृथक् हुई। (साम्यावस्था से असाम्यावस्था हुई।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ते आहु: त्रीणि दिवि बन्धनानि) इस पर कहा जाता है कि तीन प्रकार के निबन्धन बने। (निबन्धन का अर्थ है—संयोग—संगठन)

(त्रीणि अन्त: समुद्रे) ये तीन अन्तरिक्ष में थे।

(आहु: ते त्रीणि दिवि बन्धनानि त्रीणि अप्सु) कहा जाता है कि ये तीन प्रकार के संयोग अन्तरिक्ष में आप: ही हैं।

(उत-इव मे वरुण: छन्त्सि अर्वन्) और हे अर्वन्! इस प्रकार मेरा छन्द (पावन उच्चारण) वरुण करता है।

(आहु: ते परमम् जनित्रम्) कहा जाता है कि वे महान् (जगत्) को उत्पन्न करनेवाले हैं।

अभिप्राय यह है कि 'आप:' प्रकृति के परमाणुओं के संयोग हैं। ये तीन प्रकार के हैं और इनसे ही पूर्ण जगत् बना है। यह व्याख्या आधुनिक विज्ञान के अनुसार ही है।

यदि उस काल के लोग जंगली थे तो भला यह विज्ञान की बात वेदों में कैसे आ गई? इस कारण हमारा मत है कि विकासवाद तो सिद्ध नहीं होता। मनुष्य पशु से नहीं बना। यदि यह कहा जाए तो अधिक उपयुक्त होगा कि मनुष्य देवता से पशु बन रहा है।

इस स्थान पर हमारा कहना यह है कि वेद आदिसृष्टि में कहे गए। उनको छन्दों में (in waves) कहा गया। उन छन्दों से ऋषियों (विद्वानों) के मन में भाव उत्पन्न हुए। उन भावों को दूसरों (जो अन्य उत्पन्न हुए) को बताने के लिए शब्द-अर्थ का सम्बन्ध बनाया गया। उस सम्बन्ध को बनाने में जो क्रियाएँ मनुष्य देखता था, उनमें नामों की कल्पना सुगम और सफल समझी गई। तब यह सिद्धान्त उपस्थित हुआ जो हमने पिछले अध्याय में कहा है।

कर्म से नाम बने। कर्म को प्रकट करने के लिए शब्द का आविष्कार किया गया और उससे नामों की सृष्टि की गई। यह उपाय सम्भव था और ऐसा करके वेदज्ञान का प्रसार किया गया।

तदपि मिथ्या अर्थ लगाने की भूल से बचने के लिए वे नियम बनाए गए, जिनका निरुक्त में वर्णन किया गया है। इस प्रकार अर्थ को प्रत्यक्ष करने को निर्वचन करना कहते हैं। वेद में निर्वचन चलते हैं। यह हम देवताओं की व्याख्या करते समय विस्तार से बताएँगे।

एक अंग्रेज ए०ए० मैकडानल ने वेद में नामों के विषय में एक ग्रन्थ लिखा है। ग्रन्थ का नाम है—Vedic Index of Names and Subjects (वैदिक नामों और विषयों की सूची)।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-V
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसका प्राक्कथन (preface) पढ़ने से ही पता चलता है मानो स्पेनिश उपन्यास का मुख्य पात्र 'सेन्यो पांर्जने' संसार में विजय करने चला है।

सबसे पहली बात तो यह है कि मैक्डानल द्वारा यह और इसी प्रकार की अन्य पुस्तकें 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया' की प्रेरणा और सहायता से लिखाई गई थीं। इसी कारण ये पुस्तकें राजनीतिक उद्देश्यों से लिखाई गई प्रतीत होती हैं। इनका उद्देश्य ज्ञान की खोज करना नहीं, वरन् एक अधीन जाति की मान्यताओं के नीचे 'डाइनामाइट' लगाना है।

Central Library
167987
Gurukula Kangri (Deemed University) Haridwar

वहाँ कहा है—

.....I have already stated, that the book should furnish the historical material in Vedic literature as represented by proper names. As soon, however, as I began to examine more carefully the historical material thus available, I became convinced that restriction to proper names would result in a harvest too meagre to deserve being gathered in the form of a book. It seemed essential to collect all the historical matter accessible to us in the earliest literary documents of India, and thus to furnish a conspectus of the most ancient phase of Aryan civilization that can be realized by direct evidence. If properly and thoroughly treated this matter would, I felt sure, yield a book of genuine value, a comprehensive work on Vedic antiquities.

(Vedic Index of Names and Subjects by A.A. Macdonell,
Preface-page vii, Pub : Moti Lal Banarsidass, 1962)

अभिप्राय है—मैं पहले बता चुका हूँ कि इस पुस्तक में वेदों में ऐतिहासिक सामग्री नामों से बताने का यत्न करूँगा। परन्तु ज्यों ही मैंने ध्यान से उन शब्दों में से इतिहास जानने का यत्न किया, मुझे पता चला कि इस प्रकार मिली सामग्री एक पुस्तक लिखने के लिए अपर्याप्त है। मुझे जब इस बात का विश्वास हो गया तो मैंने उस सब साहित्य के साधनों से सामग्री एकत्रित करनी आरम्भ कर दी जो भारत के पुराने काल के साहित्य में उपलब्ध है। इस प्रकार प्राचीन आर्यों की सभ्यता का दर्शन करने का यत्न किया है। यह सामग्री यदि ठीक ढंग से लिखी जाए तो वैदिक प्राचीन बातों पर प्रकाश पड़ सकता है।

वैदिक शब्दों के साथ जो दूसरी पुस्तकों के शब्द उसने लिये हैं, वे हैं ब्राह्मण ग्रन्थ, उपनिषद् और पुराणादि ग्रन्थ।

हमारा विचार है कि यह सब पूर्वाग्रहों से प्रभावित कल्पना है। जब कार्य सम्पन्न करने की योग्यता नहीं थी तो हवा में मुक्के चलाने लगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमारा अभिप्राय यह है कि वेद आदि-सृष्टि में कहे गए थे।[१] वेद पर विवेचनाएँ बहुत पीछे कही गई हैं। वेद कहे जाने के काल तक मनुष्य के व्यवहार में ब्राह्मण ग्रन्थों के काल के मनुष्यों के व्यवहार-ज्ञान में भी बहुत अन्तर आ गया होगा। यह अन्तर आना स्वाभाविक ही है। इस कारण ब्राह्मण, उपनिषद् आदि ग्रन्थों में कही बात से उस काल की बात का अनुमान लगाना, जब वेद कहे गए, अनुचित है।

आदिसृष्टि में जब मनुष्यों की अभी कोई भाषा नहीं थी, तब भाषा को अर्थयुक्त करने का प्रयास इस प्रकार किया गया कि पदार्थों के कर्म देखे गए और उन कर्मों से उनके नाम रखे गए।

हमने ऊपर 'गौः' शब्द के उदाहरण से बताया है कि चलनेवाले गतिशील पदार्थों के नाम उस 'गौः' धातु से रखे गए और फिर किस प्रकार एक कर्मवाले अनेक पदार्थों में भेद रखा गया। उस आदिकाल में स्थिर अर्थवाले शब्द न सम्भव थे, न ही उचित।

अतः निरुक्ताचार्यों ने इस रहस्य को जानकर ही यह कहा है कि अर्थों से निर्वचन अधिक उपयुक्त है।

अतः देवताओं के नामों का अभिप्राय भी निर्वचनों से ही पता किया जाना चाहिए।

उदाहरण के रूप में, हमने लिखा है कि अग्नि अग्रिम प्रयोग में आनेवाली शक्ति है और इन्द्र अर्थात् दीप्ति करनेवाली शक्ति है।

इसी प्रकार विष्णु व्यापक अर्थवाली शक्ति है। इस कारण यह उस शक्ति का नाम है जो सर्वव्यापक है। और वैश्वानर उस शक्ति को कहते हैं जो विश्व का नेतृत्व करती है, अर्थात् निर्माण और प्रलय तथा पालन भी करती है।

यह हम मानते हैं कि वेद और भाषा के आविष्कार से पहले, मानव-सृष्टि हो चुकी थी। ऐसा संकेत वेद में भी मिलता है। एक मंत्र है—

यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री देवानां निषसाद मन्द्रा।
चतस्र ऊर्जं दुदुहे पयांसि क्व स्विदस्याः परमं जगाम॥

(ऋ० ८-१००-१०)

मंत्र का देवता (विषय) है—वाक्।

अर्थ है—(यद् वाक् राष्ट्री अवि-चेतनानि वदन्ति देवानाम् मन्द्रा नि-षसाद)। जब वाणी जन-जन में बोली जानेवाली ज्ञात अर्थ को कहती है जो

---

१. कैसे कहे गए थे?—यह जानने के लिए देखें लेखक की रचना 'वेद और वैदिक काल'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं (विद्वानों) को प्रसन्न करती हुई विराजती है।

(चतस्रः ऊर्जम् दुदुहे पयांसि) चारों ओर दुही जाती हुई शक्ति पीनेवाले; (अस्याः क्व परमम् जगाम) इसके उत्पन्न होने का स्थान कौन जानता है? इससे अगला मंत्र है—

देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां विश्वरूपाः पशवो वदन्ति।
सा नो मन्द्रेषमूर्जं दुहाना धेनुर्वागस्मानुप सुष्टुतैतु॥

(ऋ० ८-१००-११)

इस मंत्र का देवता भी 'वाक्' है।

मंत्रार्थ—(देवीम् वाचम् देवाः अजनयन्त ताम् विश्व-रूपाः पशवः वदन्ति) वह दिव्य अर्थवाली वाणी विद्वान् प्रकट करते हैं (और) उसको सब रूपोंवाले सामान्य लोग कहते हैं।

(सा वाक् धेनुः नः इषम् ऊर्जम् दुहाना) वह वाणी गाय की भाँति हमें अन्न और ऊर्जा देती है।

(सुष्टुतैतु उप अस्मान् मन्द्रा आ एतु) भली प्रकार कही जाने पर हमको प्रसन्न करती हुई जाओ।

इन दोनों मंत्रों का भावार्थ यह है कि जब वाणी अर्थयुक्त होती है तो बहुत प्रसन्नता देती है। वह चारों ओर फैलती हुई अर्थात् सब लोगों में फैलती हुई सुनी जाती है। प्रश्न किया गया है कि इसका उत्पत्ति-स्थान कहाँ है?

दूसरे मंत्र में यह बताया है कि दिव्य अर्थोंवाली वाणी विद्वान् प्रकट करते हैं, तब उसको सब रूपों में जनसाधारण कहने लगते हैं।

वह वाणी गाय अथवा पृथिवी की भाँति हमें अन्न और ऊर्जा देती है। हमें वह प्रसन्न करती हुई प्राप्त हो। अर्थात् हम भी अर्थयुक्त वाणी बोलें।

जो बात हम कह रहे हैं कि वाणी के अर्थ विद्वानों (ऋषियों) ने नियत किए थे और निरुक्ताचार्य कहते हैं कि वेदमंत्रों में शब्दों (निगमों) के अर्थ कर्म से बनाए गए हैं।

वेद में कही बात युक्तियुक्त प्रतीत होती है। परन्तु यह सब भाषाओं के लिए नहीं कही जा सकती। यह कथन आदिसृष्टि में ऋषियों द्वारा कही वेदभाषा के लिए ही है। पीछे की सब भाषाएँ उस वेदभाषा का अपभ्रंश हैं।

वेदभाषा में कर्म से नाम निकालने की विधि को यौगिक अर्थ करना कहते हैं। इसमें शब्द की व्युत्पत्ति किसी धातु अर्थात् कर्म से पता की जाती है, और जहाँ व्युत्पत्ति में कई अर्थ बनें तो जो मंत्र के विषय में उपयुक्त बैठें, वही वास्तविक अर्थ होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

: ३ :

मंत्रों के विषय को भी देवता कहते हैं और दिव्य दीप्तिमय गुण रखनेवाले पदार्थ को भी देवता कहते हैं। प्रश्न उपस्थित होता है कि मंत्रों में केवल दिव्य गुण-युक्त पदार्थों का ही वर्णन है क्या? कुछ लोग ऐसा ही मानते हैं। परन्तु मंत्र-विषय में दिव्यता हो अथवा न हो, विषय तो विषय ही है। कुछ मंत्र विवाह-संबंधी भी हैं। इस कारण हमारा मत है कि सब-के-सब मंत्रों के विषय दिव्य नहीं होते। दिव्य गुणवाले भी हैं और सामान्य गुणवाले भी हैं। ऊखल और शिला भी विषय हैं।

विषयों के अतिरिक्त, सृष्टि-रचना से सम्बन्ध रखनेवाले दिव्य पदार्थों का वर्णन भी है। सब विषय मंत्रों के देवताओं में आते हैं।

वेद में सामान्य विषयों की संख्या बहुत है। जो-जो पदार्थ इस विषय में मनुष्य के जीवन में उपकारी सिद्ध होनेवाले हैं, उनका वर्णन वेदों में है। इस कारण यह कहा है कि जो कुछ सृष्टि-रचना के समय में दिव्य पदार्थ के अतिरिक्त भी सामान्य मानव-जीवन के लिए उपयोगी समझ में आए, उन सबका वर्णन वेद में है। परन्तु वेदमंत्रों के विषय में यास्क यह सम्मति देता है—

....तास्त्रिविधा ऋचः। परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृता आध्यात्मिक्यश्च॥

(निरुक्त० ७-१)

वहाँ (वेदों में) ऋचः तीन प्रकार की हैं—प्रत्यक्ष पदार्थों के विषय में, अप्रत्यक्ष पदार्थों के विषय में और अध्यात्म के विषय में।

प्रत्यक्ष से अभिप्राय है वे पदार्थ जो दृष्टिगोचर होते हैं। अप्रत्यक्ष से अभिप्राय है जो अदृश्य है। प्रत्यक्ष प्रायः कर्म होते हैं। इन दो के अतिरिक्त आत्म-तत्त्व और प्रकृति के विषय भी अप्रत्यक्ष ही हैं।

यहाँ दिव्य गुणवाले और सामान्य गुणवाले की बात नहीं कही; प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष की बात कही है। और यह भी कहा है—

परोक्षकृता : प्रत्यक्षकृताश्च मन्त्रा भूयिष्ठाः। अल्पश आध्यात्मिकाः।

(निरुक्त ७-३)

अर्थात्—परोक्ष पदार्थों के विषय और प्रत्यक्ष पदार्थों के विषय में बहुत मंत्र हैं। अध्यात्म के विषय में कम मंत्र हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि सृष्टि-सम्बन्धी पदार्थों (परोक्ष और प्रत्यक्ष) का वर्णन वेदों में अधिक है। आत्मतत्त्वों का वर्णन वेदों में कम है।

इसी कारण महर्षि स्वामी दयानन्द ने कहा है कि वेद में पृथिवी से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा-पर्यन्त सब पदार्थों की स्तुति अर्थात् ज्ञान का वर्णन है। गिनती में प्रत्यक्ष पदार्थ अधिक हैं। स्वामी शंकराचार्य कहते हैं कि वेदों में कर्मकाण्ड ही है। कर्मकाण्ड तो नहीं, हाँ, पदार्थों के कर्मों का वर्णन वेद में बहुत अधिक है और यही अभिप्राय यास्क का है। उसका प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष से अभिप्राय पदार्थों से ही है। अत: स्वामी शंकराचार्य का यह कहना कि वेद केवल कर्मकाण्ड ही है, सत्य नहीं। उसमें अध्यात्म का ज्ञान भी है।

अतएव वेदों में प्रत्यक्ष और अप्रत्यक्ष रूप से पदार्थों के कर्मों का वर्णन है। उन कर्मों के ज्ञान से ही उन पदार्थों का ज्ञान होता है।

वे सब पदार्थ जिनकी स्तुति (ज्ञान) वेदों में है, सब देवता अर्थात् दिव्य गुणयुक्त नहीं। उनमें सामान्य व्यवहार के पदार्थ भी हैं। मनुष्यों के सामान्य व्यवहार में आनेवाली वस्तुओं का भी वर्णन है। इतना स्मरण रखना चाहिए कि सब-कुछ सिद्धान्तात्मक ही है; व्याख्यात्मक नहीं।

परन्तु हम यहाँ देवताओं के विषय में लिख रहे हैं। वे देवता प्राणी की भाँति नहीं हैं। वेद उनको जीवित प्राणी नहीं मानता, न हम मानते हैं। परन्तु इस विषय की विवेचना देवताओं का वर्णन करते हुए करेंगे।

यहाँ इतना लिख देना चाहते हैं कि यास्क, शौनक और कुछ अन्य भाष्यकारों ने, जो ब्राह्मणग्रन्थों के उत्तर-काल के हैं, देवताओं के विषय में कई-एक अयुक्तियुक्त बातें लिखी हैं। देवताओं के विषय में उनके सामान्य कथन को स्वीकार करते हुए भी हम देवताओं के यज्ञ में भाग और यज्ञ में उनकी प्रतिष्ठा के विषय में उनके कथन से मतभेद रखते हैं।

वास्तव में हमारी यज्ञ की परिभाषा उनकी यज्ञ की परिभाषा से भिन्न है। हम यज्ञ उस कर्म को कहते हैं जो सर्वहिताय हो। अग्नि में सुगन्धित द्रव्य, जल, घी इत्यादि की आहुतियाँ देने को हम यज्ञ नहीं मानते। जहाँ-जहाँ वेद में यज्ञ का उल्लेख आया है, उसका अर्थ सर्वहिताय कर्मों से ही है। यज्ञ की व्युत्पत्ति 'यज्' धातु से है। यज् के अर्थ हैं—देवपूजा संगतिकरण दानेषु—ये सब कर्म जो सबके हित के लिए हैं। परमात्मा भी यही कर रहा है। देवता भी परमात्मा से निश्चित किये हुए यज्ञ कर रहे हैं। मनुष्य कर्म करने में स्वतंत्र होने से कभी अपने कर्म को यज्ञरूप अर्थात् सर्वहिताय करता है और कभी नहीं भी करता। देवता तो ऋतों में बँधे हुए सदा एक-सा कार्य करते हैं और सदा सर्वहिताय ही कर्म अर्थात् यज्ञ कर रहे हैं।

अत: ब्राह्मणग्रन्थों में जो यज्ञ की बात कही गई है, वह हम सर्वथा उचित नहीं मानते।

स्वामी शंकराचार्य जब कहते हैं कि वेद कर्मकाण्ड के ग्रन्थ हैं, तब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कदाचित् उनका अभिप्राय ब्राह्मणग्रन्थों से है। यह ऐसे ही है जैसे पुराण इतिहास के ग्रन्थ हैं। उनमें वेद का नाम अथवा वेद के किसी अंश या प्रसंग की व्याख्या आ जाए तो वह इतिहास या पुराण वेद का अंग नहीं हो जाता। यही बात ब्राह्मणग्रन्थों में यज्ञ की है। वहाँ यज्ञों के विधि-विधान कहे हैं। साथ ही उन विधि-विधानों के साथ वेदमंत्र पढ़ने के लिए कहे हैं। इससे यह नहीं कहा जा सकता कि वेद में उस यज्ञ के करने का विधान है। अभिप्राय यह कि स्वामी शंकराचार्य का कथन ब्राह्मणग्रन्थों के कर्मकाण्ड के विषय में हो सकता है, परन्तु वेद में वैसा कहीं नहीं कहा है।

हम यह कह रहे हैं कि वेदों में अनेक कर्मों का वर्णन है, परन्तु यह कि वे कर्म यज्ञ हो गए, अथवा जो भी कर्म करने के लिए वेद में कहा गया वह यज्ञ ही है, उचित नहीं। यज्ञ उस कर्म को कहते हैं, जिसका उद्देश्य सर्वहिताय हो। वेद में सर्वहिताय कर्म भी कहे हैं। सत्य की विजय के लिए राक्षस (दुष्टों) के विनाश की बात भी कही है।

यह तो हुआ वेदों में वर्णित विषयों के सम्बन्ध में, अर्थात् मंत्रों-सूक्तों इत्यादि पर लिखे देवता के विषय में।

परन्तु हमारा विषय है—वेदों में देवता, अर्थात् दिव्य गुणवाले पदार्थ। वे सीमित संख्या में हैं। उनके विषय में शौनक ऋषि कहता है—

सत्त्वान्यमूर्तान्यपि च देवतावन्महर्षयः।
तुष्टुवुर्ऋषयः शक्त्या तासु तासु स्तुतिष्विह॥
यैस्त्वग्निरिन्द्रः सोमश्च वायुः सूर्यो बृहस्पतिः।
चन्द्रोऽथ विष्णुः पर्जन्यः पूषा चाप्यृभवोऽश्विनौ॥
रोदसी मरुतो देवाः पृथिव्यापः प्रजापतिः।
देवौ च मित्रावरुणौ पृथक् सह च तावुभौ॥
विश्वे च देवाः सविता त्वष्टा वै रूपकृन्मतः।
अश्वोऽन्नमृत्विजो वज्रो ग्रावाणो रथसंयुताः॥
स्तुताः पृथक् पृथक् स्वैः स्वैः सूक्तैर्ऋग्भिश्च नामभिः।
स्तुतौ स्तुतौ प्रवक्ष्यामि तानि तेषामनुक्रमात्॥

(बृहद्देवता—१-८१, ८२, ८३, ८४, ८५)

अर्थ है—ऋषियों और महर्षियों ने अपनी योग्यतानुसार शरीरसहित और रूप-सहित देवताओं की भी स्तुति की है॥ ८१॥

उन्होंने अग्नि, इन्द्र, सोम, वायु, सूर्य, बृहस्पति, चन्द्र, विष्णु, पर्जन्य, पूषः, ऋभवः, अश्विनौ—॥ ८२॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आकाश, पाताल, मरुत देवता, पृथिवी, आपः, प्रजापति, दिव्य गुणवाले मित्र और वरुग इकट्ठे और पृथक्-पृथक् का भी कथन है॥ ८३॥

और विश्वेदेवा, सविता तथा त्वष्टा जो रूप बनाते हैं, अश्व, अन्न, ऋत्विज, वज्र, ग्रावाणः, इन सब देवताओं के अपने-अपने रथ हैं॥ ८४॥

ये सब देवता पृथक्-पृथक् अपने-अपने नामों, मंत्रों और सूक्तों में स्तुति किए गए हैं। मैं (शौनक कहता है) इनकी स्तुति क्रमवार करूँगा॥ ८५॥

शौनक देवताओं की गणना कराता है—

१. अग्निः, २. इन्द्रः, ३. सोम, ४. वायु, ५. सूर्य, ६. बृहस्पति, ७. चन्द्र, ८. विष्णु, ९.पर्जन्य, १०. पूषन्, ११. अश्विनौ, १२. आकाश-पाताल, १३. दिव्य मरुत, १४. पृथिवी, १५. आपः, १६. प्रजापतिः, १७. मित्र, १८. वरुण (पृथक्-पृथक् और इकट्ठे), १९. विश्वेदेवाः, २०. वस्तुओं के रूप बनानेवाले सविता, २१. त्वष्टाः, २२. अश्व, २३. ऋत्विज्, २४. वज्रः, २५. ग्रावाणः।

इस प्रकार शौनक ने २५ देवताओं के नाम गिनाए हैं।

: ४ :

देवताओं के विषय में सामान्य बातें-१

(१) देवताओं में एक ही आत्मा अर्थात् तत्त्व का पदार्थ है। ऐसा यास्क ने कहा है। वह कहता है—

""माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते""

(निरुक्त— ७-४)

अर्थ है—महान् ऐश्वर्यवाला होने से देवताओं का एक ही आत्मा (तत्त्व-पदार्थ) है। उसके गुण बहुत भाँति के कहे गए हैं।

यह एक पदार्थ क्या है जिसे सत्त्व अथवा आत्मा कहा है? इस विषय में यास्क अगले ही वाक्य में कहता है—

एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति। अपि च सत्त्वानां प्रकृतिभूमभिर्ऋषयः स्तुवन्तीत्याहुः॥ *(निरुक्त ७-४)*

अर्थ है—एक के अस्तित्व से दूसरे देवता उसके प्रत्यंग होते हैं और यह भी कहा है कि (देवताओं के) अस्तित्व का महत्त्व मूल प्रकृति है, ऐसा ऋषि कहते हैं (वर्णन करते हैं)।

प्रकृति-मूल से सब देवता हैं और तदनन्तर एक से दूसरे उत्पन्न होते हैं।

यह यास्क का कथन है। यास्क ने इसे वेद से लिया है। जैसा शौनक ने कहा कि देवताओं के कर्म वेदमंत्रों से पता चलते हैं, वैसे ही यह बात भी कि सब

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता प्रकृति से एक-दूसरे के उपरान्त उत्पन्न होते हैं, वेद में भलीभाँति वर्णित हैं।

इस विषय में वेद का कथन इस प्रकार है—

ऋग्वेद मण्डल १०, सूक्त १२९ में प्रकृति से सृष्टि-रचना का वर्णन किया है। इस सूक्त में कुछ इस प्रकार कहा है—

पहले यहाँ कुछ भी स्वरूपवान् और अस्वरूपवान् (सत् और असत्) नहीं था। (ऋ १०-१२९-१)

आगे कहा है कि उस समय दो ही पदार्थ थे—एक 'आनीत् अवातम्' और दूसरा 'स्वधा'। 'आनीत् अवातम्' का अभिप्राय है शक्ति जो निश्चल थी, और दूसरा पदार्थ 'स्वधा' जो अपने में स्थित था। स्वधा का वर्णन अगले मंत्र में कर दिया है। (ऋ० १०-१२९-२)

कहा है—वह स्वधा अन्धकारमय था (अप्रकेतम्); जाना नहीं जा सकता था। सब स्थान पर व्यापक था और सलिल अवस्था में था। (ऋ० १०-१२९-३)

'सलिल' का अर्थ है—बह जानेवाला। बहता पदार्थ वह होता है जिसके कण परस्पर जुड़े हुए न हों, जैसे रेत के अथवा जल के कण। इसी प्रकार प्रकृति के परमाणु एक-दूसरे से असम्बद्ध थे।

रचना के समय एक 'तेज' उत्पन्न हुआ जिसने तप किया और परिश्रम किया। (ऋ० १०-१२९-३)

परिश्रम कैसे किया? वह भी आगे कहा है—

सृष्टि-रचना से पूर्व एक मननशील तत्त्व था। उसकी सृष्टि-रचना की कामना बीज बन गई, अर्थात् उसकी इच्छामात्र से रचना आरम्भ हो गई। (ऋ० १०-१२९-४)

वह मननशील तत्त्व अतिविद्वान् था। उसकी कामना, उससे प्रेरित होकर अव्यक्त (इन्द्रियों से न जानी जा सकने योग्य) प्रकृति को व्यक्त (दृश्य) जगत् में बाँधने लगी।

कामना रश्मियों की भाँति चारों ओर परमाणुओं के ऊपर-नीचे फैल गई। सृष्टि के पदार्थ बनने लगे और (महिमानः) जीवात्माएँ भी आ गईं और अपना भाग लेने लगीं। (ऋ० १०-१२९-५)

परमात्मा सर्वज्ञ है, सब-कुछ जानता है। वह जानता है कि कामना कहाँ से उत्पन्न हुई और किस प्रकार कार्य करने लगी। उसके अतिरिक्त अन्य कोई नहीं जानता। (ऋ० १०-१२९-६, ७)

इस प्रकार सृष्टि-रचना का कार्य आरम्भ हो गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद के अगले सूक्त १०-१३० का विषय है—भाववृत्तम्—रचना का वृत्तान्त। अतः सूक्त १०-१२९ का विषय ही अगले सूक्त १०-१३० में जारी है। जो रचना-यज्ञ चारों ओर फैलने लगा था, वह १०१ देव-वर्षों तक चलता रहा; ब्रह्माण्ड (नेबुला) में पकता रहा। कार्य करनेवाली शक्तियाँ इसका ताना-बाना ऊपर से नीचे बुनती रहीं। एक सौ एक देव-वर्ष के उपरान्त यह स्थिर होकर कार्य करने लगा। (ऋ० १०-१३०-१)

परमात्मा ही इसके इस काल में, ताने-बाने की भाँति इसे बुनता रहा। परमात्मा का कार्य रश्मियों (शक्ति की तरंगों) द्वारा होता रहा। सृष्टि रचना-यज्ञ को ये तरंगें बुनती रहीं। (ऋ० १०-१३०-२)

इस प्रकार दिव्य गुणवालों ने यज्ञ किया (सब देवता ईश्वरेच्छा से रचना-कार्य करने लगे)। देवम् यजन्त—परमात्मा ने यज्ञ किया। वे देवता क्या कार्य करने लगे? वे कहाँ तक फैल गए? इस जगत् की सीमा कहाँ तक थी?

(ऋ० १०-१३०-३)

यहाँ इन मंत्रों में कहा है कि इस प्रकार बने देवता क्या कार्य करने लगे। उस कार्य का अगले मंत्रों में वर्णन किया है।

हमने ऊपर जो (ऋ० १०-१२९ तथा १३०) सूक्तों के दस मंत्रों का भावार्थ बताया है, उससे यह स्पष्ट है कि देवताओं का बनना और उनका कार्य वेद में वर्णित है। ये मंत्र उनके बनने के विषय में हैं। प्रकृति के परमाणु ही इनका मूल हैं।

इससे भी अधिक स्पष्ट वर्णन एक अन्य स्थान पर मिलता है—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वा पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥ १॥
यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥ २॥
असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितोगुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥ ३॥
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्॥ ४॥

(ऋ० १-१६३-१, २, ३, ४)

इन मंत्रों का देवता (विषय) है—अश्वो-अग्निः, अर्थात् रचना-कार्य करनेवाली अग्नि। अश्व गाड़ी को चलानेवाला होता है, अतः यहाँ इसका अभिप्राय रचना-कार्य करनेवाले से है।

मन्त्रों का अर्थ इस प्रकार है—(हे अर्वन्! श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू यत्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत समुद्रात् अक्रन्दः प्रथमम् जायमानः उत वा पुरीषात्) हे अर्वन्! (हे अश्व, अर्थात् सृष्टि-रचना करनेवाले) तुम श्येन के पंखों और हिरण की बाहों की गति से चलते हुए जब अन्तरिक्ष से ऊपर को जाते हुए घोर नाद करते हो, सबसे पहले उत्पन्न होनेवाले, तुम स्तुति (ज्ञान प्राप्त) किए जाने योग्य हो।

(ते उप-स्तुत्यम् महि जातम्) उससे बहुत ही स्तुति (ज्ञान प्राप्त) करने योग्य उत्पन्न हुआ॥ १ ॥

(एनम् त्रितः प्रथमः इन्द्रः अधि अतिष्ठत् यमेन दत्तम् एनम् अयुनक्) यह त्रित (परमाणु) पहले इन्द्र से अधिष्ठित था अर्थात् नियंत्रित था। तब यम (परमात्मा) द्वारा दी हुई शक्ति ने इस (त्रित) को जोड़ लिया। (ऐसे जोड़ लिया जैसे घोड़े के मुख में लगाम दे दी जाती है।)

(गन्धर्वः अस्य सूरात् रशनाम् अगृभ्णात् वसवः अश्वं नि अतष्ट) नियंत्रण में आए हुए परमाणुओं ने बलवान् रश्मियों को स्वीकार कर लिया। हे वसुओ! प्रभावित हुए परमाणुओं (अश्व को) अर्थात् उस तेज को जो लगाम बना हुआ है, भली-भाँति काम में लाओ॥ २ ॥

(असि यमः असि आदित्यः असि अर्वन् त्रितः गुह्येन व्रतेन) हे अर्वन्! तुम नियंत्रण करनेवाले प्रकाशमान रचना-कार्य चलानेवाले हो, गुप्त शक्ति से बँधे हुए परमाणु के।

(असि सोमेन समया विपृक्तः) त्रित की साम्यावस्था विपृक्त हुई।

(त्रीणि ते आहुः त्रीणि दिवि बन्धनानि) इससे वे तीन कहे जाते हैं। ये तीन दिव्य संयोग होते हैं॥ ३ ॥

(अन्तः समुद्रे आहुः ते त्रीणि असि) कहा जाता है कि अन्तरिक्ष में तीन दिव्य संयोग तीन आपों में हैं।

(उत-इव मे वरुणः छन्त्सि अर्वन्) इस प्रकार मेरा पवित्र छन्दों का उच्चारण करनेवाला तू अर्वन् है।

(आहुः ते परमम् जनित्रम्) कहा जाता है कि उन आपः ने महान् जगत् उत्पन्न किया है॥ ४॥

त्रीणि बन्धनानि—सूर्य में बने और फिर अन्तरिक्ष में आकर तीन आपः हो गए।

इन चारों मंत्रों में वही बात कही गई है जो (ऋ० १०-१२९-१ से ७) में पृष्ठ २८ पर वर्णन की है; कुछ अन्तर भी है—वहाँ रचना से पूर्व की व्याख्या भी थी। स्वधा की अवस्था का भी वर्णन था। यहाँ स्वधा के परमाणु को त्रित, गुप्त व्रत से संगठित होने का वर्णन किया है अर्थात् उसकी व्याख्या यहाँ है—उस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था की जो रचना से पूर्व थी। यहाँ परमाणु की अवस्था का वर्णन है और कहा है कि पहले उस पर इन्द्र अधिष्ठित था। उस इन्द्र को परमाणु से हटाकर परमात्मा का अर्वन् (तेज) परमाणु पर अधिष्ठित हो गया और फिर परमाणुओं में परस्पर आकर्षण-विकर्षण होने लगा और तब सृष्टि-रचना होने लगी।

इन दस मंत्रों के अन्तिम मंत्र में कहा है कि जो देवता प्रकृति से बने, वे क्या करने लगे? उनका कार्य अगले मंत्रों (ऋ० १०-१३०-४, ५, ६) में बताया है। इस समय हमने वे मंत्र इस कारण नहीं दिए क्योंकि वह विषय इस समय समुपस्थित नहीं है।

यहाँ मंत्र (ऋ० १-१६३-४) में इतना बता दिया है कि वे आप: परमात्मा की वाणी वेदों का उच्चारण करने लगे।

इस प्रकार हमने बताया है कि यास्क ने जो कहा था कि देवताओं का मूल प्रकृति है, उसका वेद में भी वर्णन है।

देवताओं के विषय में सामान्य बातें-२

तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः। अग्निः पृथिवीस्थानः। वायुर्वेन्द्रो वान्तरिक्षस्थानः। सूर्यो द्युस्थानः। तासां माहाभाग्यादेकैकस्या अपि बहूनि नामधेयानि भवन्ति। अपि वा कर्मपृथक्त्वात्॥ *(यास्क० निरुक्त-७-५)*

अर्थ है—तीन ही देवता हैं। ऐसा निरुक्ताचार्य मानते हैं। एक अग्नि, जो पृथिवी-स्थान पर पाई जाती है; दूसरा वायु अथवा इन्द्र, अन्तरिक्ष स्थानवाला; और तीसरा सूर्य 'द्यु'-स्थानवाला। तीनों के महान् ऐश्वर्यशाली होने से एक-एक के भी बहुत नामोंवाले देवता हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि जैसा ऊपर वर्णन किया है, ये सब देवता प्रकृति से उत्पन्न हुए हैं। प्रकृति जड़ पदार्थ है। इस कारण यह स्वयं कुछ उत्पन्न नहीं कर सकती। हमने बताया है कि परमात्मा का तेज ही, जिसे 'अर्वा' भी कहा है, से देवताओं की उत्पत्ति हुई है। परमात्मा चेतन है। उसका तेज उसी के आदेश से कार्य करता है। प्रकृति तेज के प्रभाव से बदलती है और उसके परिणाम बनने लगते हैं। कुछ परिणाम दिव्य गुणयुक्त होते हैं। वे देवता कहे जाते हैं।

यहाँ कहा है कि मुख्य रूप में तीन देवता हैं—पृथिवी पर अग्नि, अन्तरिक्ष में वायु और द्युलोक में सूर्य।

ऐसा समझना चाहिए कि हम केवल हमारे सौरमण्डल की बात ही कर रहे हैं। इसे अंग्रेजी में 'सोलर सिस्टम' कहते हैं। सूर्य के भीतरी स्थान को अन्तरिक्ष कहा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पृथिवी से अभिप्राय वे सब भुवन हैं जो सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं। सौर-मण्डल से बाहर की बात नहीं हो रही हैं। इसमें तीन ही देवता हैं। तीनों महान् ऐश्वर्य (सामर्थ्य) वाले हैं। इस कारण ये अनेक काम करते हैं और उनसे कई अन्य प्रकार के देवता उत्पन्न हो जाते हैं।

यहाँ यह भी समझ लेना चाहिए कि देवताओं में दिव्यता (विशेषता) उनमें इन्द्र के कारण, अग्नि के कारण और सूर्य के कारण है। तीन स्रोत ही सामर्थ्य का भण्डार हैं।

इस विषय में आगे चलकर बताएँगे।

देवताओं के विषय में सामान्य बातें-३

देवताओं का पुरुषों (मनुष्यों) की भाँति धीरे-धीरे क्षीण होने का वर्णन अनेक स्थानों पर मिलता है। वे अपनी बाहों और हाथों से अमुक कार्य करते हैं। कई स्थानों पर कहा है कि वे स्वेच्छा से खाते हैं, लड़ते हैं, शत्रुओं का नाश करते हैं। अन्त में अनेकों के-से कर्म उनमें कहे जाते हैं।

यास्क कहता है—

....यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः संस्तूयन्त इति। इति अचेतनेवप्येतद् भवति।

(यास्क ७-७)

अर्थ है—ये पुरुषों के सदृश अंगों से स्तुति किए जाते हैं। यह अचेतनों में भी होता है।

मनुष्य जो कर्म अपने अंगों से करते हैं, वही काम जब देवताओं में होते देखे जाते हैं तो उनको समझाने के लिए उनकी मनुष्यों से तुलना की जाती है। परन्तु उनके वैसे अंग नहीं होते जैसे मनुष्यों के होते हैं। कर्म में समानता को समझाने के लिए मनुष्य के उन अंगों से तुलना की गई है, जिनसे वैसे कर्म होते हैं।

उदाहरण के रूप में, अग्नि पेट में पड़ा अन्न खा जाती है। 'खा जाती है' का अभिप्राय है—जीर्ण कर देती है अर्थात् पचा देती है।

सूर्य अपनी दो बाहों और दो हाथों से पृथिवी पर प्राणियों का पोषण करता है। सूर्य की बाहें नहीं हैं। इसकी दो प्रकार की किरणें आती हैं—प्रकाश-रश्मि और उष्मा-रश्मि। वे कार्य करती हैं, जैसे मनुष्य की बाहें कार्य करती हैं। बस, इतने से ही अभिप्राय है।

जैसे मनुष्य-शरीर चेतन है, आत्मा के होने से, वैसे ही देवताओं में बैठी परमात्मा की प्राणशक्ति कार्य करती है। वैसे ही देवता मनुष्य-शरीर की भाँति जड़ हैं। उससे भी अधिक वे रूपरहित हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनके मनुष्य-शरीर की भाँति अवयव नहीं होते।

अग्नि को समझाने के लिए यास्क एक वेदमंत्र देता है। वह इस प्रकार है—

पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र विद्वाननष्टपशुर्भुवनस्य गोपाः।
स त्वैतेभ्यः परि ददत् पितृभ्योऽग्निर्देवेभ्यः सुविदत्रियेभ्यः॥

(ऋ० १०-१७-३)

पदच्छेद—पूषा, त्वा इतः, च्यावयतु, प्र विद्वान्, अनष्ट-पशुः, भुवनस्य, गोपाः। सः, त्वा, एतेभ्यः, परि ददत्, पितृभ्यः, अग्निः, देवेभ्यः, सुविदत्रियेभ्यः॥

मन्त्रार्थ—(पूषा त्वा इतः प्र च्यवयतु विद्वान् अनष्ट-पशुः भुवनस्य गोपाः) पुष्टिकारक (सूर्य) तुमको इसकी प्राप्ति करावे। विद्वान् (परमात्मा) न नाश होनेवाले पशु से युक्त भुवन का स्वामी,

(सः अग्निः एतेभ्यः पितृभ्यः सुविदत्रियेभ्यः देवेभ्यः परि ददत्) वह अग्नि तुमको इन पितरों (ज्ञानियों) देवताओं के लिए देवे।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि सूर्य से अग्नि प्राप्त होती है, जो न नाश होनेवाले पशुओं से नक्षत्र का पालक (पालन करती) है।

पशुओं से अभिप्राय है अन्तरिक्ष में शक्ति के अणु जिन्हें क्वान्टम (quantom) अथवा कॉस्मिक डस्ट (cosmic dust) कहते हैं। उनसे ही पृथिवी आदि नक्षत्र बने हैं। वे पशु और भुवन दोनों परमात्मा की रक्षा में हैं।

उस अग्नि से ही पृथिवी पर पितर (अमैथुनीय सृष्टि के प्राणी), देवता, नक्षत्र, चन्द्रादि और विद्वान् (जिन्होंने वेद पृथिवी पर ग्रहण किए) शक्ति प्राप्त करते हैं, जिससे वे कार्य कर सकते हैं।

इस मंत्र में सूर्य से सौरमण्डल में प्रसारित होनेवाली अग्नि का उल्लेख है।

पहले कहा था कि देवता तीन हैं। शेष उनकी सन्तान ही हैं। यहाँ अग्नि के विषय में कहा है कि यह पृथिवी पर सूर्य से आती है और पितरों, देवताओं और ज्ञानी-ऋषियों में कर्मशक्ति उत्पन्न करती है। देवताओं के विषय में ये सामान्य बातें यास्क ने अपने निरुक्त ग्रन्थ में वर्णन की हैं।

ये आधार हैं जिनसे हम देवताओं की व्याख्या करना चाहते हैं। हम यह यत्न करेंगे कि देवताओं के विषय में जो कुछ भी लिखें, वह वेदमंत्रों के आधार पर ही लिखें। कुछ स्थानों पर हमारा यास्क और शौनक से मतभेद है। वह हम यथास्थान स्पष्ट कर देंगे।

'अग्नि' शब्द पुल्लिंग है, परन्तु प्रचलित हिन्दी भाषा में यह स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होता है। अतः हिन्दी अनुवाद में हमने भी इसे स्त्रीलिंग के रूप में लिया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड एक

प्रथम अध्याय

अग्नि-१

हम यह पिछले पृष्ठों पर स्पष्ट कर चुके हैं कि अग्नि बनी अथवा यह किसी अन्य से उत्पन्न हुई—ऐसा नहीं बताया गया है। ऋग्वेद के प्रथम मण्डल का प्रथम सूक्त ही इसके विषय पर है। इस सूक्त में जिस अग्नि का वर्णन है, वह पृथिवी-स्थानीय नहीं। यह उन देवताओं में से नहीं जिनको यास्क ने तीन भागों में बाँटा है। यह पृथक् बात है कि वह अग्नि जिसे यास्क ने 'पृथिवी-स्थानीय' कहा है, वह इस अग्नि, जिसका वर्णन ऋग्वेद (१-१) में है, से ही उत्पन्न हुई हो, परन्तु दोनों के गुण, कर्म, स्वभाव में अन्तर है। इस कारण यह पृथिवी-स्थान की अग्नि नहीं है। इस अग्नि का वर्णन इस प्रकार है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम् ।
होतारं रत्नधातमम्॥ *(ऋ० १-१-१)*

सूक्त का देवता 'अग्नि' है। इस सूक्त में अग्नि की ही व्याख्या की गई है।

पदच्छेद—अग्निम् ईढ़े, पुरः-हितम्, यज्ञस्य, देवम्, ऋत्विजम्, होतारम्, रत्नधातमम्।

मंत्रार्थ—(यज्ञस्य पुरः हितम् होतारम् ऋत्विजम् रत्नधातमम् अग्निम् देवम् ईढ़े) यज्ञ के पहले हित करनेवाली, यज्ञ की 'होता', रत्न देनेवाली 'अग्नि देव' की स्तुति करते हैं।

यहाँ यज्ञ का अभिप्राय सृष्टि-रचना से है। उससे (सृष्टि-रचना से) भी पहले यह अग्नि सबका हित करनेवाली थी। यह यज्ञ में आहुति देनेवाली 'ऋत्विक्' थी और रत्न अर्थात् सब उपकारी पदार्थ देनेवाली है। ऋषि इसकी स्तुति करता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मंत्र में ऋषि कहता है कि वह अग्नि की स्तुति कर रहा है अर्थात् गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन और चिन्तन कर रहा है। यह उस अग्नि के विषय में है, जो यज्ञ करनेवाली है। यज्ञ का अभिप्राय सृष्टिरचना-कार्य से है।

सृष्टि-रचना को यज्ञ इस कारण कहा है कि इसके करने से सबका समान रूप में कल्याण हुआ है। यज्ञ उस कर्म को कहते हैं जो लोकहित अर्थात् सर्वहिताय किया जाए। सृष्टि-रचना का कार्य उन सब के लिए किया गया है, जो इसमें रहते हैं।

सृष्टि-रचना इसमें रहनेवालों के हित के लिए क्यों है? यह हम आगे चलकर वर्णन करेंगे। यहाँ तो इतना कहा है 'सृष्टिरचना-कार्यरूपी यज्ञ के ऋत्विक् की स्तुति करता हूँ।' अग्नि इस यज्ञ को करनेवाली है, यही अभिप्राय है। यह अग्नि यज्ञ अर्थात् सृष्टि-रचना से जो कुछ प्राप्त हुआ है, उसको देनेवाली है और मैं उसकी स्तुति करता हूँ। आगे कहा है—अग्नि इस यज्ञ की 'होता' है, आहुति देनेवाली है।

प्रश्न उपस्थित होता है—किस वस्तु की आहुति दे रही है अग्नि? 'प्रकृति' की, जिसे मंत्र (ऋ० १०-१२९-२) में स्वधा कहा है, जिसे मंत्र (१-१६३-२) में त्रित कहा है। उसकी इस यज्ञ में आहुति दी जा रही है और यज्ञ सम्पन्न हो रहा है।

'रत्न' से अभिप्राय है—वे सब अद्वितीय उपकारी पदार्थ जो इस सृष्टि-रचना से हमको मिले हैं। हमको क्या मिला है? हमारा शरीर, जो अद्भुत गुणवाला है। इस शरीर की पालना के लिए अनेकानेक ऐसे पदार्थ मिले हैं जिनसे हमारा जीवन चलता है, जैसे—वायु, अन्न, प्रकाश इत्यादि।

हमारा निश्चित मत है कि इस मंत्र में अग्नि से उस तेज से ही अभिप्राय है जिसको मंत्र (ऋ० १०-१२९-२) में 'आनीत् अवातम्' कहा है। वहाँ मंत्र'१०-१२९-३ में) बताया है कि रचना से पूर्व केवल दो ही पदार्थ थे—एक 'आनीत् अवातम्' और दूसरा 'स्वधा।'

इस 'आनीत् अवातम्' को परमात्मा भी कहा जा सकता है जो अनादि तत्त्व, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक इत्यादि गुणों से स्मरण किया गया है। इस सूक्त में अग्नि से अभिप्राय शक्तिरूप परमात्मा भी हो सकता है।

कुछ भाष्यकारों ने इस मंत्र में, जिस अग्नि का वर्णन किया है, उसे भौतिक अग्नि माना है। हम इसे ठीक नहीं मानते। पृथिवी पर भौतिक अग्नि उत्पन्न होती है। वह यह अग्नि नहीं है, इस अग्नि में और लकड़ी इत्यादि जलाने से जो अग्नि उत्पन्न होती है, दोनों में अन्तर है। यह अन्तर हम तब स्पष्ट करेंगे जब भौतिक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि का वर्णन होगा। यहाँ वर्णित अग्नि को जलाना किसी मानव के वश में नहीं है। यह ईश्वर-नियमानुसार समय पर प्रकट अर्थात् कार्यरत-रूप में प्रकट हो जाती है। यह अग्नि जहाँ सृष्टि-रचना करती है, वहाँ समय पर स्वयं कार्य छोड़ प्रलय भी कर देती है। किसी मनुष्य अथवा देवता के वश में नहीं इस शान्त हो रही अग्नि को शान्त होने से एक क्षण के लिए भी रोक ले।

इसी सूक्त का दूसरा मंत्र है—

अग्निः पूर्वेभिर्ऋषिभिरीड्यो नूतनैरुत। स देवां एह वक्षति॥

(ऋ० १-१-२)

इस मंत्र का देवता भी अग्नि है।

पदच्छेद—अग्निः, पूर्वेभिः, ऋषिभिः, ईड्यः, नूतनैः, उत। सः, देवान् आ, इह, वक्षति॥

मंत्रार्थ—(अग्निः पूर्वेभिः ऋषिभिः उत नूतनैः ईड्यः सः इह देवान् आ वक्षति)। [यह] अग्नि पहले के ऋषियों द्वारा और नवीनों के द्वारा स्तुति की जाने योग्य है। वह देवताओं को यहाँ प्राप्त कराती है।

इस मंत्र में भी उसी तेज की स्तुति वणित है, जिसकी स्तुति सूक्त के प्रथम मंत्र में की गई थी। उस अग्नि का ही वर्णन है जो प्रथम मंत्र में 'पुरोहितम्, देवम्, ऋत्विजम्' इत्यादि विशेषणों से स्मरण की गई है।

इस अग्नि के विषय में पूर्व के ऋषियों द्वारा स्तुति की गई थी अर्थात् वे इस अग्नि के गुण, कर्म, स्वभाव का वर्णन करते थे और नए ऋषि भी करते हैं।

इसमें अधिकांश भाष्यकारों ने पूर्व के ऋषियों से अभिप्राय लिया है, जो वर्तमान सृष्टि-रचना के समय विद्वान् लोग थे और जिन्होंने वेदज्ञान छन्दों में प्रसारित होता समझा और फिर मानवी भाषा में कहा। यही भाष्यकार 'नूतनैः' का अर्थ आजकल के वेद-विद्वान् से करते हैं।

इन भाष्यकारों से हमारा मतभेद है। हम पूर्व के ऋषियों से अभिप्राय सृष्टि-रचना के समय से पूर्व के ऋषियों से मानते हैं। पूर्व-कल्प के और उससे भी पहले के कल्पों के ऋषियों से अभिप्राय है। इसका अर्थ है कि वेद परमात्मा का ज्ञान अनादि है। इसे अपौरुषेय कहते हैं, अर्थात् यह इतना ही पुरातन है जितना परमात्मा पुरातन है। परमात्मा का तेज, जिसका वर्णन हो रहा है, वह भी उतना ही पुरातन है। परमात्मा का ज्ञान और परमात्मा का तेज परमात्मा का लिंग है। लिंग पदार्थों के उस गुण को कहते हैं जो पदार्थ के साथ सदा विद्यमान रहे और किसी अन्य पदार्थ में वैसा न पाया जाए।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि रचना के आदि में सदा उत्पन्न होनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋषि मुक्त-जीव ही होते हैं। जीवात्मा भी अनादि तत्त्व है। उन अनादि जीवों में मुक्त-जीव ही वेदज्ञान के प्रवक्ता ऋषि होते हैं। उन्हें ही 'पूर्वेभि: ऋषिभि:' कहा है। और 'नूतन' से अभिप्राय है वे ऋषि जो प्रत्येक सृष्टि-रचना के उपरान्त वेदार्थों के ज्ञाता होते हैं।

समझने की बात यह है कि वेद में, जो कुछ पहले मंत्र में कहा गया है कि अग्नि-स्वरूप परमात्मा, इस सृष्टिरचना-यज्ञ का करनेवाला है—यह बात कल्प-कल्पान्तर के ऋषियों को ज्ञात थी। यह इस कल्प में अर्थात् इस मानव-सृष्टि के समय की नई नहीं कही गई।

वेद वर्तमान सृष्टि-रचना को पहली, दूसरी अथवा तीसरी रचना नहीं मानता। वेद यह मानता है कि जैसे परमात्मा एक अनादि तत्त्व है, स्वधा (प्रकृति) भी एक अनादि तत्त्व है और भोक्ता जीवात्मा भी एक अनादि तत्त्व है, वैसे ही रचना और प्रलय भी अनादि क्रियाएँ ही हैं। ब्रह्म-दिन के उपरान्त ब्रह्म-रात्रि और ब्रह्म-रात्रि के उपरान्त ब्रह्म-दिन हो रहा है।

यह ब्रह्म-दिन और ब्रह्म-रात्रि कब से हो रहे हैं? यह मनुष्य कल्पना भी नहीं कर सकते। इसी विचार को स्पष्ट करने के लिए 'नूतनै:' और 'पूर्वेभि:' शब्दों का प्रयोग है। 'पूर्वेभि:' से अभिप्राय है—इस वर्तमान रचना से पहले अनादि काल तक के ऋषि यह जानते थे कि परमात्मा का तेज सृष्टि-रचना करता है; और 'नूतनै:' से अभिप्राय है—वर्तमान रचना के ऋषि भी जानते हैं। यही बात मंत्र में वर्णन की गई है।

आगे का मंत्र इस प्रकार है—

अग्निना रयिमश्नवत् पोषमेव दिवेदिवे।
यशसं वीरवत्तमम्॥ (ऋ० १-१-३)

पदच्छेद—अग्निना, रयिम्, अश्नवत्, पोषम्, एव दिवे-दिवे।
यशसम्, वीरवत्-तमम्॥

अन्वयार्थ—(अग्निना दिवे दिवे पोषम् एव रयिम् वीरवत्-तमम् यशसम् अश्नवत्) अग्नि दिनानुदिन पालन करनेवाली (और) अतिशय वीरता देनेवाली से (प्रत्येक प्राणी) यश प्राप्त करता है।

इस मंत्र में भी उसी अग्नि का वर्णन है जिसका वर्णन इस सूक्त के प्रथम मंत्र से हो रहा है। वही अग्नि जो सृष्टि-रचना में कार्य करती है, वही मनुष्यों को दिनानुदिन यश और वीरता प्रदान करती है। वही इस जीवन को चलाती है।

अधिकांश भाष्यकार इसे वह अग्नि कहकर वर्णन करते हैं जो सूर्य-रश्मियों द्वारा पृथिवी पर आती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह ठीक है कि शरीर-पालन की शक्ति सूर्य-रश्मियों द्वारा प्राणीमात्र में आती है। यह रासायनिक शक्ति कही जाती है। परन्तु जिस अग्नि का इस सूक्त में वर्णन हो रहा है, वह यह रासायनिक शक्ति नहीं है। यश और वीरता इस रासायनिक शक्ति से प्राप्त नहीं होते। यदि होते तो सब प्राणी एक-समान यशस्वी और वीर होते। अथवा, जिनको अच्छा अन्न मिलता है वे ही वीर होते। बात इससे उलट देखी जाती है। प्रायः बढ़िया अन्नादि का सेवन करनेवाले भीरु और दुष्ट हो जाते हैं। यश और वीर्य शरीर-पालन से पृथक् बात है। वेद कह रहा है कि यश और वीरता, यह अग्नि जो परमात्मा का लिंग है, देती है। इसे सामान्य भाषा में प्राण कहते हैं। प्रत्येक प्राणी में 'प्राण' परमात्मा की इस अग्नि का लक्षण है। प्राण परमात्मा की देन है। यही इस मंत्र में कहा है।

रासायनिक शक्ति से शरीर के सात धातु—रस, रक्त, मांस, मेद, मज्जा, अस्थि और वीर्य बनते हैं। परन्तु यह रासायनिक शक्ति प्राणशक्ति से भिन्न है और यह प्राणशक्ति ही है जो यश और वीरता प्रदान करती है।

यह ठीक है कि शरीर के सात धातु यदि क्षीण हो जाएँ तो मनुष्य की मृत्यु हो जाती है, परन्तु यह भी ठीक है कि धातु ज्यों-के-त्यों बने रहें, तब भी प्राणान्त हो सकता है। प्राण और धातुनिर्मात्री शक्तियाँ भिन्न-भिन्न हैं। प्राण ईश्वर का ही स्वरूप माना गया है। अथर्ववेद में प्राण को ईश्वरीय शक्ति माना है। वहाँ कहा है—

प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदं वशे।
यो भूतः सर्वस्येश्वरो यस्मिन्त्सर्वं प्रतिष्ठितम्॥ *(अथर्व० ११-४-१)*

मंत्र का देवता 'प्राण' है।

पदच्छेद—प्राणाय, नमः, यस्य, सर्वम्, इदम्, वशे।
यः भूतः सर्वस्य, ईश्वरः, यस्मिन्, सर्वम्, प्रतिष्ठितम्॥

मंत्रार्थ—(इदम् सर्वम् यस्य वशे। तस्मै। प्राणाय नमः) यह सब-कुछ जिसके वश में है (उस) प्राण के लिए नमस्कार है।

(यः भूतः सर्वस्य ईश्वरः यस्मिन् सर्वम् प्रतिष्ठितम्) जो स्वयम्भू है, सब का ईश्वर, सब-कुछ रचनेवाला है, जिसमें सब-कुछ प्रतिष्ठित (टिका हुआ) है।

प्राण को आदि-अग्नि की भाँति ही परमात्मा का लिंग माना है। अतः इस मंत्र में भी अग्नि को जब यश और वीरता प्रदान करनेवाली कहा है, तो उसका अभिप्राय प्राणशक्ति से ही है।

जो अग्नि सृष्टि-रचना करती है, वह वैश्वानर अग्नि कही जाती है। उस अग्नि में और घर के चूल्हे में प्रयोग होनेवाली अग्नि के विषय में विवाद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मसूत्रों में भी दिया गया है। वहाँ इसका वर्णन इस प्रकार है—

वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्॥ *(ब्र० सू० १-२-२४)*

अर्थ है—विश्व की नेता अग्नि और साधारण अग्नि विशेष शब्द के प्रयोग से कही जाती है, अर्थात् सामान्य अग्नि को भी वैश्वानर अग्नि कहते हैं और सृष्टि-रचना करनेवाली अग्नि को भी वैश्वानर अग्नि कहते हैं। और आगे कहा है—

स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति॥ *(ब्र०सू० १-२-२५)*

अर्थ है—स्मरण से अनुमान होता है, अर्थात् यह अनुमान है। उक्त वक्तव्य अनुमान से अग्नि है।

साथ ही यह भी कहा है—

अत एव न देवता भूतं च॥ *(ब्र० सू० १-२-२७)*

अर्थ है—इस कारण यह न तो देवता है और न ही यह पंचभूतों में एक है।

वेदान्त दर्शन के इन सूत्रों से यह प्रकट होता है कि जो अग्नि विश्व में व्यापक है, वह उससे भिन्न है, जो अग्नि प्रकट होती है। आगे चलकर विस्तार से इसकी व्याख्या करेंगे।

ऋ० १-१-३ में कहा है कि यह अग्नि मनुष्य में प्राण का स्वरूप है। इससे मनुष्य को यश और वीरता मिलती है। यह भी मनुष्य में अन्न की भाँति प्राप्त होती रहती है। इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वतः परिभूरसि।
स इद् देवेषु गच्छति॥ *(ऋ० १-१-४)*

पदच्छेद—अग्ने, यम्, यज्ञम्, अध्वरम्, विश्वतः, परि-भूः असि।
सः, इत्, देवेषु, गच्छति॥

मन्त्रार्थ—(अग्ने यम् अध्वरम् यज्ञम् विश्वतः परिभूः असि) अग्नि-स्वरूप, परमात्मा, जिस दोषरहित यज्ञ को सब स्थान प व्यापक होकर, कर रहा है;

(सः इत देवेषु गच्छति) वह (यज्ञ) ही देवताओं में जाता है। (उस रचना-कार्य से ही देवता बनते हैं।)

इसी सूक्त के प्रथम मंत्र में जो कहा है कि अग्नि सृष्टि-रचना का यज्ञ कर रही है, वही अग्नि जो सम्पूर्ण संसार में व्यापक होकर रचना-यज्ञ कर रही है, वही देवताओं में जाकर कार्य करती है।

यह बता चुके हैं कि देवता प्रकृति के परिणामों में हैं। देवताओं में दिव्यता, इसी परमात्मास्वरूप अग्नि की दी हुई है।

यह देवताओं में कैसे जाती है? यह इन्द्र के प्रकरण में कहेंगे। इन्द्र ही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवताओं का उद्‌गम-स्थान माना गया है।

इस सूक्त का अगला मंत्र है—

अग्निर्होता कविक्रतुः सत्यश्चित्रश्रवस्तमः।
देवो देवेभिरागमत्॥ *(ऋ० १-१-५)*

पदच्छेद—अग्निः, होता, कवि-क्रतुः, सत्यः, चित्रश्रवः, तमः।
देवः देवेभिः, आ, गमत्॥

मन्त्रार्थ—(अग्निः होता कवि-क्रतुः सत्यः चित्रश्रव-तमः) और अग्नि-स्वरूप परमात्म शक्ति यज्ञ (सृष्टि-रचना) को करनेवाली है। अतिविद्वान्, विचित्र और अत्यन्त यशवाली है, तथा जो सदैव सत्य है।

(देवः देवेभिः आ गमत्) वह देव (अग्निदेव अर्थात् परमात्मा) देवताओं (विद्वानों) द्वारा आता है (जाना जाता है)।

इस मंत्र में कहा है कि क्योंकि अग्नि ही रचना-यज्ञ की करनेवाली है और वह संसार का निर्माण ऐसे कर रही है जैसे कोई महान् ज्ञानवान् कारीगर कर रहा है, अतः वह परमात्मा उसके अपने कर्म से देवताओं अथवा विद्वानों द्वारा ही जाना जाता है। इसका यह भी अभिप्राय हो सकता है कि क्योंकि इस परमात्मा की शक्ति से ही देवता बनते हैं, इस कारण उन देवताओं द्वारा ही परमात्मा का ज्ञान होता है।

देवता प्रकृति का परिणाम होने से जड़ हैं। वे कार्य करते हैं परमात्मा की शक्ति से। अतः देवताओं का कार्य ही सबसे बड़ा प्रमाण है कि परमात्मा है।

सूर्य, चन्द्र, तारागण, मरुत इत्यादि के कार्यों को देखकर ही एक ज्ञानवान्, सर्वव्यापक महान् तत्त्व (परमात्मा) का ज्ञान होता है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

यदङ्गदाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।
तवेत् तत् सत्यमङ्गिरः॥ *(ऋ० १-१-६)*

पदच्छेद—यत् अङ्ग, दाशुषे, त्वम्, अग्ने, भद्रम्, करिष्यसि।
तव, इत्, तत्, सत्यम्, अङ्गिरः॥

मन्त्रार्थ—(अङ्गे अग्ने! यत् त्वम् दाशुषे भद्रम् करिष्यसि।) हे प्रिय अग्नि! जो तुम देनेवाले (मनुष्य) का कल्याण करती हो;

(तव इत् तत् अङ्गिरः सत्यम्।) वह तुम अंग-अंग में हो, सत्य है।

अङ्गिरः का अभिप्राय है जो संसार के अंगों में व्यापक कार्य करनेवाली अग्नि है।

इस मंत्र में जो विशेष बात कही गई है, वह यह कि जो यज्ञ (रचना-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य) में भाग लेनेवाले हैं, उनको जो सामर्थ्य प्राप्त है, वह परमात्मा की ही है, और उनका कल्याण करना यह निर्विवाद सत्य है।

इसी सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्।
नमो भरन्त एमसि॥ (ऋ० १-१-७)

पदच्छेद—उप, त्वा, अग्ने, दिवेदिवे, दोषा-वस्तः, धिया, वयम्।
नमः, भरन्तः, आ, इमसि॥

मन्त्रार्थ—(वयम् दिवे-दिवे दोषा-वस्तः धिया त्वा नमः भरन्त आ इमसि) हम दिनानुदिन एवं रात-दिन बुद्धि से तुमको नमस्कार[1] करते हुए तुम्हारी शरण में आते हैं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि इस रचना को करनेवाली अग्नि है, उसके हम आभारी हैं, क्योंकि रात-दिन और दिनानुदिन हम उसका फल भोग रहे हैं।

इन मंत्रों में यही कहा गया है कि परमात्मा ही अग्नि है। इन मंत्रों से कुछ ऐसा ही स्पष्ट होता है कि यह अग्नि, जो रचना-कार्य का मूल कारण है, वह और परमात्मा एक ही तत्त्व है। इसी कारण अथर्ववेद में भी प्राण को नमस्कार किया है। यहाँ इस मंत्र में अग्नि को नमस्कार किया है।

इससे यह कहा जा सकता है कि वेद इस मूल अग्नि और परमात्मा में अन्तर नहीं देखता। यह वह अग्नि नहीं जो हम पृथिवी पर लकड़ी-कोयला इत्यादि के जलाने से प्राप्त करते हैं। उसका वर्णन और उसकी उत्पत्ति के विषय में हम आगे चलकर लिखेंगे। यहाँ इतना ही स्पष्ट करना चाहते हैं कि जिस अग्नि का वर्णन ऋग्वेद के प्रथम मण्डल के प्रथम सूक्त में किया गया है, वह और परमात्मा अभिन्न हैं। यह अग्नि परमात्मा का लिंग है।

अगला मंत्र इस प्रकार है—

राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य दीदिविम्। वर्धमानं स्वे दमे॥
(ऋ० १-१-८)

पदच्छेद—राजन्तम्, अध्वराणाम्, गोपाम्, ऋतस्य, दीदिविम्।
वर्धमानम्, स्वे दमे॥

मन्त्रार्थ—(राजन्तम् अध्वराणाम् गोपाम् ऋतस्य दीदिविम्) रचना-कार्य में हो रहे यज्ञों की रक्षा करनेवाले ऋतों को प्रकाश करनेवाले! तुम्हारी शरण में

---

१. नमस्ते प्राण क्रन्दाय नमस्ते स्तनयित्नवे।
नमस्ते प्राण विद्युते नमस्ते प्राण वर्षते॥ (अथर्व० ११-४-२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आता हूँ। (स्वे दमे वर्धमानम्) अपने गृह में वृद्धि करनेवाले हो।

प्रश्न उपस्थित होता है कि परमात्मा अपने स्थान में वृद्धि क्यों और कैसे करता है?

अपने गृह का अभिप्राय है—मोक्षधाम। अभिप्राय यह कि जगत्-रचना हो जाती है तो जीवात्माएँ प्रकृति के सम्पर्क में आ जाती हैं और सुकृत-दुष्कृत करने की सामर्थ्य पा जाती हैं। जो सुकृत कार्य करते हैं, वे मोक्ष प्राप्त कर मोक्षधाम की वृद्धि में कारण होते हैं। अतः यह अग्निस्वरूप परमात्मा, इस प्रकाशमान यज्ञ के द्वारा सृष्टि-रचना कर जीवात्माओं को अवसर प्रदान करता है, जिससे वे सुकृत कर परमात्मा के गृह मोक्षधाम में वृद्धि कर सकें।

अगला मंत्र इस प्रकार है—

स नः पितेव सूनवेऽग्ने सूपायनो भव।
सचस्वा नः स्वस्तये॥ *(ऋग्वेद १-१-९)*

पदच्छेद—सः, नः, पिता-इव, सूनवे, अग्ने, सु-उपायनः भव।
सचस्व, नः, स्वस्तये॥

मन्त्रार्थ—(अग्ने सः नः सु-उपायनः भव पिता-इव सूनवे) हे अग्ने! हे अग्निस्वरूप परमात्मा! तुम पिता की भाँति हम पुत्रों के लिए सुलभ होवो।

(नः स्वस्तये सचस्व) हमको कल्याण से संयुक्त करो।

ऋग्वेद (१०-१२९-२) में यह कहा है कि रचना से पूर्व दो ही पदार्थ थे—आनीत् अवातम्, और स्वधा। इन दोनों के संयोग से सृष्टि की रचना होती है।

यह रचना करनेवाला अग्निस्वरूप परमात्मा है। रचना होती है 'स्वधा' में। मंत्र (ऋ० १-१-८) में 'वर्धमानं स्वे दमे' कहा है। मोक्ष धाम की वृद्धि के लिए; वहाँ का सुख-प्रसाद किसी को देने के लिए। जो असंख्य जीवात्माएँ हैं, उन सब को यह सृष्टि-रचना अवसर प्रदान करती है कि वे 'इस लोक' से 'मोक्ष धाम' को प्राप्त कर सकें। यह ही सृष्टि-रचना में परमात्मा का उद्देश्य माना गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

माईथॉलॉजी

जो पिछले अध्याय में लिखा गया है, इसे वर्तमान काल के यूरोपियन विद्वान् 'माईथॉलॉजी' (Mythology) कहते हैं।

माईथॉलॉजी के अर्थ शब्द-कोश में इस प्रकार हैं—Based on or described in a myth especially as contrasted with factual history.; Imaginary; fancied and existent only in myths.

अर्थ है—मिथ (काल्पनिक वृत्तान्त) के आधार पर अथवा वहाँ वर्णित, सत्य इतिहास से भिन्न, काल्पनिक और जो मिथ्या कहानियों में कही गई हो।

एक ऐसे ही विद्वान् ए०ए० मैकडॉनल अपनी पुस्तक 'वैदिक माइथॉलॉजी' के पृष्ठ २ पर लिखते हैं—Vedic mythology occupies a very important position in the study of the history of religions.

The Vedic Mythology—A.A. Macdonell

Pub. Indological Book House, Varanasi and Delhi (1971) Page 2

अर्थ है—वैदिक माईथॉलॉजी सम्प्रदायों के इतिहास के अध्ययन में बहुत ही महत्त्वपूर्ण स्थिति रखती है।

वेद के एक सूक्त का अर्थ हमने पिछले पृष्ठों पर लिखा है। यह कौन-सा सम्प्रदाय है, और कौन-सी कहानी है? यह 'कॉस्मोगॉनी (Cosmogony) विज्ञान का एक अंग है। कॉस्मॉगोनी का अर्थ है—सृष्टि-रचना का विज्ञान।

यह कितना ठीक है अथवा कितना मिथ्या है, यह तो कोई वैज्ञानिक ही बता सकता है। यह श्री मैकडॉनल के वश की बात नहीं थी। उन्होंने अनधिकार चेष्टा की है।

वेदों पर लिखनेवाले अधिकांश जर्मन, फ्रांसीसी और अंग्रेज विद्वान् न तो तर्कशास्त्र के ज्ञाता हैं, न ही ज्ञान-विज्ञान को जाननेवाले। सन्दर्भाधीन सूक्त में न तो कुछ कल्पना की गई है, न ही उसमें ज्ञात इतिहास से भिन्न कुछ कहा गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उक्त सूक्त का सारांश इस प्रकार है—

(१) सृष्टि-रचना से पूर्व में अग्नि (Energy) थी।

(२) उस अग्नि से रचना-यज्ञ (कार्य) सम्पन्न हुआ।

(३) उस अग्नि से ही इस जगत् के अनेकानेक पदार्थ बने हैं।

(४) वह अग्नि ही देवताओं (जगत् के अद्भुत पदार्थों) में कार्य कर रही है। मुख्य देवता हैं—सूर्य, मरुत, वायु, इन्द्र इत्यादि।

(५) इन देवताओं के कार्य को देखकर ही हमें अग्नि का अनुमान करना पड़ता है।

ये पाँचों बातें उस सूक्त में कही हैं। इनमें क्या काल्पनिक है? यह यूरोपियन लेखक नहीं बता सके।

हमने यह तर्क दिया है कि उस आदि-अग्नि और वैदिक परमात्मा के विचारित रूप में अन्तर नहीं है। यह कल्पना भी नहीं है। वेदमंत्रों के अर्थों से ऐसा ही समझ में आता है।

प्रश्न यह है कि क्या संसार कल्पना है? क्या यह बना नहीं? क्या इसके बनने में किसी महान् शक्ति का हाथ होना सत्य से भिन्न (मिथ) है?

ब्रह्मसूत्रों में कहा है कि यह अग्नि (वैश्वानर अग्नि) न तो देवता है, न ही पंच महाभूतों में एक भूत। यह अग्नि उनकी निर्माणकर्त्री है।

किसी तार्किक और वैज्ञानिक का प्रश्न यह हो सकता है कि इस आदि-अग्नि ने किस प्रकार सृष्टि-रचना की? वह इसकी व्याख्या की माँग कर सकता है।

इस माँग का उत्तर है। वेदों में उस प्रक्रिया का वर्णन है जिससे 'आनीत्-अवातम्' और 'स्वधा' से यह चराचर जगत् बना। इस अध्याय में हम यही बताने का यत्न करेंगे। पूर्व इसके कि हम रचना की प्रक्रिया लिखें, हम स्पष्ट कर दें कि जो Religion (मज़हब) के अर्थ भी नहीं समझते, उनका वेद-जैसे गम्भीर विषय पर लिखना अनधिकार चेष्टा है।

ईसाइयत एक मज़हब है। वे कौन से चिह्न हैं जिनसे कोई व्यक्ति ईसाई कहा जा सकता है? इसकी कल्पना करें तो विचार-दर्शन का इसमें इतना हाथ नहीं मिलता, जितना विश्वास और बाहरी व्यवहार का प्रतीत होता है।

इस कारण विज्ञान (साइंस) का उल्लेख मज़हब नहीं होता। विज्ञान की सिद्धि तर्क और प्रमाण से होती है; कथन और विश्वासमात्र से नहीं। जहाँ कथन और विश्वास, तर्क और प्रमाणहीन हों, वह मज़हब है।

अतः वेद साइंस (विज्ञान) है। यह मज़हब नहीं, क्योंकि इसकी प्रत्येक बात तर्कसिद्ध है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

१. सृष्टि-रचना में एक वस्तु—'स्वधा सलिलम्' है (ऋ० १०-१२९-३)। सलिल के अर्थ हैं—जिसके कण परस्पर असम्बद्ध हों, जैसे रेत के कण एक-दूसरे से पृथक्-पृथक् होते हैं।

२. प्रकृति के सूक्ष्मतम कणों को परमाणु कहा है और इनके विषय में सांख्यदर्शन में कहा है—

सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः॥ *(सां० द० १-६१)*

अर्थ—प्रकृति का प्रत्येक परमाणु साम्यावस्था में होता है और इनमें तीन शक्तियों का संतुलन होता है। ये शक्तियाँ हैं—सत्त्व, रजस् और तमस्।

इनको यदि चित्रवत् प्रकट करने का यत्न किया जाए तो प्रत्येक परमाणु का चित्र इस प्रकार बनेगा—

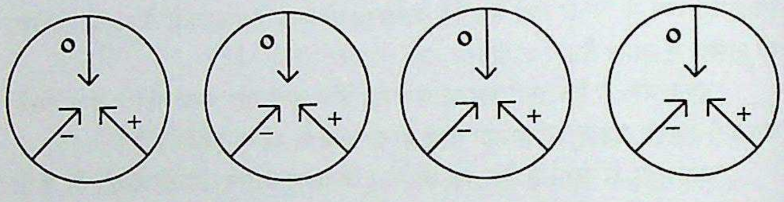

\+ धन-चिह्न सत्त्व के लिए है। – ऋण-चिह्न रजस् के लिए है।

0 शून्य-चिह्न तमस् के लिए है।

ये तीनों शक्तियाँ परमाणु के भीतर ही संतुलित रहती हैं। इसी कारण इनको साम्यावस्था (शान्तावस्था) में कहा है।

३. प्रत्येक परमाणु संतुलित अवस्था में होने के कारण, वे एक-दूसरे पर प्रभाव नहीं रखते। इसी कारण इनके समूह की अवस्था को 'सलिल अवस्था' कहा जाता है। परमाणु को वैदिक भाषा में 'त्रित' भी कहा गया है। त्रित का अर्थ है—तीन का समूह।

४. एक वेदमंत्र में त्रित का इस प्रकार वर्णन किया गया है—'त्रितः गुह्येन व्रतेन' (ऋ० १-१६३-३) अर्थात् त्रित् है गुप्त व्रत।

इसी कारण ऊपर परमाणु के चित्र में तीन शक्तियों के परमाणु भीतर एक-दूसरे को निःशेष करते दिखाए हैं।

५. इतना समझने के उपरान्त ही निम्न उद्धृत मंत्रों का अर्थ और उनमें अग्नि का कार्य समझा जा सकेगा।

हम ऋग्वेद के सूक्त १-१६३ के छः मंत्र यहाँ दे रहे हैं। उस सूक्त का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता अर्थात् विषय है—अश्वो-अग्निः।

अश्व उसे कहते हैं जो रथ को अथवा किसी कार्य को खींचता हुआ चलाए। इस कारण अश्वो-अग्निः का अर्थ है—वह अग्नि जो कार्य (जगत्-रचना-कार्य) को चलाती है।

ध्यातव्य है कि इस सूक्त में उस अग्नि के विषय में कहा गया है जो रचना-कार्य कर रही है, जिसके विषय में ही ऋग्वेद का प्रथम सूक्त कहा गया है। उस सूक्त का अर्थ हम प्रथम अध्याय में विस्तार से कह आए हैं।

इन मंत्रों में उसी अग्नि के कार्य का ढंग बताया है। इस सूक्त का प्रथम मंत्र है—

यदक्रन्दः प्रथमं जायमान उद्यन्त्समुद्रादुत वां पुरीषात्।
श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू उपस्तुत्यं महि जातं ते अर्वन्॥

(ऋ० १-१६३-१)

पदच्छेद—यत्, अक्रन्दः, प्रथमम्, जायमानः, उत्-यन्, समुद्रात्, उत वा, पुरीषात्।

श्येनस्य, पक्षा, हरिणस्य, बाहू, उपस्तुत्यम्, महि, जातम्, ते, अर्वन्॥

मन्त्रार्थ—(यत् अक्रन्दः प्रथमम् जायमानः समुद्रात् उत-यन् उत वा पुरीषात्) जो प्रथम पैदा हुआ ऊपर को अन्तरिक्ष से अथवा पूर्ण व्यापक कारण से—

(श्येनस्य पक्षा हरिणस्य बाहू महि जातम् उप-स्तुत्यम् ते अर्वन्) बाज के पंखों और हिरण की बाहों की तेजी से महान् उत्पन्न होता हुआ प्रशंसा के योग्य हे अर्वन्! तुमने घोर शोर मचाया।

मंत्र का अभिप्राय है—हे अर्वन्! (अर्वा अश्व को कहते हैं। हमने बताया है कि जगत्-रचना में अग्नि अश्व है, अतः अर्वा से अभिप्राय अश्वः अग्नि से ही है।) कहा है—हे अर्वन्! तू आरम्भ में बहुत शोर करता हुआ अन्तरिक्ष में और आदिकारण प्रकृति पर ऊपर को उठता हुआ बहुत वेग से फैल गया।

यहाँ इस सूक्त में जगत् के आरम्भ का वर्णन किया जा रहा है। जो लोग परमात्मा और इस आदि-ओज को एक ही मानते हैं और परमात्मा को चेतन तत्त्व मानते हैं, उनका तो कहना है कि जब रचना-काल आया तो परमात्मा की करनी से अग्नि की एक तरंग घोर नाद करती हुई उत्पन्न हुई और अन्तरिक्ष में बहुत वेग से फैल गई।

जो परमात्मा को नहीं मानते वे इस आरम्भ का कारण नहीं बता सकते।

ऐसा होने के उपरान्त अगले मंत्र में कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।
गन्धर्वो अस्य रशनामगृभ्णात् सूरादश्वं वसवो निरतष्ट॥

(ऋ० १-१६३-२)

पदच्छेद—यमेन, दत्तम्, त्रितः, एनम्, अयुनक् इन्द्रः, एनम्, प्रथमः, अधि-अतिष्ठत्।

गन्श्वर्वः, अस्य, रशनाम्, अगृभ्णात्, सूरात्, अश्वम्, वसवः, निः-अतष्ट॥

मन्त्रार्थ—(यमेन दत्तम् त्रितः अयुनक्) यम (परमात्मा) से दी हुई लगाम को इस त्रित ने जोप लिया (स्वीकार कर लिया)।

(एनम् प्रथमः इन्द्रः अधि अतिष्ठत्) इस पर पहले इन्द्र नियंत्रण कर रहा था। त्रित पर पहले इन्द्र का नियंत्रण था।

(गन्धर्वः अस्य रशनाम् अगृभ्णात्) नियंत्रण में आए हुए परमाणु ने इस लगाम को स्वीकार कर लिया।

(सूरात् अश्वम् वसवः निः अतष्ट) बलवान् अश्व को (तेज को) वसुओं (परमाणुओं) को भली प्रकार स्वीकार कर लो।

पहले मंत्र में कहा है कि अग्नि उत्पन्न हुई और आकाश में फैल गई।

दूसरे मंत्र में कहा है कि त्रित, जिस पर पहले इन्द्र का नियंत्रण था, अब उसने अग्नि की तरंगें, लगामों की भाँति स्वीकार कर लीं। अग्नि की लगामें स्वीकार करने पर त्रित का चित्र कुछ इस प्रकार बन जाएगा—

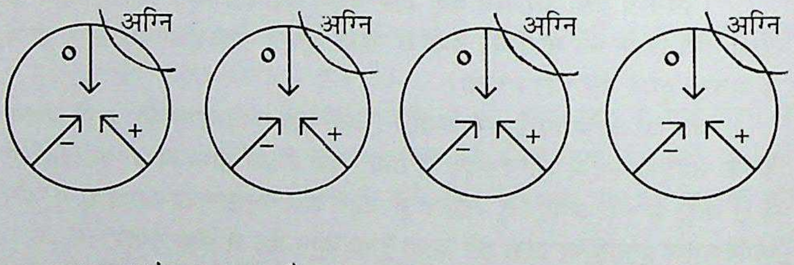

अगला मंत्र इस प्रकार है—

असि यमो अस्यादित्यो अर्वन्नसि त्रितो गुह्येन व्रतेन।
असि सोमेन समया विपृक्त आहुस्ते त्रीणि दिवि बन्धनानि॥

(ऋ० १-१६३-३)

पदच्छेद—असि, यमः, असि, आदित्यः, अर्वन्, असि, त्रितः, गुह्येन, व्रतेन।

असि, सोमेन, समया, वि-पृक्तः, आहुः, ते, त्रीणि, दिवि, बन्धनानि॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रार्थ—(अर्वन् असि यमः असि आदित्यः असि) हे अर्वन्! तू यम है, तू प्रकाशस्वरूप है।

(गुह्येन व्रतेन त्रितः असि) छुपे हुए व्रत से युक्त तू त्रित है।

(सोमेन समया विपृक्तः असि) सोम (अर्थात् आपः साम्यावस्था से फट गए—असाम्यावस्था में हो गए) तुम हो।

जब अग्नि के प्रभाव से साम्यावस्था भंग हुई तो परमाणु की अवस्था का चित्र इस प्रकार होगा—

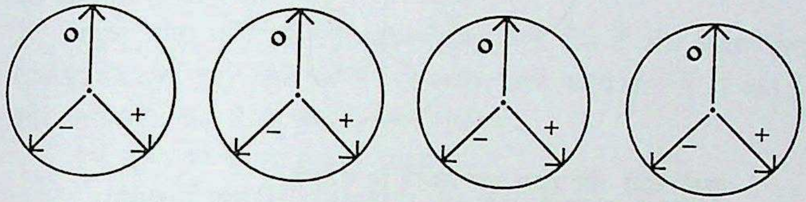

शक्तियाँ बहि:मुख हो गई हैं।

चित्र १ में शक्तियाँ संतुलित थीं। तेज के प्रभाव से यहाँ परमाणु में शक्तियाँ बहि:मुख हो गईं। परमाणु परस्पर आकर्षित होने लगे। तब क्या हुआ?

(ते आहुः त्रीणि दिवि बन्धनानि) इस पर कहते हैं कि अन्तरिक्ष में तीन (प्रकार के) निबन्धन (संयोग) बन गए।

इन निबन्धों का चित्र इस प्रकार बनेगा—

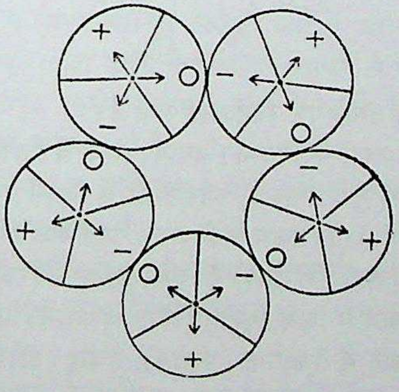

इस निबन्धन में चारों ओर सत्त्व गुण स्वतन्त्र रह गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

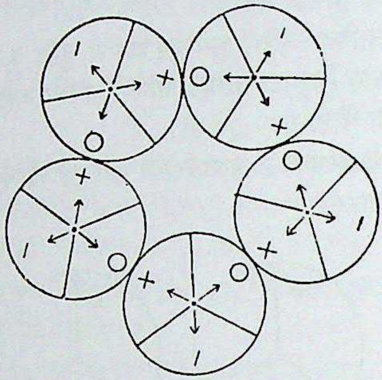

इसमें चारों ओर रजस् गुण स्वतंत्र रह गया है।

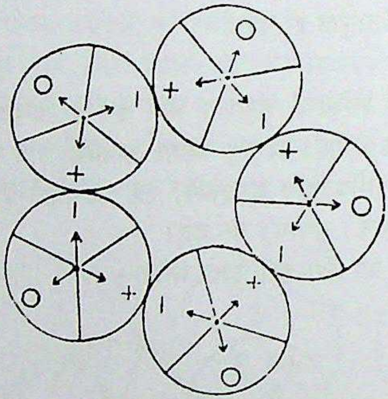

इसमें चारों ओर तमस् गुण स्वतंत्र रह गया है।

इस प्रकार तीन प्रकार के निबन्धन बन गए। एक वे जिनमें सत्त्व गुण प्रधान है, दूसरे वे जिनमें रजस् गुण प्रधान हैं, और तीसरे वे जिनमें तमस् गुण प्रधान हैं।

वर्तमान विज्ञान में ये तीन प्रकार के निबन्धन 'एटॉमिक पार्टिकिल्स' कहे जाते हैं। एक वे जो प्रोटोन (सत्त्व गुण वाले) हैं। दूसरे इलेक्ट्रॉन (रजस् गुणवाले), और तीसरे जिनमें न्यूट्रल चार्ज है जिन्हें न्यूट्रोन (तमस् गुणवाले) कहते हैं।

इनको सांख्यदर्शन में वैकारिक (प्रोटोन), तेजस् (इलेक्ट्रॉन) और भूतादि (न्यूट्रोन) कहा है।

ब्रह्मसूत्र में कहा है—

महद्दीर्घवद्वा ह्रस्वपरिमण्डलाभ्याम्॥ (ब्र० सू० २-२-११)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थात्—महत् से दीर्घ की भाँति अथवा ह्रस्व और परिमण्डलों से।

इनसे क्या? (सृष्टि-रचना होती है। महत् से दीर्घ रचना का सूचक है।)

महत् से दीर्घ बनते हैं जब परमाणुओं में गुणों की दिशा बदलती है। ये परस्पर निःशेष करने के स्थान जब बहिर्मुख हो जाते हैं तो परस्पर आकर्षण करते हैं। इसी प्रकार ह्रस्व से परिमण्डल (ऐटम) बनते हैं।

ऐटम में प्रोटोन और न्यूट्रोन के चारों ओर इलेक्ट्रॉन घूमने लगते हैं। इसी को परिमण्डलीय गति कहा है। ऐटम का नाम परिमण्डल इसी कारण पड़ा है कि वह इस गति से बनता है।

सत्त्व, तमस् कण (प्रोटोन तथा न्यूट्रोन) भारी होते हैं और तेजस् कण (इलेक्ट्रॉन) उनसे बहुत छोटे होते हैं। इस कारण तमस्-सत्त्व बीच में हो जाते हैं और उनके चारों ओर तेजस् चक्र में घूमने लगते हैं।

इसी सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि त्रीण्यप्सु त्रीण्यन्तः समुद्रे।
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः परमं जनित्रम्॥

(ऋ० १-१६३-४)

पदच्छेद—त्रीणि, ते आहुः, दिवि, बन्धनानि, त्रीणि अप्सु, त्रीणि अन्तः समुद्रे।

उत-इव, मे, वरुणः छन्त्सि, अर्वन् यत् , ते आहुः परमम्, जनित्रम्।

मन्त्रार्थ—(ते आहुः त्रीणि बन्धनानि दिवि (तानि) त्रीणि अप्सु। (तानि) त्रीणि अन्तः समुद्रे।) कहते हैं कि वे तीन निबन्धन द्युलोक में, वही तीन आपः में और वही तीन अन्तरिक्ष में हैं।

(उत-इव मे वरुणः छन्त्सि अर्वन्) और हे अर्वन्! तू वरुण द्वारा छन्द कहता है, मेरे लिए। (यहाँ वरुण में विभक्ति-व्यत्यय से वरुणेन किया है।)

(यत्र ते आहुः परमम् जनित्रम्) जहाँ वे कहते हैं परम का जन्म हुआ। (परम का अभिप्राय ब्रह्माण्ड से है)

पूर्ण जगत् ऐटॉमिक पार्टिकल्स (आपः) से ही उत्पन्न हुआ है॥

अगला मंत्र इस प्रकार है—

इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा शफानां सनितुर्निधाना।
अत्रा ते भद्रा रशना अपश्यमृतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः॥

(ऋ० १-१६३-५)

पदच्छेद—इमा, ते, वाजिन्, अव-मार्जनानि, इमा, शफानाम्, सनितुः नि-धाना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अत्र, ते, भद्राः, रशनाः, अपश्यम्, ऋतस्य, याः, अभि-रक्षन्ति, गोपाः ॥

मन्त्रार्थ—वाजिन् ते इमा अव-मार्जनानि इमा शफानाम् सनितुः निधाना) हे वाजिः ! तेरे शुभ करनेवाले, बाँटनेवाले तथा आश्रयवाले स्थान हैं।

(अत्र ते भद्राः रशनाः अपश्यम् ऋतस्य या अभिरक्षन्ति गोपाः) यहाँ कल्याणकारी रश्मियाँ (लगाम लगाने वाली) ऋतों की रक्षा करती हैं।

ऋत का अर्थ है—प्राकृतिक नियम (Natural Laws)। ये नियम आपः (Atomic Particles) पालन करते हैं। इससे संसार के पदार्थ बनते हैं और अपने-अपने स्थान पर भोग के लिए प्रयुक्त होते हैं। ये निबन्धन अपने-अपने स्थान पर रहते हुए निर्माण-कार्य कर रहे हैं।

अगला मंत्र इस प्रकार है—

आत्मानं ते मनसारादजानामवो दिवा पतयन्तं पतङ्गम्।
शिरो अपश्यं पथिभिः सुगेभिररेणुभिर्जेहमानं पतत्रि॥

(ऋ० १-१६३-६)

पदच्छेद—आत्मानम्, ते, मनसा, अरात्, अजानाम्, अवः दिवा, पतयन्तम्, पतङ्गम्।

शिरः, अपश्यम्, पथिभिः, सु-गेभिः, अरेणुभिः, जेहमानम्, पतत्रि॥

मन्त्रार्थ—(ते पतङ्गम् आत्मानम् दिवा मनसा अरात् अवः पतयन्तम् अजानाम्) तेरे पतंगा-आत्मा को समीप से मन के द्वारा अन्तरिक्ष से पृथिवी की ओर गिरता हुआ देखता (जानता) हूँ। (पतंगे का अर्थ 'चिंगारी' है) जीवात्माएँ चिंगारियों की भाँति गिरती दिखाई देती हैं।

(सुगेभिः अरेणुभिः पथिभिः जेहमानम् शिरः पतत्रि अपश्यम्) सुखकारक निर्मल पथों द्वारा यत्न से शिर को व्याप्त होता हुए देखता हूँ।

(शिर से अभिप्राय सूक्ष्म शरीरधारी जीवात्मा है।)

यह माना जाता है कि जब सृष्टि-रचना आरम्भ होती है और जीवात्माएँ पृथिवी की ओर आने लगती हैं तो तीन तत्त्व (वायु, जल, तथा अग्नि) जीवात्माओं को अपनी लपेट में ले लेते हैं और वह उनका सूक्ष्म शरीर बन जाता है।[१]

---

१. देखें ब्रह्मसूत्र ३-१-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय

अग्नि–२

गत अध्याय में हमने अग्नि के प्रारम्भिक कार्य और फिर रचित जगत् में इसके कार्य का कुछ वर्णन किया है। यह अग्नि किस प्रकार कार्य आरम्भ करती है—यह भी वर्णन किया है।

वेद का एक पूर्ण सूक्त (१-५८) ही इस विषय पर है। इस सूक्त का प्रथम मंत्र है—

नू चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते होता यद् दूतो अभवद्विवस्वतः।
वि साधिष्ठेभिः पथिभी रजो मम आ देवताता हविषा विवासति॥

(ऋ० १-५८-१)

पदच्छेद—नु, चित् सहः-जाः, अमृतः, नि, तुन्दते, होता, यत्, दूतः, अभवत्, विवस्वतः।

वि, साधिष्ठेभिः, पथि-भिः, रजः, ममे, आ, देव-ताता, हविषा विवासति॥

अन्वयार्थ—(नु चित् सहःजाः अमृतः नि तुन्दते होता दूतः अभवत् विवस्वतः) शीघ्र सहज प्रकट होनेवाली नाशरहित निरन्तर तीव्र गति से चलती हुई, यज्ञ करती हुई, दूत बन जाती हुई प्रकाशित होती है।

('दूत बन जाती है' का अभिप्राय है—यह यज्ञ की उपज (रचना-कार्य) को दूर तक ले जाती है।)

(रजः साधिष्ठेभिः पथिभिः आ वि ममे देवताता हविषा विवासति) अन्तरिक्ष के पिण्ड भलीभाँति अधिष्ठानों द्वारा, मार्गों द्वारा उपस्थित होते हैं, देवताओं को प्राप्त होते हैं और यज्ञ की उपज को प्रकाशित करते हैं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि आदि-अग्नि जब उत्पन्न होती है तो दूत की भाँति दूर-दूर तक हवि को ले जाती है और उसे अन्तरिक्ष की धुरी—देवताओं में प्रकाशित करती है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दूत का अभिप्राय हमने ऊपर समझा दिया है।)

इसी सूक्त का दूसरा मंत्र इस प्रकार है—

आ स्वमद्म युवमानो अजरस्तृष्वविष्यन्नतसेषु तिष्ठति।
अत्यो न पृष्ठं प्रुषितस्य रोचते दिवो न सानु स्तनयन्नचिक्रदत्॥

(ऋ० १-५८-२)

पदच्छेद—आ, स्वम्, अद्म, युवमानः, अजरः, तृषु, अविष्यन्, अतसेषु, तिष्ठति।

अत्यः, न, पृष्ठम्, प्रुषितस्य, रोचते, दिवः, न, सानु, स्तनयन्, अचिक्रदत्॥

मन्त्रार्थ—(अजरः स्वम् अद्म युवमानः अविष्यन् तृषु स्तनयन् न अचिक्रदत्) क्षरित न होनेवाली अपने भाग (परमाणुओं) को, जिस पर यह प्रभाव उत्पन्न कर रही थी, संयुक्त करती हुई अथवा विभक्त करती हुई, शीघ्र व्योम में आरूढ़ हो जाती है।

(प्रुषितस्य पृष्ठम् अत्यः न रोचते दिवः सानु, न स्तनयन् अचिक्रदत्) जलते हुए की पीठ पर यह [अश्वाग्नि] सूर्य-समान [प्रकाशित] धूम्र के शिखर पर घोर शब्द करती है।

यह उस समय का वर्णन है जब हिरण्यगर्भ का स्वरूप बन जाता है। हिरण्यगर्भ को वर्तमान विज्ञान में 'नेबुला' (Nebula) कहते हैं। इस मंत्र में शब्द है—सानु। अर्थ है मेघ अर्थात् बादल। यह हिरण्यगर्भ में धुएँ के समान होने को प्रकट करता है। प्रुषितस्य—गर्भ हुए-हुए का।

इस मंत्र में अग्नि का कार्य हिरण्यगर्भ की अवस्था में वर्णन किया है।

इस सूक्त का तीसरा मंत्र इस प्रकार है।—

क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो होता निषत्तो रयिषाळमर्त्यः।
रथो न विक्ष्वृञ्जसान आयुषु व्यानुषग्वार्या देव ऋण्वति॥

(ऋ० १-५८-३)

पदच्छेद—क्राणा, रुद्रेभिः, वसु-भिः, पुरः-हितः, होता, नि-सत्तः, रयिषाट्, अमर्त्यः।

रथः, न, विक्षु, ऋञ्जसानः, आयुषु, वि, आनुषक्, वार्या, देवः, ऋण्वति।

मन्त्रार्थ—(क्राणा रुद्रेभिः वसुभिः पुरः-हितः होता नि-सतः रयिषाट् अमर्त्यः) वहन करते हुए प्राणों (ईश्वरीय शक्ति) के द्वारा कार्य करनेवाली, सामने स्थापित किया हुआ यज्ञ करनेवाली, स्थित, धन (निर्माण किए हुए) को संचय करनेवाली (रखती) है।

(देवः विक्षु रथः न आयुषु ऋञ्जसानः आनुषक् वार्या ऋण्वति) दिव्य

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निर्मित पदार्थ रथ की भाँति छोटे अणुओं को ही विशेष अनुकूल व्यवहार-योग्य बनाती है।

उसी अग्नि के कार्य का वर्णन हो रहा है। उस अग्नि को प्राण [कर्म-शक्ति] पूर्व में हित करनेवाली और यज्ञरूप में कार्य करनेवाली को अपने निर्मित पदार्थों में स्वामी की भाँति रहने की बात कही है।

नव-निर्मित पदार्थ चक्र की भाँति घूमने लगते हैं। यह हिरण्यगर्भ (नेबूला) का चित्रण है।

इस सूक्त का अगला मंत्र है—

वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते वृथा जुहूभिः सृण्या तुविष्वणिः।
तृषु यदग्ने वनिनो वृषायसे कृष्णं त एम रुशदूर्मे अजर॥

(ऋ० १-५८-४)

पदच्छेद—वि, वात-जूतः, अतसेषु, तिष्ठते, वृथा, जुहूभिः, सृण्या, तुवि-ष्वणिः।

तृषु, यत्, अग्ने, वनिनः, वृषा-यसे, कृष्णम्, ते, एम, रुशत्-ऊर्मे, अजर॥

मन्त्रार्थ—(वातजूतः तुवि-स्वनिः जुहूभिः सृण्या वृथा अतसेषु वि तिष्ठते) वेग से गति में आई-हुई बहुत आवाजवाली निरन्तर गतिवालों में ठहर जाती है।

(अजरः अग्ने रुशत्-ऊर्मे वनिनः वृष-यसे) हे अजरः (न बूढ़ी होनेवाली) अग्नि! चमकती हुई लपटों के समूहवाली,

(यत् ते एम तृषु कृष्णम्) जब वह शीघ्र कुरेदने लगती है।

इस मंत्र में कहा है कि जब हिरण्यगर्भ के कुछ पदार्थ व्योम में ठहर जाते हैं, तब अग्नि अपनी चमकती हुई लपटों से उनको कुरेदने (तोड़-फोड़ करने) लगती है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो यूथे ना साह्वाँ अव वाति वंसगः।
अभिव्रजन्नक्षितं पाजसा रजः स्थातुश्चरथं भयते पतत्रिणः॥

(ऋ० १-५८-५)

इस मंत्र का देवता अग्नि है।

पदच्छेद—तपुः-जम्भुः, वने, आ, वात-चोदितः, यूथे, न, साह्वान्, अव वाति, वंसगः।

अभि-व्रजन्, अक्षितम्, पाजसा, रजः, स्थातुः, चरथम्, भयते, पतत्रिणः॥

मन्त्रार्थ—(तपुः-जम्भः वात-चोदितः यूथे न वने साह्वान् आ अव वाति वंसगः) तपे हुए (अग्नि के समान) मुखवाला वात (गति) से प्रेरित (रश्मियों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के) समूह समान उन सबको सहन अर्थात् अवहेलना करती हुई सुन्दर गतिवाली है (अग्नि)।

(अक्षितम् रजः पाजसा स्थातुः चरथम् अभि-व्रजन् पतत्रिणः भयते) न नाश होनेवाला रजः (नक्षत्र) बल से स्थावर और गतिशील (अग्नि) से डरता है।

इस मंत्र में भी अग्नि के कार्य का ही वर्णन है। विभिन्न प्रकार के पदार्थ बन रहे थे। कुछ व्यर्थ थे, कुछ ज्वलित मुखवाले थे। कुछ अपने-अपने मार्ग में चल रहे थे।

सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा रयिं न चारुं सुहवं जनेभ्यः।
होतारमग्ने अतिथिं वरेण्यं मित्रं न शेवं दिव्याय जन्मने॥

(ऋ० १-५८-६)

पदच्छेद—दधुः त्वा, भृगवः, मानुषेषु, आ, रयिम्, न, चारुम्, सुहवम्, जनेभ्यः।

होतारम्, अग्ने, अतिथिम्, वरेण्यम्, मित्रम्, न, शेवम्, दिव्याय, जन्मने।।

मन्त्रार्थ—मानुषेषु भृगवः त्वा सु-हवम् चारुम् जनेभ्यः रयिम् न आ दधुः) मनुष्यों में विज्ञान के विद्वान् तुम्हारा सुखकारक आह्वान है कि ये जानेवाले धन की भाँति लोगों के लिए धारण करते हैं।

(अग्ने त्वा होतारम् वरेण्यम् अतिथिम् मित्रम् न शेवम् दिव्याय जन्मने) हे अग्नि! वरण करने योग्य होता की मित्र अतिथि के समान तुझको जन्म में सुख के लिए धारण करते हैं।

मंत्र का अभिप्राय है कि अग्नि अतिथि की भाँति हिरण्यगर्भ में पहुँचकर हो रहे कार्य में सहायक होती है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

होतारं सप्त जुह्वो३ यजिष्ठं यं वाघतो वृणते अध्वरेषु।
अग्निं विश्वेषामरतिं वसूनां सपर्यामि प्रयसा यामि रत्नम्॥

(ऋ० १-५८-७)

पदच्छेद—होतारम्, सप्त जुह्वः, यजिष्ठम्, यम्, वाघतः, वृणते, अध्वरेषु। अग्निम्, विश्वेषाम्, अरतिम्, वसूनाम्, सपर्यामि, प्रयसा, यामि, रत्नम्॥

मन्त्रार्थ—(सप्त जुह्वः वाधतः अध्वरेषु यजिष्ठम् यम् होतारम् वृणते) सात आहुति देनेवाले बुद्धिमान् यज्ञों में अतिशय यज्ञ करनेवाले होता को वरते हैं।

(विश्वेषाम् वसूनाम् अरतिम् अग्निम् प्रयसा सपर्यामि रत्नम् यामि) सम्पूर्ण बने हुए पदार्थों को प्राप्त करानेवाली अग्नि को यत्न से माँगता (सेवन करता) हूँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और रत्न को प्राप्त करता हूँ।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि जो भृगवः है वे सात जिह्वः अग्नि में आहुति देते हैं अर्थात् अग्नि को तीव्र करते हैं और अतिशय यज्ञ करते हैं। इस यज्ञ में अग्नि सम्पूर्ण बने हुए पदार्थों को प्राप्त कर (प्रकृति के परमाणुओं से प्राप्त कर) रत्न (उपयोगी) पदार्थ बनाती हैं।

यहाँ वैज्ञानिकों द्वारा अग्नि से नए-नए पदार्थ बनाने की बात कही है।

सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

अच्छिद्रा सूनो सहसो नो अद्य स्तोतृभ्यो मित्रमहः शर्म यच्छ।
अग्ने गृणन्तमंहस उरुष्योर्जो नपात् पूर्भिरायसीभिः॥

(ऋ० १-५८-८)

पदच्छेद—अच्छिद्रा, सूनो, सहसः, न, अद्य, स्तोतृ-भ्यः, मित्र-महः, शर्म, यच्छ।

अग्ने, गृणन्तम्, अंहसः, उरुष्य, ऊर्जः, नपात्, पूः-भिः, आयसीभिः॥

मन्त्रार्थ—(सहसः सूनो मित्र-महः स्तोतृ-भ्यः न अद्य अच्छिद्रा शर्म यच्छ) सहज बल से उत्पन्न अनुकूल तेजवाली (अग्नि) हमारे स्तोताओं के लिए अब दोषरहित सुख देवे।

(ऊर्जः नपात् अग्ने गृणन्तम् आयसीभिः पूःभि अंहसः उरुष्य) शक्ति की सन्तान, हे अग्नि! स्तुतिकर्ता को सुदृढ़ रक्षा द्वारा पापों से बचाओ।

मंत्र का अभिप्राय है—वे प्राणी जो ऊपर के पद में कहे अनुसार स्तोता बने हैं, उनको अग्नि भूल करने से बचाए। स्तोता गुण-कर्म-स्वभाव को जाननेवाले होते हैं।

सूक्त का अगला मंत्र है—

भवा वरूथं गृणते विभावो भवा मघवन् मघवद्भ्यः शर्म।
उरुष्याग्ने अंहसो गृणन्तं प्रातर्मक्षू धियावसुर्जगम्यात्॥

(ऋ० १-५८-९)

पदच्छेद—भव, वरूथम्, गृणते, विभाऽवः, भव, मघवन्, मघवत्-भ्यः, शर्म।

उरुष्य, अग्ने, अंहसः, गृणन्तम्, प्रातः मक्षू, धिया-वसुः, जगम्यात्॥

मन्त्रार्थ—(विभावः गृणते वरूथम् भव मघवन् मघवन्-भ्यः शर्म भव) हे प्रकाशस्वरूप अग्नि! स्तुति करनेवाले के लिए गृह (आश्रय) होवो (उसको बसाओ)। हे अग्नि! शक्तिशालियों के लिए सुखकारक होवो।

(अग्ने अंहसः उरुष्य धिया-वसुः प्रातः गृणन्तम् मक्षू जगम्यात्) हे अग्नि!

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्तुति करनेवालों को पाप-कर्म से बचाओ। बुद्धियुक्त कर्मवाली (तू अग्नि!) शीघ्र आवे।

इस सूक्त में जो कुछ कर्म अग्नि का कहा गया है, वह स्पष्ट परमात्मा की अग्नि का ही है। नक्षत्रों का बनना, हिरण्यगर्भ में पदार्थों का पकना, नक्षत्रों का अपने मार्गों पर स्थिर होना, साथ ही पृथिवी पर मनुष्यों में बुद्धि का परिपक्व होना, प्राणों का शरीर में संचारित होना और फिर शरीर में जीवात्मा का आना—ये सब परमात्मा की शक्ति के कार्य हैं। इन्द्र के कार्य भिन्न हैं। इसी प्रकार 'जातवेद: अग्नि' (chemical energy) के दूसरे कार्य हैं। उदाहरण के रूप में, शरीर के धातु बनाना (शरीर की वृद्धि)। परिमण्डलों में कणों का परस्पर आकर्षण, लकड़ी में रासायनिक शक्ति जो जलने पर ऊष्मा और लपटें प्रकट होती हैं, ये सब इन्द्र तथा 'जातवेद:' अग्नि के कार्य हैं।

परमात्मा की अग्नि मनुष्य के प्राणों और बुद्धि तक ही सीमित मानी गई है।

अग्नि →त्रित →इंद्र →अग्नि (जातवेद:) यह रचना-प्रक्रिया है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

वैश्वानर अग्नि

हमने अभी तक उस अग्नि के विषय में ही जाना है, जिससे प्रकृति से सृष्टि के पदार्थ बने हैं। पहले अध्याय में तो केवल यह बताया है कि यह अग्नि सृष्टि-रचना से पूर्व भी थी। दूसरे अध्याय में यह कहा है कि इस अग्नि ने किस प्रकार रचना-कार्य आरम्भ किया और फिर प्रकृति से किस प्रकार वर्तमान चराचर जगत् बन गया। तीसरे अध्याय में हिरण्यगर्भ में इसके कार्य का वर्णन है।

अब इस अध्याय में इसी अग्नि के स्वरूप-परिवर्तन के विषय में कहेंगे।

जब अग्नि (परमात्मा का तेज) परमाणुओं पर लगाम की भाँति आरूढ़ हुई, तो दो बातें हुईं। पहली बात यह कि त्रित पर पहले इन्द्र अधिष्ठित था। यह इन्द्र क्या था? इसके विषय में शतपथ ब्राह्मण में कहा है—

रचना से पूर्व असत् (अव्यक्त) प्रकृति ही थी। (शत० ब्राह्मण ६-१-१-१) वहाँ प्रश्न उठाया है कि असत् (अव्यक्त) क्या था? कहा है कि यह असत् पहले ऋषि (परमाणु) ही थे। फिर पूछा है—परमाणु अर्थात् ऋषि कौन थे?

प्राण ही वे ऋषि थे जो इस सृष्टि को चाहते थे—श्रम (प्रयत्न) तथा तप (निरन्तर कार्य) करने से वे श्रम से (अरिषन्) खिन्न हो गए। इसी कारण ये ऋषि कहाए। शतपथ ब्राह्मण की इस कण्डिका का अभिप्राय यह है कि अव्यक्त परमाणु में प्राण था। वह सृष्टि-रचना चाहता था। उसने तप और श्रम किया। वह अरिषन् (खिन्न) हो गया।

परमाणु साम्यावस्था से असाम्यावस्था में हो गए। प्रत्येक परमाणु में प्राण था। शतपथ ब्राह्मण की अगली कण्डिका (६-१-१-२) में कहा है—

स योऽयं मध्ये प्राणः। एषऽएवेन्द्रस्तानेष प्राणान्मध्यतऽइन्द्रियेणैन्द्ध यदैन्द्ध तस्मादिन्धऽइन्धो ह वै तमिन्द्रऽइत्याचक्षते परोऽक्षं परोऽक्षकामा हि देवास्त इद्धाः सप्त नाना पुरुषानसृजन्त॥

(शत० ६-१-१-२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अर्थ है—ऋषि (परमाणु) के मध्य में इन्द्र ही था। इसी इन्द्र ने अपने इन्द्रिय (पराक्रम) से मध्य में इन प्राणों को दीप्त किया। इन्ध=दीप्ति करने से (इसका) इन्ध नाम पड़ा। इसी दीप्ति करनेवाले को इन्द्र कहते हैं। इन्द्र परोक्ष (छुपा हुआ) था। देवता छुपे हुए होते हैं। दीप्त हुए इन प्राणों से सात पृथक्-पृथक् पुत्र उत्पन्न किये।

यहाँ हमारा केवल इतना बताने से अभिप्राय है कि जो मंत्र (ऋ० १-१६३-२) में कहा था कि परमात्मा के तेज के प्रभाव से पहले त्रित पर इन्द्र अधिष्ठित था, यहाँ भी वही कहा है कि इन्द्र त्रित के भीतर छुपा बैठा था। वह प्रत्यक्ष हुआ तो एक महान् (शक्ति) के रूप में प्रकट हुआ।

अभी तक हमने यह ही कहा है कि सृष्टि-रचना-कार्य अग्नि ने आरम्भ किया था और संसार के विविध पदार्थ प्रकृति पर अग्नि के प्रभाव से बने हैं।

यहाँ प्रश्न उत्पन्न होता है कि अग्नि और परमात्मा एक ही हैं अथवा दो पृथक्-पृथक् तत्त्व हैं? ऋग्वेद के प्रथम मंडल के प्रथम सूक्त के अध्ययन से पता चलता है कि अग्नि की उत्पत्ति नहीं; यह पहले से ही विद्यमान थी। परमात्मा की भी उत्पत्ति नहीं। वह भी 'स्वयंभू' कहा गया है अर्थात् यह सदा से है। इसी प्रकार अग्नि भी पहले ही थी। फिर यह भी कहा है कि इसे पूर्व के ऋषिः जानते थे। पूर्व का अभिप्राय है—पूर्व-कल्प के और उससे भी पूर्व-कल्प के, अर्थात् परमात्मा की भाँति अग्नि भी सदा से ही है।

इस पर प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि अग्नि परमात्मा ही तो नहीं अथवा परमात्मा अग्नि ही तो नहीं?

महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने ऋ० १-१-१ का अर्थ करते हुए कहा है—

....(अग्नि) परमेश्वरं भौतिकं वा

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद् विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातारिश्वानमाहुः ॥

(ऋ० १-१६४-४६)

इस प्रमाण से स्वामी जी ने अग्नि और परमात्मा में अन्तर नहीं माना। साथ ही कह दिया है—'भौतिकं वा' अर्थात् भौतिक अग्नि भी। स्वामी जी का यह कथन ठीक नहीं है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अग्नि जब अवातम् (ऋ० १०-१२९-२) थी, तब क्या परमात्मा भी अवातम् (निष्क्रिय) था? इस कारण ही हमारा यह मत है कि अग्नि परमात्मा का लिंग है। परमात्मा चेतन होने से अपने लिंग का प्रयोग चाहे तो करता है, चाहे नहीं करता।

इससे यह प्रतीत होता है कि परमात्मा एक अनादि तत्त्व है। अग्नि उसका

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिंग है और परमात्मा जहाँ चाहता है, उसे कार्यरत कर देता है। शक्तिमान और शक्ति हैं तो पृथक्-पृथक्, परन्तु सदा साथी होने से एक ही स्वीकार कर लिये जाते हैं।

यह अग्निः जब कार्यरत होती है तो पूर्ण जगत्-रचना का नेता बन जाती है। इस कारण इसका नाम वैश्वानर पड़ गया है। वैश्वानर के विषय पें वेद में ही व्याख्या की गई है। इस विषय में तीन मंत्रों का एक सूक्त है। सूक्त के मंत्र इस प्रकार हैं—

वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा हि कं भुवनानामभिश्रीः।
इतो जातो विश्वमिदं वि चष्टे वैश्वानरो यतते सूर्येण॥

(ऋ० १-९८-१)

तीनों मंत्रों का देवता है—वैश्वानरः।

पदच्छेद—वैश्वानरस्य, सु-मतौ, स्याम, राजा, हि, कम्, भुवनानाम्, अभि-श्रीः।

इतः, जातः, विश्वम्, इदम्, वि, चष्टे, वैश्वानरः यतते, सूर्येण॥

मन्त्रार्थ—(वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम हि कम् अभिश्रीः भुवनानाम् राजा) वैश्वानर की शुभ मति में हम होंगे। वह लोकों में सुख और कल्याण के लिए नक्षत्रों में विराजनेवाला है।

(इतः वैश्वानरः जातः इदम्, विश्वम् वि चष्टे सूर्येण यतते) यह वैश्वानर उत्पन्न हुआ है। इस सब (संसार) को देखता है और सूर्य से युक्त होता है।

अभिप्राय स्पष्ट ही है।

पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्यां पृष्टो विश्वा ओषधीरा विवेश।
वैश्वानरः सहसा पृष्टो अग्निः स नो दिवा स रिषः पातु नक्तम्॥

(ऋ० १-९८-२)

पदच्छेद—पृष्टः, दिवि, पृष्टः, अग्निः, पृथिव्याम्, पृष्टः विश्वाः, ओषधीः आ, विवेश।

वैश्वानरः, सहसा, पृष्टः अग्निः, सः, नः, दिवाः, सः, रिषः पातु, नक्तम्॥

मन्त्रार्थ—(अग्निः दिवि पृष्टः पृथिव्याम् पृष्टः विश्वाः ओषधीः पृष्टः आ विवेश) अग्नि दिव्य गुणवाली पृथिवी की सब ओषधियों (वनस्पतियों) को छूती है और उनमें प्रवेश करती है (कार्य करती है)।

यह अग्नि द्युलोक में पृथिवी में मिली हुई है। (यह) सब ओषधियों में प्रविष्ट रहती है।

(वैश्वानरः अग्निः सहसा पृष्टः सः नः दिवा नक्तम् सः रिषः पातु)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वैश्वानर अग्नि बल से मिश्रित है। वह हमारी दिन और रात हिंसों से रक्षा करे।

मंत्र का आशय यह है कि यह अग्नि संसार के सब पदार्थों में मिली हुई है सबका संगठन करती है। वह हमारी रक्षा करे।

इस सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

(ऋ० १-९८-३)

पदच्छेद—वैश्वानर, तव, तत्, सत्यम्, अस्तु, अस्मान्, रायः मघवानः सचन्ताम्।

तत्, नः, मित्रः, वरुणः, मामहन्ताम्, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी, उत, द्यौः॥

मन्त्रार्थ—(वैश्वानर तव तत् सत्यम् अस्तु अस्मान् मघवानः रायः सचन्ताम्) हे वैश्वानर! तुम्हारे वे कार्य सत्य (सफल) होवें। धनवान् लोग और उनका धन हमसे संयुक्त होवे (हमारे काम में आए)।

(नः तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौ मामहन्ताम्) हमारे मित्र, वरुण, प्रकृति, अन्तरिक्ष, पृथिवी और सूर्य हमारी पालना करें। यह अग्नि उनमें कार्य कर रही है।

इन मंत्रों का अभिप्राय यह है कि वैश्वानर (अग्नि) सब पदार्थों में मिली हुई है। वह सूर्य से पृथिवी-पर्यन्त सब पदार्थों से संयुक्त है और मित्र, वरुण, अन्तरिक्ष आदि प्रकृति के परिणामों से सूर्य के द्वारा पालना करती है।

वह आदि-अग्नि ही यह वैश्वानर है और यह सम्पूर्ण जगत् के पदार्थों में विद्यमान है।

इन मंत्रों में कहा है कि वैश्वानर अग्नि संसार के सब पदार्थों को छू रही है और उनमें मिली हुई है। परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि यह वह अग्नि है, जो कोयला-लकड़ी आदि जलाने से उत्पन्न होती है। वह अग्नि रासायनिक (chemical energy) इन्द्र का रूप है। वैश्वानर अग्नि का अभिप्राय 'अदेवता' अग्नि से है।

प्रत्येक पदार्थ में परमाणु रहते हैं और वे परमाणु संयुक्त होकर पदार्थों को बनाते हैं। यह वैश्वान्तर अग्नि का कार्य है।

वेदमंत्रों का अभिप्राय यह ही प्रतीत होता है कि वह इन्द्र से पृथक् है। जिस अग्नि से परमाणु की भीतर की त्रिगुणात्मक शक्ति बहिर्मुख होती है, वह अग्नि जब तक परमाणुओं की त्रिगुणात्मक शक्ति बहिर्मुख किए रहती है तब तक उन परमाणुओं पर आरूढ़ रहती है। इसी कारण वह सब पदार्थों में विद्यमान कही

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गई है और सबकी नेता है।

जब मैटर (पदार्थ) और एण्टी-मैटर परस्पर टकराते हैं तो न्यूट्रोन्ज बनता है और δ (गामा रे) से निकलकर अन्तरिक्ष में विलीन हो जाती है। ऐसा माना जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि वही (δ) दैवी अग्नि है। जब तक मैटर, ऐण्टीमैटर बने रहते हैं, वह अग्नि उन पर आरूढ़ रहती है। इसी कारण कहा है कि वैश्वानर सबको छू रही है।

वैश्वानर अग्नि के विषय में एक अन्य सूक्त भी है। इस सूक्त का प्रथम मंत्र इस प्रकार है—

वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये त्वे विश्वे अमृता मादयन्ते।
वैश्वानर नाभिरसि क्षितीनां स्थूणेव जनां उपमिद् ययन्थ॥

(ऋ० १-५९-१)

पदच्छेद—वयाः, इत्, अग्ने, अग्नयः, ते अन्ये, त्वे, विश्वे, अमृताः, मादयन्ते।

वैश्वानर, नाभिः, असि, क्षितीनाम्, स्थूणा-इव, जनान्, उप-मित्, ययन्थ॥

मन्त्रार्थ—(अग्ने! अन्ये अग्नयः ते वयाः इत त्वे विश्वे अमृताः मादयन्ते) हे अग्ने! दूसरी अग्नियाँ तेरी शाखा की भाँति हैं। तुममें सम्पूर्ण अनादि तत्त्व (जीवात्माएँ) प्रसन्न होते हैं। [यहाँ अन्य अग्नियों से अभिप्राय कार्य करने की शक्तियों (energies) से है।]

हे वैश्वानर अग्नि! मनुष्यों का केन्द्र (जहाँ सन्तान के बीज बनते हैं) तू है। वहाँ खम्भे की भाँति स्थित (परम्परा चलानेवाली) है। मनुष्यों को धारण करती है।

अभिप्राय यह है कि परमात्मा द्वारा दी यह अग्नि सन्तानोत्पत्ति में सहायक होती है। इसी कारण इससे आनेवाले जीवात्मा प्रसन्न होते हैं।

सूक्त का दूसरा मंत्र है—

मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या अथाभवदरती रोदस्योः।
तं त्वा देवासोऽजनयन्त देवं वैश्वानर ज्योतिरिदार्याय॥

(ऋ० १-५९-२)

पदच्छेद—मूर्धा, दिवः, नाभिः, अग्निः, पृथिव्याः, अथ, अभवत्, अरतिः, रोदस्योः।

तम्, त्वा, देवासः, अजनयन्ता, देवम्, वैश्वानर, ज्योतिः, इत्, आर्याय॥

मन्त्रार्थ—(अग्निः दिवः मूर्धा पृथिव्याः नाभिः अथ रोदस्योः अरतिः अभवत्) अग्नि सूर्य का मस्तक है, पृथिवी की (नाभि) उत्पत्ति का केन्द्र-साधन,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

और प्रकाशित तथा अप्रकाशित नक्षत्रों का अधिपति है।

(वैश्वानर तम् देवम् आर्याय देवासः त्वा ज्योतिः इत् अजनयन्त) हे वैश्वानर! सबको देनेवाली तुमको, श्रेष्ठ मनुष्य के लिए देवतागण ने पैदा किया है।

यहाँ भी वैश्वानर अग्नि के विषय में बताया है कि वह (१) सूर्य का मस्तक (स्वामी), (२) पृथिवी पर उत्पत्ति-केन्द्र, (३) प्रकाशमान -और अप्रकाशमान नक्षत्रों में धारण करने की शक्ति है। (४) सब देवता उसको जो सबको देनेवाली है, सब मनुष्यों को प्रकाश की भाँति देते हैं।

इसी सूक्त का तीसरा मंत्र है—

आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो वैश्वानरे दधिरेऽग्ना वसूनि।
या पर्वतेष्वोषधीष्वप्सु या मानुषेष्वसि तस्य राजा॥

(ऋ० १-५९-३)

पदच्छेद—आ, सूर्ये, न, रश्मयः, ध्रुवासः, वैश्वानरे, दधिरे, अग्ना, वसूनि। या, पर्वतेषु, ओषधीषु, अप्-सु, या, मानुषेषु, असि, तस्य, राजा॥

मन्त्रार्थ—(अग्ना वैश्वानरे वसूनि आ दधिरे ध्रुवासः रश्मयः सूर्ये न) सबकी नेता अग्नि, निर्मित पदार्थों के चारों ओर से आकर स्थापित होवे, जैसे सूर्य में रश्मियाँ स्थित होती हैं।

(या पर्वतेषु ओषधीषु अप्-सु या मानुषेषु तस्य राजा असि) जो निर्मित पदार्थों में, आपों में, पर्वतों (बादलों) और वनस्पतियों में, मनुष्यों में (जो) है, उनका तू राजा (स्वामी) है।

वैश्वानर अग्नि के विषय में कहा है। उससे सब निर्मित पदार्थों में आकर स्थित होने के लिए याचना की गई है। साथ ही कहा है कि यह बादलों में, आपः में, वनस्पतियों में, मनुष्यों में, स्वामी की भाँति विराजमान रहती है।

सूक्त का चौथा मंत्र है—

बृहती इव सूनवे रोदसी गिरो होता मनुष्यो३ न दक्षः।
स्वर्वते सत्यशुष्माय पूर्वीर्वैश्वानराय नृतमाय यह्वीः॥

(ऋ० १-५९-४)

पदच्छेद—[बृहती, इवेति] बृहती-इव, सूनवे, रोदसी, गिरः, होता, मनुष्यः, न, दक्षः।

स्वः-वते, सत्य-शुष्माय, पूर्वीः वैश्वानराय, नृ-तमाय, यह्वीः॥

मन्त्रार्थ—(सूनवे इव रोदसी बृहती गिरः होता दक्षः मनुष्यः न) पुत्र [उत्पन्न पदार्थों] की भाँति द्यौ पृथिवी की बहुत स्तुतियाँ करते हैं, जैसे कुशल

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य की (की जाती है)।

(वैश्वानराय सत्य-शुष्माय नृ-तमाय स्वः-वते पूर्वीः यह्वीः) वैश्वानर सत्य बलवाली सबकी नेता-भाववाली सुख से स्थित होने के लिए बहुत स्तुतियाँ हैं।

मंत्र का अभिप्राय है कि द्यौ और पृथिवी के पदार्थ वैश्वानर की स्तुतियाँ करते हैं जैसे कुशल मनुष्य की की जाती हैं। वैश्वानर सुखकर्त्री,अतिबलवाली और सब पदार्थों की नेता के लिए ही ये स्तुतियाँ धारण की जाती हैं।

इस मंत्र में क्रिया-पद नहीं है। उससे पूर्व के मंत्र कें 'दधिरे' से अर्थ किये गये हैं।

सूक्त का अगला मंत्र है—

दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो वैश्वानर प्र रिरिचे महित्वम्।
राजा कृष्टीनामसि मानुषीणां युधा देवेभ्यो वरिवश्चकर्थ॥

(ऋ० १-५९-५)

पदच्छेद—दिवः, चित्, ते, बृहतः, जात-वेदः, वैश्वानर, प्र, रिरिचे, महि-त्वम्।

राजा, कृष्टीनाम्, असि, मानुषीणाम्, युधा, देवेभ्यः, वरिवः चकर्थ॥

मन्त्रार्थ—(जातवेदः वैश्वानर ते महित्वम् चित् दिवः बृहतः प्र रिरिचे) हे उत्पन्न हुओं में विद्यमान वैश्वानर अग्नि! तेरी महानता से महान् सूर्य की वृद्धि होवे।

(मानुषीणाम् कृष्टटीनाम् राजा असि देवेभ्यः युधा वरिवः चकर्थ) मनुष्य की उत्पत्ति के तुम राजा हो। देवताओं के लिए युद्ध [परिश्रम] से धन [महत्] को लाओ।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि सब पदार्थों को उत्पन्न करनेवाली वैश्वानर अग्नि की महानता से ही सूर्य की वृद्धि होती है और मनुष्य की उत्पत्ति में भी वही अग्नि सहायक होती है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचं यं पूरवो वृत्रहणं सचन्ते।
वैश्वानरो दस्युमग्निर्जघन्वाँ अधूनोत् काष्ठा अव शम्बरं भेत्॥

(ऋ०१-५९-६)

पदच्छेद—प्र, नू, महित्वम्, वृषभस्य, वोचम्, यम् पूरवः, वृत्र-हनम्, सचन्ते।

वैश्वानरः दस्युम्, अग्निः, जघन्वान्, अधूनोत्, काष्ठाः, अव, शम्बरम् भेत्॥

मन्त्रार्थ—(पूरवः वृत्रहनम् सचन्ते वृषभस्य महित्वम् नू प्र वोचम्) जिस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वृत्र को मारनेवाले पुरुष का सेवन करते हैं [उस] बलवान् की महिमा को मैं शीघ्र कहता हूँ।

(वैश्वानरः अग्निः दस्युम् जघन्वान् काष्ठा अधूनोत् शम्बरं, अव भेत्) वैश्वानर अग्नि दुष्ट (वृत्र) को मार डालती है और सीमा पर आपः को कँपा (कम्पन पैदा कर) देती है तथा शम्बर [भूतादि] को तोड़-फोड़ देती है।

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि वैश्वानर अग्नि ही तेजस् अहंकारों (इलेक्ट्रॉन्स) की सहायता करती है और वृत्रों को मार डालती है। मार डालने का अभिप्राय है निस्तेज अर्थात् आवेशरहित करना। यह अग्नि ही सीमा के आपः (इलेक्ट्रॉन्स) को कम्पायमान करती है और शम्बर अर्थात् सोम (न्यूट्रॉन्स) को तोड़-फोड़ देती हैं। इससे छोटे-छोटे द्रव्यमान वाले परिमण्डल बन जाते हैं।

वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिर्भरद्वाजेषु यजतो विभावा।
शातवनेये शतिनीभिरग्निः पुरुणीथे जरते सूनृतावान्॥

(ऋ० १-५९-७)

पदच्छेद—वैश्वानरः, महिम्ना, विश्व-कृष्टिः, भरत्-वाजेषु, यजतः, विभा-वा।

शात-वनेये, शतिनीभिः, अग्निः पुरु-नीथे, जरते, सूनृता-वान्॥

मन्त्रार्थ—(वैश्वानरः महिम्ना विश्व-कृष्टिः भरत्-वाजेषु यजतः विभावा) महिमा से वैश्वानर अग्नि सम्पूर्ण रचना-कार्यवाली, भरणवाली शक्तियों में (पालन-पोषण से संयुक्त हुई) चमकती है।

(सूनृता-वान् अग्निः शातवनेये पुरुनीते शतिनीभिः जरते) प्रसन्नता देनेवाली अग्नि असंख्य क्रियाओं से युक्त बहुतों का नेतृत्व करनेवाली, सैकड़ों गतियों में चलनेवाली स्तुति [ज्ञान प्राप्त करने] के योग्य है।

हमारा निश्चित मत है कि वैश्वानर अग्नि अनादि अग्नि है जो प्रलय-काल में 'अवातम्' अवस्था में होती है। यह परमात्मा नहीं, वरन् परमात्मा का लिंग है। न ही यह इन्द्र-वरुणादि के समान उत्पन्न होती है।

महर्षि स्वामी दयानन्द जी ने ऋ० १-१६४-४६ के उल्लेख से इन्द्र, मित्र, वरुण और अग्नि, मातरिश्वा इत्यादि को एक ही कहा है, यह ठीक प्रतीत नहीं होना है। अर्थ हमारे मत से इस प्रकार है—

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः स सुपर्णो गरुत्मान्।
एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः॥

(ऋ० १-१६४-४६)

अन्वयार्थ—(स इन्द्रं, मित्रं, वरुणं, अग्निं, आहुः, दिव्यः, गरुत्मान्,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुपर्णः) वे इन्द्र, मित्र, वरुण [और] अग्नि को कहते हैं कि दिव्य गौरवयुक्त वेगमय है।

(अथः बहुधा विप्रा वदन्ति अग्निं यमं मातरिश्वान् आहुः एकम्) और बहुधा विद्वान् लोग कहते हैं कि अग्नि, यम और मातरिश्वा एक ही हैं और सत् सदा रहनेवाले)।

ध्यान देने योग्य बात इस मंत्र में यह है कि मंत्र में दो पद, दो क्रियाओं के साथ हैं। उनके अर्थ पृथक्-पृथक् हैं। पहले पद में कहा है कि इन्द्र, मित्र, वरुण बहुत गति से भागनेवाले हैं, और दूसरे पद में कहा है कि लोग कहते हैं कि अग्नि, यम और मातरिश्वा एक सत् (सदा रहनेवाले) ही है।

श्री स्वामी जी ने दोनों पदों को एक में मिला दिया है। दोनों पदों में कहे पदार्थ भिन्न-भिन्न गुण रखते हैं। इनकी सृष्टि भी भिन्न स्रोतों से होती है।[1]

१. द्रष्टव्य—ऋ० १-१६३-२; १-१३६-२,३,४ और १०-१२९-३,४॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

अग्नि के विषय में पाश्चात्य मत

अभी तक हमने वेदों के आधार पर अग्नि के स्वरूप और कार्य की सामान्य व्याख्या की है। अग्नि कभी भी उत्पन्न नहीं हुई। यह सृष्टि-रचना में सक्रिय भाग लेती है और फिर चराचर जगत् की नेता है।

तनिक देखना चाहिए कि यूरोपियन और मध्यकालीन वेद के विद्वान् अग्नि के विषय में क्या समझते हैं।

श्री मैकडॉनल वेद में देवताओं के विषय में लिखते हैं—

The earliest stage of mythology is not so primitive as was at one time supposed, but it is sufficiently primitive to enable us to see clearly enough the process of personification by which natural phenomena developed into gods, a process not apparent in other literatures. (**Vedic Mythology** : by A.A. Macdonell Pub. by Indological Book House 1971)

इसका अर्थ है—"वैदिक काल्पनिक कहानियों का काल इतना पुराना नहीं,जितना पहले माना जाता था। इस पर भी यह पर्याप्त पुराना है, जिससे हम प्राकृतिक घटनाएँ देवताओं के रूप में प्रकट होने की प्रक्रिया स्पष्ट रूप में देख सकते हैं। यह प्रक्रिया दूसरे देशों के साहित्य में स्पष्ट नहीं है।"

यह वक्तव्य स्वयं ही बताता है कि श्री मैकडॉनल कुछ वह कह रहा है जो है नहीं। प्राकृतिक घटनाएँ देवताओं में बदल गईं—इसका प्रमाण कहाँ है?

हमने ऊपर अग्नि की उत्पत्ति के विषय में कहा है। पहली बात तो यह है कि अग्नि को वेदों में सदा उपस्थित और नाश न होनेवाली माना गया है और ये महानुभाव अग्नि को देवता मान रहे हैं, अर्थात् जो प्रकट हुई और फिर उसे देवता मान लिया गया।

और वे कौन लोग थे जो वैदिक देवताओं के विचार को बहुत पुराना मानते थे?

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इसमें हम केवल यह ही कह सकते हैं कि 'ख्वाजा का गवाह मेंढक'! किसी भारतीय शास्त्र का प्रमाण दिया होता तो पता चलता।

भारतीय परम्परा है कि वेद आदि-सृष्टि में हुए। एक प्रमाण तो हम ऊपर (ऋ० १-१६३-४ में) दे चुके हैं। वहाँ कहा है—

उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन् यत्रा त आहुः।

अर्थ है—और इस प्रकार, हे अर्वन्! वरुण के द्वारा छन्दों का उच्चारण कहा जाता है।

हम बता चुके हैं कि अर्वा रचना-कार्य में संलग्न अग्नि है। अग्नि (energy) परमात्मा की शक्ति है।

और अग्नि के विषय में प्रमाण मैकडॉनल साहब (विषय-सूची में) लिखते हैं—

The air being above the earth in the threefold division of the Universe, its sub-divisions, whether two or three, would naturally have been regarded as above it also : and one verse at least (1-81-3) clearly shows that the 'Terrestrial Space' is in this position.

. (**Vedic Mythology** : A.A. Macdonell
Pub. Indological Book House, 1971, Page 10)

अर्थ है—वायु पृथिवी के ऊपर होती है विश्व के तीन भागों में। विभाग दो अथवा तीन स्वाभाविक रूप में, इसके ऊपर होंगे। कम से कम एक मंत्र (ऋ० १-८१-३) यह प्रकट करता है कि व्योम इस स्थिति में था।

यह कथन अर्थहीन और सांकेतिक मंत्र के सर्वथा विपरीत है। वह मंत्र इस प्रकार है—

यदुदीरत आजयो धृष्णवे धीयते धना।
युक्ष्वा मदच्युता हरी कं हनः कं वसौ दधो ऽस्मां इन्द्र वसौ दधः॥

(ऋ० १-८१-३)

इस मंत्र का देवता (विषय) इन्द्र है।

अर्थ करने से पूर्व हम यह बताना चाहते हैं कि मैकडॉनल साहब की पुस्तक की विषय-सूची में अग्नि का संकेत है, जबकि पुस्तक में निर्दिष्ट स्थान पर वायु का वर्णन किया गया है। और जो मंत्र उद्धृत किया गया है, उसका देवता इन्द्र है।

उस मंत्र के अर्थ भी देख लिये जाएँ तो श्री मैकडॉनल के ढोल की पोल खुल जाएगी।

पदच्छेद—यत्, उत्-ईरते, आजयः धृष्णवे, धीयते, धना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

युक्ष्व, मद-च्युता, हरी, कम्, हनः, कम्, वसौ, दधः, अस्मान् इन्द्र, वसौ दधः ॥

मन्त्रार्थ—(यत् आजयः उत्-ईरते धना धृष्णवे धीयते) जब संग्राम जोर से हो रहा हो, तब धनों को दृढ़ता से तू धारण करता है।

(मद-च्युता हरी युक्ष्व कम् हनः कम् वसौ दधः इन्द्र अस्मान् वसौ दधः) अतः बलिष्ठ घोड़ों को रथ में जोत (जुटा) शत्रु का नाश करके किसी मित्र को बैठाना। हमको धन में हे इन्द्र! बसाओ।

इन्द्र के धन में बसाने और शत्रु को नाश करने का अभिप्राय तो हम इन्द्र का वर्णन करते हुए देख लेंगे, यहाँ हम वेदों पर आक्षेप करनेवाले मैकडॉनल इत्यादि लेखकों की विद्वत्ता की पोल खोलने के लिए यह उदाहरण दे रहे हैं।

जैसा कि ऊपर हमने बताया है सूची में अग्नि का प्रकरण है। निर्दिष्ट पृष्ठ पर वायु का नाम और इसके तीन विभागों को लिखा है। और मंत्र, जिसका संकेत किया है, वह इन्द्र के विषय में (पुस्तक पृष्ठ १० का संकेत) है और जो कुछ इस विषय में कहा है, वह हमने ऊपर मंत्र ऋ० १-८१-३ के अर्थ से स्पष्ट कर दिया है।

इस प्रकार के अनभिज्ञ लेखकों के लेख का एक नमूना यहाँ दे दिया है।

अब इन्हीं महाशय के एक भारतीय शिष्य की बात भी यहाँ लिख देना चाहते हैं। डॉक्टर सूर्यकान्त ने मैकडॉनल की नकल में एक पुस्तक लिखी है—वैदिक देव शास्त्र।

एक तो यह महानुभाव भी अपने गुरु की भाँति अपनी बात को वेदों से सिद्ध न कर सकने पर अन्य पीछे के लिखे ग्रन्थों का आश्रय लेते हैं। हम वेद (ऋक्, यजुः, साम और अथर्व) को उन ग्रन्थों से पृथक् मानते हैं जिनके लिखनेवाले मनुष्य थे, और वेदों के विषय में यह माना जाता है कि यह ईश्वरीय ज्ञान है। ऐसा वेद में ही वर्णन किया गया है।

इस कारण जब ये लोग वेद का नाम लेते हैं तो इनको अन्य ब्राह्मणादि ग्रन्थों के उदाहरण नहीं देने चाहिएँ।

हम यह पुस्तक 'वेदों में देवता' के विषय पर लिख रहे हैं। इस कारण मैकडॉनल और डॉ० सूर्यकान्त के वेद के अतिरिक्त ग्रन्थों के उद्धरणों को हम वर्तमान पुस्तक के क्षेत्र से बाहर समझते हैं। इसी कारण हमने मैकडॉनल का जो एक-आध उदाहरण दिया है, वह वेद का ही लेकर उनकी बात का खंडन किया है।

डॉ० सूर्यकान्त के विषय में भी हम वही कुछ कह रहे हैं। वे अपनी पुस्तक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'वैदिक देव शास्त्र' (भारत भारती प्रकाशन (प्रा०) लिमिटेड : १९६१) के पृष्ठ २४ पर लिखते हैं—

"ऋग्वेद में जो कि अत्यन्त उदात्त एवं सूक्ष्म भावों से भरा सूक्त है, यह भाँपा गया है कि आरम्भ में कुछ भी नहीं था और तब केवल शून्य था। यह अव्यक्त जल अन्धकार से परिच्छन्न था।"

इसमें वे ऋग्वेद का प्रमाण देते हैं। तनिक उनके कथन की परीक्षा इस मंत्र से करनी चाहिए। मंत्र इस प्रकार है—

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे।
अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः॥

(ऋ० १०-८२-६)

इस मंत्र का देवता है—विश्वकर्मा, अर्थात् सम्पूर्ण विश्व का बनानेवाला।

पदच्छेद—तम्, इत्, गर्भम्, प्रथमम्, दध्रे, आपः, यत्र, देवाः, सम्-अगच्छन्त, विश्वे।

अजस्य, नाभौ, अधि, एकम्, अर्पितम्, यस्मिन्, विश्वानि, भुवनानि, तस्थुः॥

मन्त्रार्थ—(तम् इत् गर्भम् प्रथमम् आपः दध्रे यत्र विश्वे देवाः सम्-अगच्छन्त) उसी हिरण्यगर्भ (ब्रह्माण्ड) को पहले आपः धारण करते हैं जिसमें समस्त देवता एकत्रित हो जाते हैं।

(अजस्य नाभौ अधि एकम् अर्पितम् यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः) अजन्मा (परमात्मा) रचना-केन्द्र-स्थान में परमात्मा के तेज (जिसे १-१६३ में अर्वा अथवा अग्निः अश्वः कहा है) को अर्पित होता है जिसमें सम्पूर्ण भुवन स्थित हैं।

अब इन अर्थों से डॉ० सूर्यकान्त के कथन की तुलना करें तो पता लग जाएगा कि एक अनभिज्ञ व्यक्ति ने अपनी बुद्धि से ऊपर की योग्यता के विषय पर लिखा है।

डॉक्टर साहब कहते हैं कि रचना से पहले कुछ भी नहीं था। यहाँ इस मंत्र में तीन बातें रचना-पूर्व में बताई हैं—एक अजः (परमात्मा), दूसरे उसका तेज (जिसे एकम् कहकर स्मरण किया है), तीसरे—आपः।

डॉक्टर महोदय ने 'आपः' का अर्थ जल किया है। इससे बड़ी अज्ञानता और क्या हो सकती है? आपः बहुवचन है। जल एकवचन है। आपः की उत्पत्ति (ऋ० १-१६३-३ में) त्रितों से बताई है। त्रित परमाणु को कहते हैं।

यह भी सम्भव है कि डॉक्टर साहब ने यह शून्य की बात एक अन्य मंत्र के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संदर्भ में कही हो! डॉक्टर साहब की अपनी भूल से अथवा छापने में अशुद्धि से मंत्र का अशुद्ध संकेत दे दिया हो!

डॉक्टर साहब ने एक अन्य मंत्र (ऋ० १०-१२९-१) का भी ऊपर उल्लेख किया है। परन्तु उसमें भी शून्य से उत्पन्न का अर्थ नहीं बनता।

वह मंत्र है—

नासदासीन्नो सदासीत् तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत्।
किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम्॥

(ऋ० १०-१२९-१)

इस मंत्र का अर्थ हम इससे अगले मंत्र के साथ दे रहे हैं। यह इस कारण कि इस मंत्र में जो कुछ पूछा गया है उसका उत्तर अगले मंत्र में है। प्रश्न को देखकर और फिर उसके उत्तर का मंत्र न देकर डॉक्टर सूर्यकान्त अपने-आपको भ्रम में डाल रहे हैं।

अगला मंत्र इस प्रकार है—

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि न रात्र्या अह्न आसीत् प्रकेतः।
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किं चनास॥

(ऋ० १०-१२९-२)

दोनों मंत्रों के अर्थ इकट्ठे करें तो बात स्पष्ट हो जाती है। मंत्र प्रथम में तो पूछा गया है कि रचना से पूर्व क्या था?

यहाँ एक बात और समझ लेनी चाहिए। पूछा गया है कि क्या वहाँ असत् नहीं था और सत् भी नहीं था?

यह सत्-असत् के अर्थ प्रकृति के अव्यक्त और व्यक्त रूपों के हैं। ऐसा अन्य स्थानों पर भी आया है। जहाँ प्रकृति का वर्णन करते हुए व्यक्त-अव्यक्त रूपों का वर्णन करना पड़ता है, वहाँ सत्-असत् के शब्दों का प्रयोग किया जाता है। (देखें—भगवद् गीता १३-२१)

फिर भी यहाँ यह पूर्ण मंत्र ही प्रश्नसूचक है।

अर्थ है—क्या वहाँ पूर्व में असत् और सत् [भी] नहीं थे? क्या रजः नहीं था? क्या अन्धकार था? क्या व्योम नहीं था? क्या किसको ढाँपे हुए था? क्या किसने ढाँपा हुआ था और इस गहराई में क्या था?

इन सब प्रश्नों का उत्तर ही दूसरे मंत्र में है। वहाँ कहा है—

उस समय न तो कुछ नष्ट होता था, न कुछ बनता था। न रात थी, न दिन था। जानने योग्य कुछ नहीं था। वहाँ आनीत् अवातम्, स्वधाः के साथ था। इनके अतिरिक्त अन्य कुछ दिखाई नहीं देता था।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यहाँ कहा है कि दो पदार्थ थे। आनीत् अवातम् था जो स्वधा: को लिये था। इससे अगले मंत्र में स्वधा: के लक्षण भी लिखे हैं।

इससे डॉक्टर साहब ने यहाँ भी धोखा खाया है और इसमें भी यह सिद्ध नहीं होता कि शून्य से कुछ बना था।

यहाँ हमने नमूने के रूप में एक अंग्रेज विद्वान् और उनकी छत्रछाया में पले भारतीय विद्वान् के उदाहरण दिए हैं। यह इस कारण क्योंकि हम भारतीय विश्वविद्यालय के ऐसे अनभिज्ञ महानुभावों का दर्शन कराना चाहते हैं, जो वेदों को 'माइथॉलोजी' कहकर बदनाम करने पर तुले हुए हैं।

ऐसा एक और उदाहरण आगे दे रहे हैं।

प्राय: सरकारी विश्वविद्यालयों में पढ़ानेवाले, अपने-आपको वेद का विद्वान् माननेवाले प्राध्यापक यूरोपियन लेखकों के पद-चिह्नों पर चलते हैं। हम यूरोपीय विद्वानों के भारत के विषय में लिखे लेखों को संदेह की दृष्टि से देखते हैं। हमें ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी मनोवृत्ति भारतीय प्राचीन विद्या को हीन दिखाने की थी। ये यत्न, उनके पूर्वाग्रहों से ग्रसित तथा राजनीतिक कारणों से प्रेरित थे। परन्तु गुरुकुल कांगड़ी के एक स्नातक का यूरोपीय विद्वानों का अनुमोदन करना विस्मयजनक प्रतीत होता है। इससे यह अनुभव होता है कि गुरुकुल में वेद के अध्यापन में कहीं त्रुटि है। तभी तो श्री सत्यकेतु विद्यालंकार डी० लिट्० (पैरिस) इस प्रकार भ्रमित हो गए हैं कि आप अपनी पुस्तक 'प्राचीन भारतीय इतिहास में वैदिक युग' में इस प्रकार लिखते हैं—

''यह बात निर्विवाद है कि वेद विश्व-साहित्य के सबसे प्राचीन ग्रन्थ हैं। आर्य लोग उन्हें अनादि, अपौरुषेय और ईश्वर-प्रदत्त मानते हैं—

''पर आधुनिक विद्वान् इसके अपौरुषेय स्वरूप को स्वीकार नहीं करते। वे उन्हें मनुष्यकृत मानते हैं। वेदों के प्रत्येक सूक्त, ऋचा (मंत्र) के साथ उनके ऋषि और देवताओं के नाम दिए हैं। वैदिक सूक्तों व मंत्रों की रचना इन ऋषियों के द्वारा ही की गई है.... ।''

यह बात गुरुकुल कांगड़ी के संस्थापकों के मत के विरुद्ध है। फिर भी यह कुछ मध्यकालीन भारतीय लेखकों और यूरोपीय तथाकथित विद्वानों के अनुसार है। परन्तु यदि यह मान भी लिया जाए कि ऋषि मंत्र-निर्माता हैं, तब भी यह तो मानना ही पड़ेगा कि इन ऋचाओं में कहे भाव अपौरुषेय हैं। ऋषि ऋचाओं के शब्दों के निर्माता हो सकते हैं, परन्तु जब उन्होंने कहा कि अग्नि सृष्टि-रचना से पूर्व थी और सबका हित कर रही थी, वह प्रकृति की आहुतियाँ दे रही थी और इस यज्ञ का ऋत्विक बन धन-धान्य तथा रत्नादि दे रही है (ऋ० १-१-१)....

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा जब ऋषि ने कहा कि अर्वा (परमात्मा की निर्माण-शक्ति) प्रकृति के परमाणुओं पर अधिष्ठित हो गया। पहले उस पर इन्द्र अधिष्ठित था और प्रकृति के परमाणु ने परमात्मा की अग्नि को अपने पर ऐसे जुटा (जोप) लिया जैसे लगाम होती है, तब परमाणु के भीतर की शक्ति जो इन्द्र थी, बाहर प्रकट हुई, जिससे तीन निबन्धन [आपः] बने और उनसे सब जगत् के पदार्थ बन गए *(ऋ० १-१६३-१, २, ३)*....ये आपः तीन एटॉमिक पार्टिकल्स (atomic particles) ही हैं। जब हम वेदों में इस प्रकार के वैज्ञानिक तथ्य भरे पड़े देखते हैं तो हमारा सत्यकेतु जी से प्रश्न है कि ऐसे तथ्य की बात ऋषियों को किसने पढ़ाई थी?

सत्यकेतु जी के अपने कहने के अनुसार वेद भूमण्डल के प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। यह वैज्ञानिक तथ्य उस प्राचीन काल में उन ऋषियों को किसने बताया होगा?

इसी प्रकार हमने अपनी पुस्तक में अन्य अनेक वैज्ञानिक तथ्य वेदों में से बताए हैं। वे सब ऋषि किस विश्वविद्यालय में पढ़कर आए थे? वे तो आपके ही कथनानुसार आज से बहुत पहले हुए थे और तब यूरोपीय विद्वानों के विकासवाद के अनुसार उस समय के मानव आजकल जैसे बुद्धिमान् नहीं थे।

हमने अपनी पुस्तक में वेद में उल्लिखित ऐटम के स्वरूप का वर्णन किया है (ऋ० १-३२-१०, ११)। हमारा प्रश्न है कि क्या यह मानना युक्तिसंगत नहीं कि ऋषियों को ज्ञान परमात्मा ने दिया था और वह ज्ञान उन ऋषियों ने मंत्रों के शब्दों में कह दिया? वे मंत्र के निर्माता मान भी लिये जाएँ, तो भी क्या यह युक्ति-संगत नहीं कि शब्दों में ज्ञान का भाव वर्णन किया जाता है और शब्द-निर्माता ज्ञान का निर्माता नहीं भी हो सकता?

चाहे तो यह मानें कि वेद मानव-सृष्टि के आदि में कहे गए और चाहे यह मानें कि आज से चार-पाँच हजार वर्ष पूर्व कहे गए, यह तो मानना ही पड़ेगा कि उस काल में विज्ञान पढ़ाने वाले न तो अध्यापक थे और न ही विश्वविद्यालय। उन ऋषियों को ज्ञान-विज्ञान की वे बातें किसने बताई थीं? हमारा कहना है कि परमात्मा ने बताई थीं, क्योंकि उस काल में अन्य कोई ज्ञानवान् नहीं था।

हमारा निश्चित मत है कि मंत्रों के भाव परमात्मा ने ऋषियों के मन में प्रस्फुटित किए, और फिर वेद ऋषियों ने कहे। वेदमंत्रों के भाव उनके मन में परमात्मा ने प्रस्फुटित किए हैं, ऐसा ही वेद में कहा है। ऋग्वेद (१०-१३०-४, ५) में छन्दों की उत्पत्ति के विषय में कहा है कि अमुक-अमुक देवता के सहयोग से प्रसारित हुए। वेद में सात मुख्य छन्दों के नाम ही हैं, और फिर ऋग्वेद (१०-१३०-५) में कहा है कि इन छन्दों से ऋषि और मनुष्य ज्ञानवान् हुए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हमने भी यही कहा है कि परमात्मा से देवताओं के सहयोग से प्रसारित छन्दों से ऋषियों के मन में ज्ञान उत्पन्न हुआ और उन्होंने वह ज्ञान मनुष्यों को वेद-मंत्रों द्वारा बताया।

यदि यह न मानें तो उस प्राचीन काल में विकासवाद के माननेवाले जब कहते हैं कि मनुष्य आदिम, अविकसित अवस्था में था, उस समय तक इस प्रकार की ज्ञान-विज्ञान की बातें मनुष्य को कैसे पता चल गईं?

साथ ही वह अपने इतिहास-पक्ष की साक्षी वेदों में से देते हैं। यह माना जाता है कि वेदभाषा के सब नाम आख्यातों से व्युत्पन्न हुए हैं। निरुक्त शास्त्र का स्पष्ट मत है कि वैदिक शब्दों में रूढ़ अर्थवाले नाम नहीं हैं।

रूढ़ का अभिप्राय यह है कि शब्द के अर्थ स्थिर हों, अर्थात् एक शब्द का एक ही अर्थ हो सके; उसके दूसरे अर्थ न हो सकें। उदाहरण के रूप में हिमालय है। इसके रूढ़ अर्थ हैं वह पर्वत जो भारत देश के उत्तर में अफगानिस्तान की सीमा से आरम्भ होकर असम प्रदेश के उत्तर-पूर्वी कोने तक फैला हुआ है। यद्यपि कई अन्य पर्वतों पर बर्फ बारह महीने रहती है, परन्तु उनको हिमालय नहीं कहते। अत: हिमालय रूढ़ि अर्थवाला शब्द है। इसी प्रकार पंकज के अर्थ कमल हैं, यद्यपि कीचड़ में तो अन्य पदार्थ भी उत्पन्न होते हैं। केंचुआ और जोंक प्रसिद्ध हैं, परन्तु रूढ़ि अर्थ में जोंक अथवा केंचुआ न लेकर पंकज का प्रयोग कमल कहने में करते हैं।

परन्तु जब धातु से व्युत्पन्न नाम के अर्थ किए जाएँगे तो कई अर्थ हो सकते हैं। इनको यौगिक अर्थ कहते हैं। अत: उन शब्दों के अर्थ जिनके ऐतिहासिक पुरुषों के नाम कहे जाते हैं, यौगिक अर्थ करने से अनेक हो सकते हैं। तब उनका क्या अर्थ किया जाए? यह मंत्र के पूरे अर्थ-सम्बन्ध से पता चलेगा। देवता से अर्थ मिलाकर और पूर्वापर सम्बन्ध से अर्थ मिलाकर ही ये अर्थ किए जाएँगे।

उन मंत्रों के अर्थ इस दृष्टि से करने होंगे जिनका सम्बन्ध ऐतिहासिक पुरुषों अथवा ऐतिहासिक घटनाओं से किया जाता है। यदि यास्क ने अर्थ करने में भूल की है तो इसका यह अभिप्राय नहीं कि सब ज्ञात निरुक्ताचार्यों से प्रतिपादित सिद्धान्त का त्याग कर दिया जाए।

शब्दों के अर्थ यौगिक लेकर उन मंत्रों के अर्थ हम करेंगे जिनको श्री सत्यकेतु जी ने अपनी पुस्तक में उदाहरण के रूप दिया है।

हम सत्यकेतु ज़ी की दोनों बातों को अशुद्ध मानते हैं—यह कि वेदों में किस्से-कहानियों के संकेत मिलते हैं और यह भी कि वेदों के ऋषि महाभारत-काल तक होते रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनकी पहली धारणा के विषय में तो हमारा यह कहना है कि वेदों में इतिहास की गंध तक भी नहीं है। उन्होंने कुछ उदाहरण दिए हैं। उन्होंने कहा है कि ऋग्वेद ६-२७-४ से ८ तक में किसी चयमान राजा के पुत्रों से युद्धों का वर्णन है। यह युद्ध हरियुपीया नाम की नदी अथवा नगर के समीप लड़ा गया। ये अर्थ उन्होंने आजकल की संस्कृत भाषा के अनुसार किए हैं। वेदों का काल कभी भी मानें, उस समय, जब अभी कोई साहित्यिक ग्रन्थ लिखा नहीं गया था, तब आज-कल की भाषा संस्कृत प्रचलित नहीं हो सकती थी।

तब की भाषा किस रूप में थी? यास्क ने कहा है कि नाम धातुओं से व्युत्पन्न हुए अर्थात् नामों के अर्थ धातुओं से व्युत्पन्न करने चाहिएँ।

उदाहरण के रूप में हम इन्हीं मंत्रों के उदाहरण जो सत्यकेतु जी ने दिए हैं, अर्थात् ६-२७-४,५,६,७,८ के अर्थ करके बताना चाहते हैं कि सत्यकेतु जी और उनके गुरुओं ने किस प्रकार अर्थ का अनर्थ किया है।

उनके उद्धृत मंत्रों में से पहले मंत्र को ही हम लेते हैं—

एतत् त्यत् त इन्द्रियमचेति येनावधीर्वरशिखस्य शेषः।
वज्रस्य यत् ते निहतस्य शुष्मात् स्वाच्चिदिन्द्र परमो ददार॥

(ऋ० ६-२७-४)

मंत्र का देवता (विषय) इन्द्र है।

इन्द्र के विषय में वेद में भी (ऋ० १-१६३-२) और शतपथ ब्राह्मण में भी (शतपथ ६-१-१,२) यह कहा गया है कि इन्द्र परमाणु के भीतर की त्रिगुणात्मक शक्ति का नाम है। इन्द्र का वज्र उस त्रिगुणात्मक शक्ति में रजस्-प्रधान शक्तिवाला तेजस् आपः है। इनको आज के विज्ञान की भाषा में इलेक्ट्रॉन (Electron) कहते हैं। इन्द्र अर्थात् त्रिगुणात्मक शक्ति के विषय में मंत्र के अर्थों को सिंध में हुए किसी युद्ध पर लगा देना भूल ही मानी जाएगी।

मन्त्रार्थ इस प्रकार है—

पदच्छेद—एतत्, त्यत्, ते, इन्द्रियम्, अचेति, येन, अवधीः, वर-शिखस्य शेषः।

वज्रस्य, यत्, ते नि-हतस्य, शुष्मात्, स्वात्, चित्, इन्द्र, परमः, ददार॥

मंत्रार्थ—(ते इन्द्रियम् अचेति येन एतत् त्यत् वर-शिखस्य शेषः अवधीः) तेरा बल चेतन हो गया जिससे श्रेष्ठ शिखावाले का शेष (चमक) समाप्त नहीं होनेवाला है।

जब बिजली आकाश में चमकती है तो जो लकीर आकाश में दिखाई देती है, वह श्रेष्ठ इन्द्र की शिखा कही गई है। इसका शेष से अभिप्राय है, बिजली के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चमकने का प्रभाव, गर्जन और प्रकाश।)

मंत्र में कहा है कि इन्द्र का बल चेतन हो जाता है और बिजली की लकीर तथा उसका प्रभाव उसके साथ समाप्त नहीं होता।

अब इस मंत्र की दूसरी पंक्ति का अर्थ देखिए—

(इन्द्र यत् ते वज्रस्य हतस्य शुष्मात् स्वनात् चित् ददार) इन्द्र जो तेरे फेंके वज्र के बल और आवाज (शब्द) से (भयभीत) हो गया।

यहाँ कहा है कि इन्द्र—बिजली की चमकती लकीर के पड़ने से जो गर्जन और बल प्रकट हुआ था वह भी शेष [लकीर के प्रभाव] के साथ ही समाप्त नहीं हो गया।

यह इन्द्र का मेघों में कार्य का वर्णन है।

सत्यकेतु जी ने इन्द्र का अर्थ गलत किया है। वर-शिखस्य का अर्थ असुर कर दिया है। ये रूढ़ि अर्थ हैं जो वेदों की भाषा में नहीं चलते।

संस्कृत भाषा से भले ही कुछ ऐतिहासिक नाम या नगर का पता चले, परन्तु वेदार्थ करने में सब निरुक्ताचार्य यौगिक अर्थ करने को कहते हैं।

अब अगला मंत्र देखिए—

वधीदिन्द्रो वरशिखस्य शेषो ऽभ्यावर्तिने चायमानाय शिक्षन्।
वृचीवतो यद्धरियूपीयायां हन् पूर्वे अर्धे भियसापरो दर्त्॥

(ऋ० ६-२७-५)

पदच्छेद—वधीत्, इन्द्रः, वर-शिखस्य, शेषः, अभि-आवर्तिने, चायमानाय, शिक्षन्।

वृचीवतः, यत्, हरि-यूपीयायाम्, हन्, पूर्वे, अर्धे, भियसा, अपरः दर्त्॥

मन्त्रार्थ—(इन्द्रः चायामानाय अभ्यावर्तिने शिक्षन् वर शिखस्य शेषः वधीत्) इन्द्र [ज्ञान] संचय करनेवाले के लिए व्यवहार से शिक्षा देता है। श्रेष्ठ शिखावाले का प्रभाव वध कर देता है।

यहाँ कहा गया है कि ज्ञान-संचय करनेवाले को इन्द्र अपने व्यवहार की शिक्षा देता है, अर्थात् ज्ञानवान् व्यक्ति इन्द्र का ज्ञान प्राप्त कर लेता है। चायमानः के अर्थ हैं—चयन करनेवाला (एकत्रित करनेवाला)। यहाँ ज्ञान एकत्रित करनेवों को इन्द्र अपने व्यवहार की शिक्षा देता है। तब विद्युत् की लपट का प्रभाव (समाप्त) हो जाता है; उन पर नहीं रहता।

दूसरी पंक्ति इस प्रकार है—

(यत् हरि यूपीयायाम् वृचीवतः हन् पूर्वे अर्धे भियसा अपरः दर्त्) जो विमोहन को हरनेवाले से छुपे हुए को सामने आधे में मार (समाप्त कर) देता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समीप आने से भय विदीर्ण करता है।

विमोहन का अभिप्राय है—आकर्षण। इसे हरनेवाला है, वह जो इसे छुपाता है। हर का अर्थ हरण करनेवाला है। 'यूपीयायाम्' बना है युप् धातु से। युप् का अर्थ है—विमोहन। विमोहन को हरनेवाला है जो उसे छुपाता है। वृचीवत: (Insulating cover) की व्युत्पत्ति—वृ धातु से है जिसका अर्थ है—ढाँपना, छुपाना।

मंत्र का अभिप्राय है कि जब कोई विद्वान् ज्ञान संचय करने के लिए आता है, तो उसे शिक्षित किया जाता है। उसको ढाँपने से पृथक्-पृथक् कर दिया जाता है। यदि वे समीप आएँ तो भय से विदीर्ण करता है। अभिप्राय यह है कि ऋण और धन विद्युत् में बाँट दिया जाता है। यदि दोनों को ढाँप दिया जाए तो ठीक, अन्यथा समीप आने पर अर्थात् बीच में ढाँपनेवाला हट जाए तो भय से विदीर्ण करता है। भययुक्त है।

अगला मंत्र है—

त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकं यव्यावत्यां पुरुहूत श्रवस्या।
वृचीवन्तः शरवे पत्यमानाः पात्रा भिन्दाना न्यर्थान्यायन्॥

(ऋ० ६-२७-६)

पदच्छेद—त्रिंशत्-शतम्, वर्मिण:, इन्द्र, साकम्, यंव्या-वत्याम्, पुरुहूत, श्रवस्या।

वृचीवन्तः, शरवे, पत्य-मानाः, पात्रा, भिन्दानाः, नि-अर्थानि, आयन्॥

मंत्रार्थ—(पुरुहूत इन्द्र त्रिंशत्-शतम् साकं यव्या-वत्याम् वर्मिण: श्रवस्या) हे बहु-स्तुत्य इन्द्र! तीन सहस्र साथ-साथ (पात्रों) को यव के छिलके-समान ढँपी हुई यश की कामना से।

इन्द्र विद्युत् है। त्रिंशतशतम् से अभिप्राय है—अनेक। पात्र से अभिप्राय तारें हैं जिनमें विद्युत् चलती है। वे यव के छिलके की भाँति ढँपी हुई हैं।

जब विद्युत् इन ढँपी हुई (insulated) तारों से होकर चलती है तो यश की कामना से अर्थात् प्रशंसनीय कार्य करने के लिए यह चलती है।

दूसरी पंक्ति है—(वृचीवन्तः पात्रा पत्यमानाः भिन्दाना शरवे न्यर्थानि आयन्) ढँपे हुए पात्र (तारें) गिरते हैं तो टूटते हैं, तब शक्ति (बल) व्यर्थ हो जाती है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि इन्द्र की शक्ति जो कि छिलके की भाँति ढँपी हुई है, अनेक कार्य करने की शक्ति रखती है। परन्तु गिरने से अथवा छेद हो जाने से ढाँपने का प्रबन्ध टूट जाता है, तो शक्ति व्यर्थ हो जाती है। वर्तमान भाषा में जैसे निकट विकल्प (Short cut) होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अगला मंत्र है—

यस्य गावावरुषा सूयवस्यू अन्तरू षु चरतो रेरिहाणा।
स सृञ्जयाय तुर्वशं परादाद् वृचीवतो दैववाताय शिक्षन्॥

(ऋ० ६-२७-७)

पदच्छेद—यस्य, गावौ, अरुषा, सूयवस्यू, अन्तः, ऊ, सु, चरतः, रेरिहाणा। सः, सृञ्जयाय, तुर्वशम्, परा अदात्, वृचीवतः, दैव-वाताय, शिक्षन्॥

मन्त्रार्थ—(यस्य अरुषा रेरिहाणा अन्तः सूयवस्यू गावौ सुचरतः) जिसकी दो चमकती हुई स्वाद लेती हुई और अच्छे अन्न (कार्य के लक्ष्य) की कामना करती हुई धाराएँ (currents) विचरती हैं।

अभिप्राय यह है कि ऊपर जो आधे सामने की बात कही है वे दो प्रकार की विद्युत् (धन और ऋण अर्थात् मित्र और वरुण) धाराएँ हैं। वे समीप आकर कार्य करती हैं अथवा करना चाहती हैं।

(शिक्षन् सः सृञ्जयाय वृचीवतः देव-वाताय तुर्वशम् परा अदात्) शिक्षा देते हुए इस [इन्द्र] ने निर्माण करनेवाली शक्ति को चलानेवाले के लिए छिपी हुई शीघ्र चलानेवाले को दिया।

पहली पंक्ति में जो गावा दो धाराओं (currents) को कहा है उनको पात्रों अर्थात् तारों में चलाने के लिए मंत्र में इन्द्र कह दिया है। इसमें एक शक्ति की लहरों [गावों] को चलाता है और दूसरा प्रकाश तथा अन्न पर कार्य करता है।

इसका यह भी अभिप्राय है कि यह शक्ति इन्द्रियों में कार्य करती है तो उससे आवाज ग्रहण होती है। इसे सूयवस्यू से प्रकट किया गया है। सु-यवस्यू—सुन्दर यव अर्थात्—अन्न का प्रयोग करनेवाला। यह मनुष्य-शरीर है।

द्वयाँ अग्ने रथिनो विंशतिं गा वधूमन्तो मघवा मह्यं सम्राट्।
अभ्यावर्ती चायमानो ददाति दूणाशेयं दक्षिणा पार्थवानाम्॥

(ऋ० ६-२७-८)

पदच्छेद—द्वयान्, अग्ने, रथिनः, विंशतिम्, गाः, वधू-मतः, मघ-वा, मह्यम् सम्-राट्।

अभि-आवर्ती, चायमानः, ददाति, दुः-नशा, इयम्, दक्षिणा, पार्थवानाम् ॥

मन्त्रार्थ—(अग्ने मह्यम् मघवा सम्राट् द्वयान् रथिनः वधूमतः, विंशतिम् गाः) हे अग्ने (परमात्मा)! मेरे लिए धनवान् शासक दो-दो शक्ति-संयुक्त बीसियों रथों में (अनेक तारों में) रश्मियों को—

(चायमानः अभि-आवर्ती इयम् दुःनशा, पार्थवानाम् दक्षिणा ददाति) [धन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा ज्ञान] संचय करनेवाला, सब ओर उपस्थित यह कठिनाई से नाश होनेवाली पार्थिव (पदार्थों) की दक्षिणा देता है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि अग्निस्वरूप परमात्मा मेरे लिए (ऋषि के लिए) धनवान् शासक अभिप्राय यह कि इन्द्र दो-दो रथियों (मित्र-वरुण अथवा धन और ऋण विद्युत्) को शक्तियुक्त अनेकों धाराओं में हमें देता है।

'ददाति' जो दूसरी पंक्ति में है, वह प्रथम पंक्ति के अर्थ में भी लगता है।

परमात्मा इन्द्र को दो रूपों में (मित्र और वरुण अर्थात् धन और ऋण) विद्युत् अनेक शक्तियुक्त धाराओं में देता है।

हमने इन मंत्रों का यौगिक रूप से अर्थ दिया है। वर्तमान संस्कृत भाषा और रूढ़ि अर्थों में मंत्रार्थ नहीं किया। कारण स्पष्ट है। वह यह कि यह भाषा वैदिक काल में प्रचलित नहीं थी। यास्क और सब निरुक्तकार वेदार्थ में यौगिक अर्थों को ही करने को बताते हैं।

श्री सत्यकेतु जी ने कुछ अन्य मंत्र भी बताए हैं। उनका ऋषि वामदेव है। वे मंत्र हैं—ऋ० ४-१५-७,८,९,१०। वे इनमें भी इतिहास बताते हैं।

उनमें मंत्र ४-१५-७,८ का एक देवता है—'सोमकः साहदेव्यः' अर्थात् सोम आपः शक्ति देवताओं के सहयोग वाला। यहाँ सोम का अभिप्राय इन्द्र की ऐतष् अर्यमा भी हो सकता है। इन्द्र परमात्मा की शक्ति से आविर्भूत हुआ था। वैसे सोम (अर्यमा) बननेवाले तमस् आपः का नाम है।

सूक्त का पहला मंत्र है—

बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः साहदेव्यः।
अच्छा न हूत उदरम्॥ (ऋ० ४-१५-७)

पदच्छेद—बोधत्, यत्, मा, हरि-भ्याम्, कुमारः साह-देव्यः।
अच्छ, न हूतः, उत्, अरम्॥

मन्त्रार्थ—(कुमारः साह-देव्यः यत् हरि-भ्याम् मा बोधत्) देवताओं का साथी कुमार (अल्पायु इन्द्र) जब दो अश्वों (रचना-कार्य करनेवाले मित्र और वरुण) के साथ मुझको ज्ञान कराता है;

(न अच्छ हूतः अरम्) और भली प्रकार बुलाया हुआ [बिना लिये] नहीं टलता।

इन्द्र अपने प्रकट होने के तुरन्त ही उपरान्त, जब वह अल्पायु ही था तो अपने दो अश्वों (मित्र और वरुण) की सहायता से ऋषि को ज्ञान से संयुक्त करता है और फिर ज्ञान प्राप्त करनेवाला बिना ज्ञानवान् हुए वहाँ से नहीं लौटता।

अगला मंत्र इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत त्या यजता हरी कुमारात् साहदेव्यात्।
प्रयता सद्य आ ददे॥ (ऋ० ४-१५-८)

पदच्छेद—उत, त्या, यजता, हरी, कुमारात्, साहदेव्यात्।
प्र-यता, सद्यः, आ, ददे।

मन्त्रार्थ—(उत त्या साहदेव्यात् कुमारात् यजता हरी सद्यः आ ददे) और उन देवताओं के सहयोगवाला कुमार [इन्द्र] से संगति करने के योग्य अश्वों को मैं तुरन्त ग्रहण किए बिना टला नहीं।

ऊपर के मंत्र (४-१५-७) में कहा है कि इन्द्र ने मित्र और वरुण अपने अश्वों (कार्य करनेवाले अंगों) को ऋषि को ज्ञान देने के लिए लगाया और ऋषि [मंत्र- द्रष्टा] बिना ज्ञान ग्रहण किए टले नहीं।

इस मंत्र में कहा है कि देवताओं से सहयोग प्राप्त इन्द्र के अश्व जो संगति करने के योग्य हैं, अश्व (मित्र, वरुण) को मैं ग्रहण करता हूँ।

अगला मंत्र है—

एष वां देवावश्विना कुमारः साहदेव्यः।
दीर्घायुरस्तु सोमकः॥ (ऋ० ४-१५-९)

पदच्छेद—एषः, वाम्, देवौ, अश्विना, कुमारः, साह-देव्यः, दीर्घ आयुः अस्तु, सोमकः।

मन्त्रार्थ—(देवौ अश्विना एषः वाम साहदेव्यः कुमारः अस्तु सोमकः दीर्घ-आयुः) हे अश्विन् देवताओ! यह तुम्हारा देवताओं का साथी कुमार [इन्द्र] सोमकः [सोम आपः] दीर्घायु होवे।

इसका अभिप्राय यह है कि इन्द्र जो कार्य करनेवाला है, वह चिरकाल तक ऐसा करता रहे।

इससे अगला मंत्र भी मंत्र-संख्या ९ का उत्तर ही है कि वह ऐसा हो गया। इन्द्र संयुक्त तब तक रहेगा, जब तक इस जगत् के कार्य चलते रहेंगे।

इस प्रकार हमने बताया है कि इन मंत्रों में भी किसी प्रकार का इतिहास नहीं है; प्राकृतिक घटनाओं का वर्णन है। ऋग्वेद में जगत् के पदार्थों की स्तुति अर्थात् उनके गुण-कर्म-स्वभाव का वर्णन है। उसमें लोक-इतिहास नहीं है।

वेदों पर लिखनेवाले मध्यकालीन भाष्यकारों की यह भूल थी कि उन्होंने वेदों के अर्थ शब्दों के रूढ़ि अर्थ लगाकर किए।

सत्यकेतु जी का कहना है कि ऋषि महाभारत के काल तक होते रहे हैं। इसका क्या प्रमाण है? यह उनकी भ्रान्त कल्पना इस कारण बनी प्रतीत होती है कि वह समझते हैं कि सृष्टि-उत्पत्ति से लेकर आज-पर्यन्त एक ही भृगु, वसिष्ठ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अथवा विश्वामित्र हुए हैं। इतिहास के ज्ञाता माने जानेवाले श्री सत्यकेतु के मुख से ऐसी बात शोभा नहीं देती। यह पौराणिक कल्पना ही है कि सैकड़ों व्यास, वसिष्ठ, भृगु और आत्रेय हुए हैं। इनमें से कौन-कौन वेदों का प्रवक्ता था, यह कैसे कहा जा सकता है?

सत्यकेतु जी का विचार है कि सृष्टि के आदि से शन्तनु के काल तक केवल एक देवापी हुआ है। उनको कदाचित् यह ज्ञात नहीं कि रामचरितमानस के लेखक तुलसी एक भारद्वाज जी से प्रयागराज में मिलने गए थे। क्या यह वही भारद्वाज थे, जो राम के काल में थे और जिसने भरत और उसकी सेना का प्रयागराज में अपने आश्रम पर स्वागत किया था? वैदिक परम्परा यह है कि जब वेदों का छन्दों में आविर्भाव हुआ तो तत्कालीन ऋषियों ने उन छन्दों को सुना, उनका भाव समझा और फिर उनको प्रचलित राष्ट्रीय भाषा में लोगों को समझाया।

एक बात और प्रतीत होती है सत्यकेतु जी ने दिखावे के रूप में परम्परागत विचार और पौराणिक टीकाकारों का मत लिखकर अपने को तटस्थ प्रकट करने का यत्न किया हो। वास्तव में जितना कुछ उन्होंने अपने यूरोपियन गुरुओं और पौराणिक मत का निरूपण किया है, उसके खण्डन में एक भी प्रमाण अथवा युक्ति नहीं दी। इसी कारण उनके इस पक्षपातपूर्ण लेख पर वर्तमान टिप्पणी लिखने की आवश्यकता पड़ी है।

हमारा मत यह है कि वेद स्वयं कहता है कि ऋषि परमात्मा से प्रसारित ज्ञान को तत्कालीन लोकभाषा में मनुष्यों को समझानेवाले हुए हैं। इसका प्रमाण हमने ऋ० १-१३०-४, ५, ६ का दिया है। यौगिक अर्थों और रूढ़ि अर्थों में यास्क का प्रमाण देकर भी वह यह भूल गए हैं कि सिद्धान्त तो प्रायः सब निरुक्ताचार्य मानते हैं और यदि यास्क अपने सिद्धान्त के अनुसार किसी मंत्र का अर्थ नहीं कर सका तो यह यास्क की त्रुटि है, न कि सिद्धान्त गलत हो गए हैं।

यास्क किसलिए ठीक अर्थ नहीं कर सका? इसका कारण स्पष्ट है कि उसका सामान्य ज्ञान त्रुटिपूर्ण था। यही बात सायण में प्रतीत होती है। बेचारा राज्य-कार्य के बोझ से दबा हुआ वेद-जैसे विस्तृत ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ का भाष्य ठीक नहीं कर सका।

सिद्धान्त अटल होते हैं। उनके मानने में ज्ञान के अभाव की त्रुटि से सिद्धान्त नहीं बदल सकते। तभी तो वेद ने कहा है कि विद्या-अविद्या दोनों का ज्ञान होना चाहिए। केवल एक का ज्ञान रखने से मनुष्य अन्धकार में भटकता रहता है।

(यजु० ४०-१२, १३, १४)

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

माइथॉलोजी

वेद के तथाकथित यूरोपियन विद्वान् और उनकी परिपाटी पर शिक्षित भारतीय भाष्यकार वेद को 'माइथॉलोजी' कहते हैं। उनमें से एक मिस्टर ए०ए० मैकडॉनल की पुस्तक का उल्लेख हमने किया है। माईथॉलोजी का अर्थ काल्पनिक कहानियाँ होता है। वैदिक माइथॉलोजी के विषय में मैकडॉनल इस प्रकार कहता है—

The foundation on which Vedic Mythology rests, is still the belief, surviving from a remote antiquity, that all the objects and phenomena of nature with which man is surrounded, are animate and divine. Everything that impressed the soul with awe or reverence was regarded as capable of exercising a good or evil influence on man, that might in the Vedic age still become a direct object not only of adoration but of prayer. Heaven, earth, mountains, rivers, plants might be supplicated as divine powers: the horse, the cow, the bird of omen, and other animals might be invoked: even objects fashioned by the hand of man, weapons, the war-car, the drum, the plough, as well as ritual implements, such as the pressing-stones and the scrificial post, might be adored.

This lower form of worship, however, occupies but a small space in Vedic religion. The true Gods of the Veda are glorified human beings, inspired with human motives and passions, born like man, but immortal. They are almost with exception the deified reprsesentatives of the phenomena or agencies of nature. The degree of anthropomorhism to which they have attained, however,....

Vedic Mythology : by A.A. Macdonell,
(Pub. : Indological Book House, 1971)

अर्थ है—"वैदिक माइथॉलोजी की आधारशिला अभी भी उस विश्वास पर आधारित है, जो बहुत ही प्राचीन काल से जीवित चला आ रहा है कि प्रकृति की सब घटनाएँ और वस्तुएँ, जो मनुष्य को घेरे हुए हैं, दिव्य गुण रखती हैं और सजीव हैं। प्रत्येक वह वस्तु जो आत्मा में भय उत्पन्न करती है अथवा जिसके विषय में यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं। प्रत्येक वह वस्तु जो आत्मा में भय उत्पन्न करती है अथवा जिसके विषय में यह माना जाता है कि वह मनुष्य पर अच्छा अथवा बुरा प्रभाव उत्पन्न कर सकती है, वह वैदिक काल में न केवल पूजा के योग्य् मानी जाती थी, वरन् प्रार्थना के भी। आकाश, पृथिवी, पर्वत, नदियाँ और पेड़-पौधे भी दिव्य शक्तियाँ माने जाते हैं। अश्व, गाय, शुभ लक्षणवाले पक्षी और दूसरे जन्तु भी आह्वान किए जाते हैं। यहाँ तक कि वे वस्तुएँ भी जो मनुष्य ने स्वयं बनाई हैं, जैसे शस्त्र, रथ, ढोल, हल तथा यज्ञ के बर्तन, सिल-बट्टा और यज्ञ-स्तूप भी पूजे जाते हैं।''

परन्तु हमने जो पिछले अध्यायों में अग्नि का वर्णन किया है, वह तो सर्वथा भिन्न कथा कहता है।

वास्तव में भूल दो भ्रान्तियों के कारण हो रही है। एक तो वेदों के साथ ब्राह्मणादि ग्रन्थों को भी वेद माना जा रहा है। ब्राह्मणग्रन्थों का अभिप्राय क्या था—यह इस पुस्तक का विषय नहीं है। इतनी बात तो निर्विवाद है कि जहाँ ब्राह्मण आदि ग्रन्थों को वेद कहा है, वहाँ वेद के अर्थ मात्र विद्या (knowledge) के ग्रन्थ हैं। वे वेद, जो त्रयी विद्या के सूचक माने जाते हैं, नहीं हैं।

दूसरी भूल यह की गई है कि लौकिक संस्कृत भाषा के अर्थों को वेद-शब्दों के अर्थ करने में प्रयोग किया जा रहा है।

हमने इस ग्रन्थ के उपोद्घात में निरुक्तशास्त्र की मुख्य बात बताई है। वह यह कि वेद में नामों के यौगिक अर्थ लगाए जाते हैं।

उदाहरण के रूप में 'आप:' और अग्नि के मिथुन की बात कही है। सामान्य भाषा में 'मिथुन' पुरुष-स्त्री में संभोग को कहते हैं, परन्तु वैदिक भाषा में इसका अर्थ संयोग है। वहाँ पुरुष-स्त्री के सम्बन्ध का वर्णन नहीं है। इसी प्रकार अर्थ के अनर्थ किए गए हैं।

यूरोपियन विद्वानों के कुत्सित उद्देश्यों का हमें संदेह होता है। वे वेदों को यूरोप के देशों के जंगली लोगों की बातों से मिलान करना चाहते थे।

मिस्टर मैकडॉनल ने स्वयं अपनी पुस्तक 'वैदिक माइथोलॉजी' की भूमिका में कहा है कि 'सेक्रेटरी ऑफ स्टेट फॉर इण्डिया' की प्रेरणा पर पुस्तक लिखी जा रही है। ये राजनीतिक उद्देश्यों से लिखाई गई पुस्तकें हैं।

इस प्रकार के ग्रन्थों को हम राजनीति से प्रेरित मानते हैं। इन 'बुद्धिमानों' ने ईसाइयत और ब्रिटिश राज्य के कल्याण की भावना से उद्भावित होकर ये ग्रन्थ लिखे हैं।

परन्तु हम इस विषय में एक अन्य दिशा में पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं। हमने यह बताया है कि वेद सत्य ज्ञान-विज्ञान के ग्रन्थ हैं। जो वर्णन अग्नि

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का हमने पिछले अध्यायों में किया है, वह वर्तमान विज्ञान में 'कॉस्मोगॉनी' और 'कॉस्मोलॉजी' के विषय समझे जाते हैं। यदि हमारा कहना सत्य है कि वेदमंत्र जो हमने पहले दिए हैं और जो हम अपने ग्रन्थ में आगे दे रहे हैं, वे सत्य विज्ञान हैं तो इसी विषय पर हम वर्तमान विज्ञान की बातें बता देना चाहते हैं।

Cosmogony, the branch of astronomy concerned with the evolutionary behaviour of the universe and the origin of its various characteristic features. **(Ency. Brit.** 1967 Vol-6, Page 578)

अर्थ है—कॉस्मोगॉनी (Cosmogony) खगोल-विद्या का वह विभाग है, जिसका सम्बन्ध विश्व (Universe) के व्यवहार से और उसके विभिन्न अंगों की उत्पत्ति से है।

जो कुछ हमने ऊपर बताया है और जिसको हम सृष्टि-रचना का वृत्तान्त कह रहे हैं, वह वर्तमान विज्ञान में कॉस्मोगॉनी के नाम से प्रसिद्ध है।

और वह शाखा जो कहती है, वह इस प्रकार है—

The cornerstone of modern cosmogonical theories is the assumption that the system of galaxies scattered through the vast space of the universe is in the state of progressive expansion or dispersal. This conclusion, based on the observation of a red shift of spectral lines in the light coming from distant galaxies–....led G. Lemaitre in 1927 to formulate a broad cosmogonical hypothesis according to which the present high degree of differentiation of matter in space and the complexity of forms of various astronomical objects must have resulted from a violent explosion and subsequent dispersal of an originally highly compressed and intensely hot homogeneous material. **(Ency. Brit**. 1967 vol-6, page 578)

अर्थ है—''वर्तमान कॉस्मोगॉनी की मान्यताओं (theories) की आधारशिला यह स्वीकारोक्ति है कि इस विशाल विश्व में 'गैलेक्सीज़' (आकाश-गंगाएँ) जो बिखरी हुई हैं, ये निरन्तर फैल रही हैं। यह परिणाम इस बात से पता किया गया है कि इन 'गैलेक्सीज़' से आ रहे प्रकाश के विश्लेषण पर 'लाल लाइन' स्थान बदलती देखी गई है। इसे प्रकाश के स्पेक्ट्रम में 'रैड शिफ्ट' के नाम से कहा जाता है। जी० लिमेत्री (G. Lemaitre) ने पता किया है और इससे यह परिणाम निकाला गया है कि गैलेक्सीज़ (हमारी आकाशगंगा भी एक गैलेक्सी है) एक केन्द्रीय स्थान से दूर को भागी जा रही हैं।)''

इस सिद्धान्त को लेकर कहा जा रहा है कि जगत् फैल रहा है। इसे 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' के लेखक 'यूनिवर्स' कहते हैं। वेद में इसे यूनिवर्स

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विश्व) नहीं माना गया। इसे जगत्, जो गतिशील है, कहते हैं। विश्व (सम्पूर्ण) तो इससे भी बहुत बड़ा, असीम है।

जगत्, बनने के समय, एक अण्डे के फटने से बना कहा जाता है। इसे वर्तमान वैज्ञानिक महान् धमाका (The big bang) कहते हैं। परन्तु धमाके के कुछ काल उपरान्त जगत् स्थिर गति से चलने लगता है। यह निरन्तर फैल रहा नहीं माना जाता है। जो गैलेक्सीज़ फैल रही हैं, परस्पर एक-दूसरी से दूर जा रही दिखाई देती हैं। उनसे मतभेद हमारा भी है और वर्तमान वैज्ञानिकों का भी है।

इसी 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' में कहा है—

....The new theory, known as steady-state cosmology, assumes that progressive dispersal of galaxies does bot lead to rarefaction of the space of the universe because their place is taken by younger galaxies which condense from new matter that is being continuously created (from nothing) all through the intergalactic space. Since the rate of creation of new matter is assumed to be equal to the observed rate of dispersal of galaxies, the density of the galactic population of space remains constant in time, and the show goes on without begining or end. —(**Ency. Britt.** vol-6, page 579)

अर्थ है—''नया सिद्धान्त जो 'स्थिर अवस्था' कहकर जाना जाता है, यह स्वीकार करता है कि गैलेक्सियों के निरन्तर फैलने से व्योम में पतलापन नहीं आता, क्योंकि उनका स्थान नवीन बनी गैलेक्सियों से लिया जा रहा है, जो नये उपादान (material) के सिकुड़ने से, जो (शून्य से) बन रहा है, यह गैलेक्सियों के भीतर के स्थान पर बन रहा है। क्योंकि, नए उपादान के बनने की गति वही मानी गई है, जो गैलेक्सियों के फैलने की है इस कारण व्योम में गैलेक्सियों की गिनती बराबर रहती है और यह तमाशा अनादि से अनन्त तक एकरस चलता आ रहा है।''

इस वक्तव्य से एक तो यह पता चलता है कि जगत् स्थिर माना जाने लगा है। दूसरा यह कि गैलेक्सी के फैलने से कोई स्थान खाली नहीं होता और शून्य से ही उपादान (material) बन रहा है। इस कारण यदि गैलेक्सियाँ किसी स्थान से चली जाती हैं तो उनका स्थान नई बनी गैलेक्सियाँ ले रही हैं।

हमारी इस पुस्तक से यह विषय संगति नहीं रखता। परन्तु हमने इस पर चर्चा की है यह बताने के लिए कि वर्तमान विज्ञान अभी इस विषय में स्थिरमत नहीं है।

ये लोग शून्य से उपादान (मैटेरियल) बन रहा देख रहे हैं और यह विचार नहीं करते कि जिसे वे शून्य समझ रहे हैं, वह भी कुछ है, यद्यपि इतनी सूक्ष्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अवस्था में है कि उनके यंत्र देख नहीं सकते।

कुछ भी हो, प्रकाश के स्पेक्ट्रम (Spectrum) में लाल रेखा (Red Shift) का स्थानान्तर होना, किसी बात का प्रमाण स्वीकार नहीं किया जा रहा।

इसी लाल रेखा (Red shift) को आधार बनाकर आइन्स्टीन ने अपने सापेक्षता सिद्धान्त (Theory of relativity) का आविष्कार किया था।

सापेक्षता सिद्धान्त (Theory of relativity) का सिद्धान्त एक तो 'रेड-शिफ्ट' और दूसरे 'भू-आकर्षण' में असंगतियाँ देखकर बना है। दोनों के विषय में अब वैज्ञानिक संदेह करने लगे हैं।

पूर्व इसके कि वर्तमान वैज्ञानिकों के सापेक्षता-सिद्धान्त पर हम अपने विचार बताएँ, हम दो शब्द इस सापेक्षता-सिद्धान्त पर बता देना चाहते हैं।

न्यूटन ने भू-आकर्षण के सिद्धान्त का प्रतिपादन किया था और उसने इसे गणित से सिद्ध किया था। बाद में जब नाप-तोल के यंत्र बहुत सूक्ष्म बने तो भू-आकर्षण, जो गणित से बनता था और जो इन बनाए यंत्रों से पता चला, दोनों में अन्तर दिखाई दिया। इस पर आइंस्टीन ने अपना सापेक्षता-सिद्धान्त (Theory of relativity) का प्रतिपादन किया था।

उसने कहा कि इस संसार में सर्वथा सत्य और स्थिर कुछ नहीं है। सब-कुछ एक-दूसरे की अपेक्षा से ही है। इसी कारण गणित से भू-आकर्षण देश और काल की गतियों के गणित में स्थिर गणना नहीं है। ज्यों-ज्यों व्योम में स्थिति बदल रही है, सब गणना भी बदल रही है।

यह विचार अधूरा ही है। इसके विषय में आज क्या समझा जा रहा है, उसका एक नमूना पाठक देख लें तो ठीक होगा।

Science and the Future 1980 Year Book (वार्षिक विवरण १९८०)[१] के पृष्ठ ९४ पर Robert M. Wald (Asst. Prof. Enrico Fermi Institute) लिखते हैं—

Whichever of these possibilities holds, Einstein's equation allows one to predict the future evolution of the universe and to trace its early behaviour. When a mathematical excursion into the past is made, a very striking thing happens. For all three spatial geometries, the farther back one goes in time, the more contracted was the universe and the more rapid was the rate of expansion. In fact, general relativity

---

1. Pub : Encyclopaedia Britannica, Inc. Chicago, Toranto, London, Geneva, Sydney, Tokyo, Manila, Seoul.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

indicates that approximately 15 billion years ago the universe was infinitely contracted: the distance between any two points was zero, the density of matter was infinite, and, for a closed universe, the volume of the entire universe was zero! According to this picture the universe came into being in a highly singular state, the moment of its origin being referred to as 'Big Bang.'

अर्थ है—"महान् विस्फोट की कुछ भी सम्भावना हो, आइन्स्टीन के गणित-समीकरण (Mathematical equation) भावी जगत् के विकास के भविष्य की भविष्यवाणी करता है और यदि गणित की खोज भूतकाल में ली जाए तो आदि के व्यवहार की भी सूचना देता है। यह त्रि-विद्या (Three dimension) ज्यामिति (Geometry) के लिए एक विशेष ध्यान देने योग्य बात होती दिखाई देगी। जितना हम पीछे को जाएँ, उतना ही सिकुड़े हुए जगत् का अनुमान करना होगा। जितना सिकुड़ा हुआ जगत् होगा, उतनी ही फैलाव की गति अधिक निकलती है। वास्तव में सामान्य अपेक्षा का सिद्धान्त यह बताता है कि लगभग पन्द्रह खरब वर्ष पूर्व जगत् अति संकुचित था और दो वस्तुओं में अन्तर शून्य था, उपादान का घनत्व असीम कम। चारों ओर से जगत् का विचार करें, तो जगत् का आरम्भ शून्य के समान होगा। यह विचित्र दशा उस समय की है, जब महान् विस्फोट (Big Bang) हुआ।"

हम समझते हैं कि आइन्स्टीन द्वारा दिया गया वर्णन लगभग वही है जो ऊपर वेदमंत्रों से प्रकट किया गया है। यह इस कारण कि वैदिक चित्र में और ऊपर के दिए चित्र में कुछ-एक बातों में अन्तर भी है। यह हम आगे चलकर वर्णन करेंगे।

यहाँ हम एक अन्य वैज्ञानिक रॉबर्ट एच० डिक (Robert H. Dicke., Prof. of Science And Professor of Physics, Princenton University) के आइन्स्टीन के 'सापेक्षता सिद्धान्त' पर टिप्पणी लिख देना चाहते हैं। श्री डिक लिखते हैं—

Unresolved Paradoxes

One should not conclude that all is now well with relativistic cosmology. In fact, there are paradoxes, unresolved and perhaps unresolvable, in the framework of Einstein's theory. Among these are the following.

1. It has been shown that there is an unavoidable singularity in the solution to Einstein's equations at the start of the expansion of the universe and that as a result there is no way of continuing a conceivable previous history of the universe forward to the time immediately after the big bang. The 'singularity' is a breakdown of the mathematics due to the occurrence of infinities.

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

2. The universe started expanding with a remarkably carefully adjusted expansion rate. For a fractionally tiny increase or discrease in the expansion rate near the beginning of the expansion, conditions later would not have been such as to have led to the formation of stars.

3. The start of the expansion was remarkably well synchronized over the whole universe, separate parts that were causally disconnected starting out together. (Causally disconnected parts are those that can not communicate with each other in the time available from the start of expansion.)

4. In similar fashion the universe exhibits a remarkable global structure causally disconnected parts have similar densities and are otherwise similar.

5. Another global peculiarity concerns the question of finiteness. Observed early in the expansion, the universe is remarkably close to 'flat', the boundary between finite and infinite (a closed and open space). But why should it be so nearly flat without being precisely flat?

At his time, scientists can only speculate as to the meaning of these paradoxes.

—**Science and the Future** 1980 Year Book Page 85

अर्थ है—*विरोध, जिसका समाधान नहीं हुआ।*

"अभी तक यह परिणाम नहीं निकाला जा सकता कि रचना-क्रम में आपेक्षिक सिद्धान्त के साथ सब-कुछ सरल हो गया है। उसमें विरोध है कि जिनका आइन्स्टीन के समीकरण में समाधान नहीं हुआ और कदाचित् नहीं हो सकता। उनमें कुछ ये हैं जिनका समाधान नहीं है।

१. यह दिखाया जा चुका है कि आइन्स्टीन की गणित के समीकरण (equation) में रचना आरम्भ (beginning of expansion) के समय एक न हटाए जा सकने योग्य विचित्रता है। इसके परिणामस्वरूपं उस शून्य से पूर्व के इतिहास का महान् विस्फोट तक पहुँचने तक कुछ भी संकेत नहीं है। गणित असफल सिद्ध हुआ है—असीम का वर्णन करने में।

(यह हम ऊपर एम० वाल्ड की टिप्पणी में बता आए हैं कि आइन्स्टीन की समीकरण (Mathematical equation) बताती है कि महान् विस्फोट के समय शून्य था।)

२. जगत् का विस्तार आरम्भ हुआ, एक ध्यान देने योग्य सावधानी से, निश्चित फैलाव की गति से—बहुत न्यून गति से, हेर-फेर जो विस्तार के आरम्भ में हुआ। इस अवस्था में नक्षत्र बनने सम्भव नहीं थे, क्योंकि विस्तार की गति लगभग समान थी।

३. रचना-विस्तार का आरम्भ पूर्ण व्योम में विचित्र ढंग से नियत रूप में था

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जो भिन्न-भिन्न हिरण्यगर्भों में दिखाई देता है। वह इस कारण है कि एक स्थान की हलचल दूसरे स्थान से सम्पर्क नहीं रख सकी।

४. इसी प्रकार जगत् विचित्र ढंग पर गोलाकार रूप रखता है। अकस्मात् भिन्न-भिन्न भाग (गैलेक्सीज़) समान घनत्व रखते हैं और दूसरे ढंग से भी समान हैं।

५. गोल होने के साथ जगत् चपटा भी है और सीमावाला है। बन्द और बाहर की सीमा में भेद और इसका लगभग चपटापन क्यों?

ये सब और गतियाँ भविष्य में आनेवाले वैज्ञानिकों के लिए विचार का विषय हैं।

संक्षेप में हमारा कहना है कि मुख्य-मुख्य बातों में आपेक्षिक सिद्धान्त वैदिक सिद्धान्त के अनुकूल है। हमने बताया है कि इनमें भेद भी है। इस अनुकूलता और भेद को समझने के लिए एक-दो बातें ऊपर के वक्तव्यों में भाषा के प्रयोग के विषय में समझ लेनी चाहिएँ।

१. यूनिवर्स (Universe) का शाब्दिक अर्थ है—सर्वस्व अम्बरान्त जो असीम है। परन्तु आइन्स्टीन और उसके सिद्धान्त पर आपत्ति करनेवाले इसे कार्य-ज़गत् के अर्थ में ले रहे हैं। वे समझ रहे हैं कि जहाँ तक व्योम में निर्माण दिखाई देता है, बस वहाँ तक ही है और उससे आगे कुछ नहीं।

वैदिक सिद्धान्त यह है कि व्योम-स्थान—यूनिवर्स असीम है और इसमें से कहीं-कहीं ही रचना-कार्य हुआ है। वह कुछ काल तक रहेगा और फिर समाप्त हो जाएगा। इस समय अन्य स्थानों पर रचना-कार्य आरम्भ हो जाएगा। कार्य-जगत् उस स्थान को कहते हैं, जहाँ रचना (Creation) हुई है अथवा हो रही है।

२. दूसरी बात जिसकी हम आइंस्टीन के कथन में असंगति देखते हैं। वह यह नहीं मानते कि एक मूल पदार्थ प्रकृति, तमोभूत, जिसमें बहुत छोटे-छोटे कण, परमाणु जो अविभाज्य हैं, वे पूर्ण व्योम में भर रहे हैं। ये परमाणु साम्यावस्था में हैं अर्थात् सर्वथा अचल (innert) अवस्था में हैं। वैदिक सिद्धान्तानुसार प्रत्येक परमाणु तीन शक्तियों (three forms of forces) का संतुलन है। हमने इनको चित्र बनाकर दिखाया है। संतुलित अवस्था में ये तमोभूत होते हैं। यह वर्तमान वैज्ञानिकों और आइन्स्टीन की समझ में नहीं आया। यह तर्क से सिद्ध है।[१]

३. तीसरी बात जो आइन्स्टीन और वर्तमान वैज्ञानिक नहीं मानते, वह है—रचना क्यों? एक सर्वव्यापक, चेतन, सर्वशक्तिमान् तत्त्व परमात्मा के अस्तित्व को

१. इसका युक्ति-युक्त विस्तृत वर्णन लेखक की पुस्तक 'सृष्टि रचना' में देखें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये लोग नहीं मानते। परमात्मा एक वैज्ञानिक तथ्य है। इसे वर्तमान युग के वैज्ञानिक स्वीकार नहीं करते।

इन आधारभूत बातों के कारण वैदिक सिद्धान्त और आइन्स्टीन-सिद्धान्त में अन्तर है।

वैदिक सिद्धान्त यह है कि भू-आकर्षण और चुम्बकीय (gravity and magnetism) तन्मात्रा हैं। तन्मात्रा, जब परिमण्डल (ऐटम) बन जाता है और तेजस् अहंकार (इलेक्ट्रॉन) वैकारिक तथा भूतादि अहंकारों के चारों ओर घूमने लगते हैं, तो दोनों धन (+) और ऋण (-) शक्तियों के बार-बार आर-पार करने (crossing) से पाँच प्रकार की शक्तियाँ उत्पन्न होती हैं। ये तन्मात्रा कहाती हैं। भू-आकर्षण उनमें से एक है। जहाँ-जहाँ परिमण्डल (ऐटम) होंगे, वहाँ-वहाँ यह भू-आकर्षण भी होगा और समीप के परिमण्डलों को आकर्षित करेगा।

क्योंकि परिमण्डल पूर्ण जगह में भरे पड़े हैं, इस कारण भू-आकर्षण आदि तन्मात्राएँ अनेक दिशाओं में कार्य करती हैं जो सबका परिणाम (result) होता है। वह परिणाम भी भू-आकर्षण आदि शक्तियों का है। यही कारण है कि न्यूटन की ग्रेविटी (भू-आकर्षण) की गणना सर्वथा ठीक नहीं हो सकी। क्योंकि, भिन्न-भिन्न स्थानों पर भिन्न-भिन्न मात्रा और प्रकार के परमाणु रहते हैं और उनसे उत्पन्न भू-आकर्षण कई प्रकार से प्रभाव उत्पन्न करता है। यह है रहस्य आपेक्षिक भू-आकर्षण (relative gravity) और शुद्ध, पवित्र ग्रेविटी में।

आइन्स्टीन ठीक कहता है कि न्यूटन का गुर (formula) सर्वथा सत्य नहीं। वह हो भी नहीं सकता था। परन्तु मोटे तौर पर जब बड़ी-बड़ी वस्तुओं पर परीक्षण होते हैं तो वह लगभग ठीक ही सिद्ध होता है।

वैदिक सिद्धान्त है, रचना-कार्य एक बिन्दु-स्थान से आरम्भ हुआ। परन्तु उस बिन्दु-स्थान पर शून्य नहीं था। वहाँ प्रकृति के परमाणु थे जो भार-रहित थे। इस पर भी उनका द्रव्यमान (mass) तो था। इस कारण जगत् शून्य से नहीं बना। भार-रहित (weightless) परमाणुओं से रचना आरम्भ हुई। यह ठीक है कि गणित असीम के विषय में मौन है।

अतः हम आइन्स्टीन को आंशिक ऋषि मानते हैं। वह बेचारा जर्मनी में उत्पन्न होने के कारण नास्तिकों के प्रभाव में परमात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं करता था। इसी कारण उसके सिद्धान्त में विरोधाभास (paradox) है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड दो

प्रथम अध्याय

इन्द्र देवता

यास्क ने अपने निरुक्त भाष्य में लिखा है कि अत्यन्त ऐश्वर्यवान् होने से सब देवता एक ही तत्त्व से कई प्रकार से स्तुति किए जाते हैं। वहाँ शब्द हैं—

....माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा बहुधा स्तूयते।

साथ ही कहा है—

एकस्यात्मोऽन्ये देवाः प्रत्यङ्गानि भवन्ति।

(यास्क० निरुक्त ७-४)

अर्थात् एक आत्मा (सार-तत्त्व प्रकृति) के दूसरे देवता प्रत्यङ्ग होते हैं। अतः प्रकृति से अन्यान्य देवता बनते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि सभी देवता एक ही देवता से उत्पन्न हुए हैं। वह मूल देवता प्रकृति से उत्पन्न हुआ है।

यास्क का कहना है कि देवता प्रकृति से उत्पन्न, एक देवता के रूप-रूपान्तर हैं। प्रकृति से उत्पन्न वह मूल देवता इन्द्र है।

यहाँ यह समझ लेना चाहिए कि अनादि अग्नि, जिसका वर्णन हमने इस पुस्तक के प्रथम खंड में किया है, यास्क की परिभाषा के अनुसार देवता नहीं हो सकता, क्योंकि वह प्रकृति से उत्पन्न नहीं है। वह परमात्मा का लिंग है। इसी कारण अनादि अग्नि को देवता नहीं कहा गया, यद्यपि वह दिव्य गुण-सम्पन्न तो है ही। उसकी दिव्यता परमात्मा का लिंग होने के कारण है। वैश्वानर भी प्रकृति से उत्पन्न न होने के कारण देवता नहीं माना जाता। हाँ, जातवेदाः सूर्य में निर्माण हुआ है। उसके विषय में आगे चलकर लिखेंगे। जातवेदाः नाम का अग्नि देवता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्र प्रकृति से कैसे उत्पन्न होता है? इस विषय में हम प्रथम खण्ड के अध्याय दो में वर्णन कर चुके हैं। एक वेदमंत्र में कहा है कि पहले परमाणु पर इन्द्र का आधिपत्य था, पीछे परमाणु पर अर्वा (अनादि अग्नि) का आधिपत्य हो गया और इन्द्र परमाणु से बाहर (बहिर्मुख) हो गया। इसको हमने चित्रों में पुस्तक के पृष्ठ-(४६-५०) पर चित्रित करने का यत्न किया है।

इस विषय में शतपथ ब्राह्मण में विस्तार से वर्णन मिलता है। वहाँ कहा है—

असद्वा इदमग्र आसीत्। तदाहुः किं तदसदासीदित्यृषयो वाव तेऽग्रे सदासीत्तदाहुः के तऽऋषय इति प्राणा वाऽऋषयस्ते यत्पुरास्मात् सर्वस्मादिदमिच्छन्तः श्रमेण तपसारिषंस्तस्मादृषयः॥ १॥

स योऽयं मध्ये प्राणः।......॥ *(शतपथ ब्रा० ६-१-१-१, २)*

अर्थ है—पहले यह असत् (अमूर्त-अव्यक्त) ही था। ये असत् क्या थे? वे असत् ऋषि ही थे। ऋषि कौन थे? प्राण ही वे ऋषि थे जिन्होंने सबसे पहले सृष्टि को चाहा। वे श्रम तथा तप से खिन्न (अरिषन्) हो गए, इस कारण इनका नाम ऋषि पड़ा॥ १॥

यह प्राण ही मध्य में वह (इन्द्र) है।.... ॥

जो वेदमंत्र में कहा था, वह ही शतपथ के पाठ में भी कहा है। यहाँ इतना अधिक कहा है कि 'ऋषि ही प्राण थे और वह प्राण ही इन्द्र है।'

असत् का अभिप्राय अव्यक्तरूप प्रकृति है जो परमाणुरूप है। परमाणु के भीतर प्राण, ऋषि तथा इन्द्र पर्यायवाचक माने हैं। ऋषि अर्थात् प्राण, बहुवचन में है। इन्द्र एकवचन है। इसका अभिप्राय सत्त्व, रजस्, तमस् तो ऋषि थे और इन तीनों का एक नाम इन्द्र है। दूसरे शब्दों में, इन्द्र परमाणु-अन्तर्गत त्रिगुणात्मक शक्ति है।

आगे कहा है—इसी इन्द्र ने अपने इन्द्रिय अर्थात् पराक्रम से मध्य में इन प्राणों को दीप्त किया। इन्ध अर्थात् दीप्त करने से इन्ध (दीप्ति करनेवाला) नाम पड़ा। इस दीप्ति करनेवाले को इन्द्र कहते हैं। (इसका मूल पाठ हम पहले दे आए हैं।)

आगे कहा है—

.........त इद्धाः सप्त नाना पुरुषानसृजन्त॥

(शतपथ ब्रा० ६-१-१-२)

अर्थ है—इन दीप्ति हुओं ने सात पृथक्-पृथक् पुरुष उत्पन्न किए।

ये सात हैं—तीन आपः (इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन, न्यूट्रॉन), वायु, जातवेदाः अग्नि, चुम्बकीय शक्ति और भू-आकर्षण।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ये शक्तियाँ पृथक्-पृथक् रहकर कुछ काम नहीं कर सकती थीं। इस कारण कहा है—

तेऽब्रुवन्। न वाऽइत्थꣳसन्तः शक्ष्यामः प्रजनयितुमिमान्त्सप्त पुरुषानेकं पुरुषं करवामेति तऽएतान्त्सप्त पुरुषानेकं पुरुषमकुर्वन्यदूर्ध्वं नाभेस्तौ द्वौ समौब्जन्यदवाङ्नाभेस्तौ द्वौ पक्षः पुरुषः पक्षः पुरुषः प्रतिष्ठैकऽआसीत्॥

(शतपथ ब्राह्मण ६-१-१-३)

अर्थ है—वे कहने लगे, इस प्रकार रहते हुए तो उत्पत्ति करने में समर्थ न हो सकेंगे। इन सातों का एक पुरुष बना दो। उन्होंने इन सात का एक पुरुष बना दिया। दो को दबाकर नाभि के नीचे का भाग कर दिया। दो में से एक से एक पहलू और दूसरे से दूसरा पहलू, एक को प्रतिष्ठा अर्थात् स्थिर स्थान दे दिया।

इसके आगे कहा है—

सऽएव पुरुषः प्रजापतिरभवत्। स यः सः पुरुषः प्रजापतिरभवदयमेव स योऽयमग्निश्चीयते॥ *(श० ब्रा० ६-१-१-५)*

अर्थ है—वह एक पुरुष प्रजापति हुआ। यही प्रजापति वह अग्नि है, जिसका चयन किया जाता है।

इस कथन का अभिप्राय यह है कि परमाणु-अन्तर्गत जब त्रिगुणात्मक अग्नि स्वतन्त्र हुई तो इससे पुरुष अर्थात् शक्तियाँ उत्पन्न हुईं। उन शक्तियों के नाम हमने कल्पित किए हैं। वे ब्राह्मणग्रन्थ में नहीं कहे गए। हमारे विचार में वे हैं तीन आपः, वायु, जातवेदः—अग्नि, चुम्बकीय शक्ति और भू-आकर्षण। यह कल्पना हमने इस कारण की है कि पूर्ण जगत् इन सात के प्रयास से ही बना है। इनमें तीन तो द्रव्य (material) हैं अर्थात् वे पूर्ण जगत् का द्रव्यमान (mass) निर्माण करते हैं और शेष चार शक्तियाँ हैं जो इन तीन द्रव्यों को संगठित कर जगत् बनाती हैं।

वायु गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति है। इससे भूतादि अहंकारों और वैकारिक अहंकारों के चारों ओर तेजस् अहंकार चक्कर काटने लगते हैं। इसे हम परिमण्डल-अन्तर्गत शक्ति (Inter Atomic Energy) कहते हैं।*

शेष तीन हैं—जातवेदः (Chemical Energy), चुम्बकीय (Magnetic Energy) और भू-आकर्षण (Gravity)। इनसे ही सब जगत् संगठित है। जगत् के बनानेवाले को प्रजापति कहते हैं। यह इन सात का समूह है।

यास्क ने भी यही कहा है कि सब देवता एक देवता [इन्द्र] से बने हैं, और

---

* विस्तृत विवरण के लिए देखें लेखक की रचना 'सृष्टि-रचना'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसका मूल प्रकृति है। इस विषय में हम एक मंत्र (ऋग्वेद २-१२-१) पहले, पूर्व खण्ड में दे कर बता चुके हैं कि इन्द्र पहले बना। यह कल्याणकारी भी है और अति भयंकर भी है।

जैसे अग्नि की व्याख्या करने से पूर्व उसके (ऋ० १-१ सूक्त में) सामान्य दर्शन कराए थे, इसी प्रकार इन्द्र के भी सामान्य दर्शन (ऋ० १-४ में) कराए गए हैं। इस सूक्त के कुछ मंत्र हम द्वितीय अध्याय में दे रहे हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

इन्द्र के सामान्य दर्शन

सुरूपकृत्नुमूतये सुदुघामिव गोदुहे।
जुहूमसि द्यविद्यवि॥ (ऋ० १-४-१)

इस सूक्त का देवता है—इन्द्र।

पदच्छेद—सुरूप-कृत्नुम्, ऊतये, सुदुघाम्-इव, गो-दुहे।
जुहूमसि, द्यवि-द्यवि॥

मन्त्रार्थ—(सुदुघाम्-इव सुरूप-कृत्नुम् ऊतये गो-दुहे) सुगमता से दुही जानेवाली गाय की भाँति सुन्दर निर्माण करनेवाले [इन्द्र] को रक्षा के लिए।

(जुहूमसि द्यवि-द्यवि) दिनानुदिन स्तुति करते हैं। उसके गुण-कर्म-स्वभाव का वर्णन करते हैं, (अथवा उसका चिन्तन करते हैं)।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि हम इन्द्र के गुणों को प्रतिदिन देखते हैं और विचार करते हैं कि यह क्या है।

हम देखते हैं कि इन्द्र ऐसी सुगमता से प्रकट होता है जैसे एक अच्छी गाय दुही जाती है।

जहाँ ऋग्वेद (१-१-१) में अग्नि को रचना-पूर्व में सामने स्थित कहा है, वहाँ इन्द्र को ऐसा नहीं कहा। यह कहा है, इन्द्र सुगमता से प्रकट हो रहा है। प्रकृतिरूपी गाय को दुहकर इन्द्र निकाला जा रहा है।

आगे कहा है—

उप नः सवना गहि सोमस्य सोमपाः पिब।
गोदा इद् रेवतो मदः॥ (ऋ० १-४-२)

पदच्छेद—उप, नः, सवना, आ, गहि, सोमस्य, सोम-पाः, पिब।
गो-दाः, इत्, रेवतः मदः॥

मन्त्रार्थ—(नः सवना उप आ गहि सोमपाः पिब) हमारे यज्ञ-कार्यों में समीप आओ, (सुन्दर, सुखद, स्वादु पदार्थों का भोग करो, प्रयोग करो) अथवा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सोम को आत्मसात् करो।

(रेवतः इत् मदः गोदः) दूध देना (इन्द्र की) प्रसन्नता का सूचक है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि इन्द्र संसार के सब सुखकारक पदार्थों का निर्माण करनेवाला है। वह हमारे समीप आवे और सुखकारक सुन्दर पदार्थों का भोग करे अर्थात् उनका प्रयोग करे और हमें कराए।

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इन्द्र तीन शक्तियों का संतुलन है। इसके तीन रूप हैं—सत्त्व, रजस्, तमस्।

परमाणु पर परमात्मा की अनादि शक्ति अग्नि का प्रभाव होता है। तब परमाणु के भीतर की शक्ति बहिर्मुख हो जाती है। वह बहिर्मुख हुई शक्ति इन्द्र है। परमाणु सावेश (charged) हो जाते हैं और वे परस्पर संयोग बनाते हैं। सृष्टि-रचना में तीन संयोग बनते हैं। उन्हें तेजस्, वैकारिक और भूतादि कहते हैं। इनको वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इलेक्ट्रॉन, प्रोट्रॉन और न्यूट्रॉन कहा है। वैदिक भाषा में इनके मित्र, वरुण और अर्यमा नाम भी हैं। यह हम आगे चलकर बताएँगे।

ये वैदिक भाषा में आपः कहे जाते हैं। इनको एटॉमिक पार्टिकल्स भी कहते हैं। ये ही इन्द्र हैं।

इन आपः (एटॉमिक पार्टिकल्स) से रचित जगत् के सब पदार्थ बने हैं। कुछ सुखकारक हैं और कुछ कष्ट देनेवाले भी हैं। वेदमंत्र में कहा है कि सुखकारक सुन्दर पदार्थों का भोग प्राप्त करो। अभिप्राय यह कि उन पदार्थों को इन्द्र निर्माण करे।

इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

अथा ते अन्तमानां विद्याम् सुमतीनाम्।
मा नो अति ख्य आ गहि॥ *(ऋ० १-४-३)*

पदच्छेद—अथ, ते अन्तमानाम्, विद्याम्, सु-मतीनाम्।
मा, नः, अति, ख्यः, आ, गहि॥

मन्त्रार्थ—(अथ ते अन्तमानाम् सुमतीनाम् विद्याम्) और तेरे अन्तरंग व्यवहार को जाननेवाले बुद्धिमानों की (बात) हम जानें।

(नः अति मा ख्यः आ गहि) हमारा अतिक्रमण न कर (और) इधर आओ।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि इन्द्र का अंतरंग व्यवहार जाननेवालों की बात हम जानें और इन्द्र हमारा अतिक्रमण न करे, अर्थात् इन्द्र-शक्ति के ज्ञाता ये विद्वान् लोग हमारी अवहेलना न करें।

अगला मंत्र है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रं पृच्छा विपश्चितम्।
यस्ते सखिभ्य आ वरम्॥ (ऋ० १-४-४)

पदच्छेद—परा, इहि, विग्रम्, अस्तृतम्, इन्द्रम्, पृच्छ, विपः-चितम्।
यः, ते, सखिभ्यः, आ, वरम्॥

मन्त्रार्थ—(इन्द्रम् विग्रम् अस्तृतम् विपः-चितम् परा इहि पृच्छ) इन्द्र बुद्धिमान् अहिंसक ज्ञानवान् (दूरद्रष्टा), जो दूर है, के पास आओ और पूछो। (यः ते सखिभ्यः आ वरम्) जो तेरे मित्रों से सब ओर से वरने योग्य है।

इन्द्र के व्यवहार को जाननेवालों के विषय में कहा गया है कि जो तेरे मित्रों के लिए वरणीय को देनेवाला है, और वे भी, (इन्द्र का) अतिक्रमण न करें।

इन्द्र शक्ति है जो विद्युत्, अग्नि इत्यादि के द्वारा प्राप्त होती है। जो लोग इसके अन्तरंग व्यवहार को जानते हैं, उनके द्वारा वह आए और हमें लाभ पहुँचाए।

इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतश्चिदारत।
दधाना इन्द्र इद् दुवः॥ (ऋ० १-४-५)

पदच्छेद—उत, ब्रुवन्तु, नः, निदः, निः, अन्यतः, चित्, आरत।
दधानाः, इन्द्र, इत्, दुवः॥

मन्त्रार्थ—(नः ब्रुवन्तु उत चित् निदः निः अन्यतः आरत) हम (ऋत्विक कार्य करनेवाले इन्द्र की) स्तुति करें, उसके गुण-कर्म-स्वभाव को जानें और चिन्तन करें और निन्दा करनेवाले कहीं अन्यत्र चले जाएँ।

(दधानाः इन्द्रे इत् दुवः) इन्द्र में [इन्द्र के प्रयोग में] सेवा धारण करते हुए।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि हम अपने यज्ञ (कर्म) में इसकी विद्या को जाननेवालों को लगाएँ और अनजाने व्यक्तियों को यज्ञ से दूर कर दें, जिससे हमारे कार्य (उद्योगादि कार्यों) में इन्द्र का भली-भाँति प्रयोग हो सके

इसी सूक्त का एक अन्य मंत्र है—

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियं नृमादनम्।
पतयन् मन्दयत्सखम्॥ (ऋ० १-४-७)

पदच्छेद—आ, ईम्, आशुम्, आशवे, भर, यज्ञ-श्रियम्, नृ-मादनम्।
पतयत्, मन्दयत्-सखम्॥

मन्त्रार्थ—(आशवे आशुम् यज्ञश्रियम् नृमादनम् ईम् आ भर) व्याप्त होनेवाले के लिए शीघ्रगामी कार्य करनेवाले को, यज्ञ की शोभा को और लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को प्रसन्न करनेवाले को यहाँ लाओ।

(पतयत् मन्दयत्-सखम्) कार्यों में लीन को प्रसन्न करते हुए मित्र (जानकार) को यहाँ लाओ।

मित्र का अभिप्राय है कि व्याप्त होनेवाले, प्रसन्न करनेवाले मित्र को शीघ्र कार्य सम्पन्न करने के लिए यहाँ लाओ। शीघ्र कार्य करनेवाला और प्रसन्न करनेवाला मित्र है—इन्द्र। उसे लाने के लिए उसको कहा है जो शीघ्र कार्य सम्पन्न करना चाहता है। इन्द्र यज्ञ की शोभा और सबको प्रसन्न करनेवाला है।

इन्द्र विद्युत् का प्रतीक है और शीघ्र काम की इच्छा करनेवाला, विद्युत् के व्यवहार को जाननेवाला कुशल वैज्ञानिक है।

इसी सूक्त का अगला मंत्र भी देखना चाहिए। मंत्र इस प्रकार है—

अस्य पीत्वा शतक्रतो घनो वृत्राणामभवः।
प्रावो वाजेषु वाजिनम्॥ *(ऋ० १-४-८)*

पदच्छेद—अस्य, पीत्वा, शतक्रतो, घनः, वृत्राणाम्, अभवः।
प्र, आवः, वाजेषु, वाजिनम्॥

मन्त्रार्थ—(अस्य पीत्वा शतक्रतो वृत्राणाम् घनः अभवः) इस [परमात्मा की शक्ति] को पिया हुआ सैकड़ों कर्म करनेवाला तू वृत्रों को निस्तेज करनेवाला हो गया।

(प्र आवः वाजेषु वाजिनम्) संघर्षों में बलवानों की रक्षा की।

परमात्मा की शक्ति को ग्रहण कर इन्द्र सैकड़ों कार्य करता है और संघर्षों में अर्थात् घोर कामों में बलवानों की रक्षा करता है। जो बलवान् हैं, वह इन्द्र के कारण हैं।

वृत्र परिमण्डलीय वे कण (एटॉमिक पार्टिकल्स) हैं जो प्रोटॉन कहाते हैं। परिमण्डल में ये तमस् को ढाँप लेते हैं।

वृत्र 'वृ' धातु से उत्पन्न है। इसका अर्थ है 'आवरण' करनेवाला। यहाँ परिमण्डल में प्रोटोन से अभिप्राय है। वह इस कारण कि ये तमस् को ढाँप लेते हैं।

प्रोटोन धन-विद्युत् के वाहक होते हैं और इन्द्र का वज्र अर्थात् तेजस् (इलेक्ट्रॉन) ऋण-आवेश से इनका विरोध करते हैं और यह धन (+) विद्युत् को निस्तेज करने का काम करता है।

यही अभिप्राय है इनका।

वृत्र आपः हैं। यह हम मंत्र ऋ० १-१६३-३, ४ की व्याख्या में बता आए हैं।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीय अध्याय

इन्द्र का प्रथम कार्य

यह तो हम बता चुके हैं कि इन्द्र इस जगत् के पदार्थों को बनानेवाला है। ऐसे कार्य को वर्तमान विज्ञान में 'कॉस्मोलॉजी' कहते हैं। हमारा ज्ञान यह बताता है कि जिस ढंग से इन्द्र के कार्य का आरम्भ वेदों में वर्णित है, वैसा वर्तमान विज्ञान नहीं बता सका। यह इसके कार्य-आरम्भ के वर्णन से ही पता चल जाएगा।

इस कार्य-आरम्भ का वर्णन ऋग्वेद सूक्त १-३२ में किया है। इस सूक्त के पन्द्रह मंत्र हैं। हम उन सबको नीचे दे रहे हैं। इनका विस्तृत निर्वचन इस अध्याय के उपरान्त देंगे। इस पूर्ण सूक्त का देवता इन्द्र है।

इस सूक्त का प्रथम मंत्र इस प्रकार है—

इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचं यानि चकार प्रथमानि वज्री।
अहन्नहिमन्वपस्ततर्द प्र वक्षणा अभिनत् पर्वतानाम्॥

(ऋ० १-३२-१)

पदच्छेद—इन्द्रस्य, नु, वीर्याणि, प्र, वोचम्, यानि, चकार, प्रथमानि, वज्री। अहन्, अहिम्, अनु, अपः, ततर्द, प्र, वक्षणाः, अभिनत्, पर्वतानाम्॥

मन्त्रार्थ—(वज्री इन्द्रस्य प्रथमानि वीर्याणि अहिम् अहन् यानि चकार प्र-वोचम्) वज्रधारी इन्द्र के प्रथम शौर्य के कार्य अहि को नष्ट करने को कहता हूँ।

अहि का अर्थ साँप है। यहाँ साँप की भाँति कुण्डली मारे बैठे होने से अभिप्राय है।

(अनु अपः अभिनत् पर्वतानाम् वक्षणाः ततर्द) निम्नकोटि के आपः पर आघात कर गाँठोंवाले पहलुओं को तोड़-फोड़ देता है।

जब निबन्धन बन गए और परमात्मा की शक्ति से निबन्धन अर्थात् एटॉमिक पार्टिकल्स से परिमण्डल (ऐटम) बना, तब इन्द्र का कार्य आरम्भ हुआ। पहला कार्य यह है—परिमण्डल बहुत बड़े-बड़े द्रव्यमान वाले बनते हैं, जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडियम, यूरेनियम इत्यादि हैं। इनका द्रव्यमान तमस् आपः (न्यूट्रॉन) और प्रोटॉन वृत्र आपः के कारण होता है। इन्द्र की शक्ति वृत्र की कुण्डली को तोड़-फोड़कर छोटे-छोटे द्रव्यमान वाले परिमण्डल बनाने लगती है।

'अहिम्' है—अहि शब्द का द्वितीया, एकवचन। अहि का अर्थ साँप अथवा साँप की कुण्डली है। यहाँ अभिप्राय साँप की कुण्डली की भाँति आपों का गुच्छा है, जैसा हम आपाः का ऋ० १-१६३-३ के अर्थों में निबन्धन के शब्द से बता आए हैं।

इस प्रकार मंत्र का अभिप्राय यह बन जाता है कि इन्द्र का प्रथम शौर्य का कार्य है कि यह अश्वाग्निः (ऋ० १-१६३) से बनाए परमाणुओं के निबन्धनों, जो आपः कहे गए हैं, पर चोट करना है। ये आपः परस्पर सम्बन्धी हैं। ये स्त्रीलिंग माने गए हैं।

निबन्धन तीन प्रकार के बनते हैं। इनमें छोटे-छोटे भी हैं और बड़े-बड़े भी। छोटे-छोटे 'ह्रस्व' कहाते हैं और बड़े-बड़े 'दीर्घ' कहाते हैं। वर्तमान विज्ञान में, छोटे-छोटे इलेक्ट्रॉन (तेजस् अहंकार) और वैकारिक तथा भूतादि (बड़े) कहे जाते हैं।

छोटे बड़ों पर प्रहार करते हैं। छोटों में इन्द्र की शक्ति रहती है। अगले मंत्र में कहा है—

अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणं त्वष्टाऽस्मै वज्रं स्वर्यं ततक्ष।
वाश्रा इव धेनवः स्यन्दमाना अञ्जः समुद्रमव जग्मुरापः॥

(ऋ० १-३२-२)

पदच्छेद—अहन्, अहिम्, पर्वते, शिश्रियाणम्, त्वष्टा, अस्मै, वज्रम्, स्वर्यम् ततक्ष।

वाश्राः-इव, धेनवः, स्यन्दमानाः। अञ्जः, समुद्रम्, अव, जग्मुः, आपः॥

मन्त्रार्थ—(अहिम् अहन् पर्वते शिश्रियाणम् त्वष्टा अस्मै स्वर्यम् वज्रम् ततक्ष) कुण्डली को फोड़ दिया गाँठोंवाले में आश्रय लिये हुए इन्द्र के लिए त्वष्टा ने; अच्छी प्रकार चलाने योग्य वज्र बनाया।

(स्यन्दमानाः आपः समुद्रम् अञ्जः अवे जग्मुः वाश्राः-इव धेनवः) चलते हुए आपः अन्तरिक्ष को तुरन्त प्राप्त होते हैं, जैसे बछड़े को प्रीतिपूर्वक चाहती हुई गाय (बछड़े की ओर जाती है)।

जब अग्नि के परमाणुओं पर प्रभाव से परमाणुओं के निबन्धन आपः बनते हैं तो वे अन्तरिक्ष में, समीप ही, भ्रमण करने लगते हैं। ये निबन्धन परमाणुओं के ऐसे ही गुच्छे बन जाते हैं, जैसे साँप कुण्डली मारे बैठा होता है। इन पर इन्द्र की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति का प्रभाव होता है। यह शक्ति अर्थात् वज्र मित्र-आपः हैं। इन्द्र का वज्र है—मित्र (इलेक्ट्रॉन)।

अगला मंत्र है—

वृषायमाणोऽवृणीत सोमं त्रिकद्रुकेष्वपिबत् सुतस्य।
आ सायकं मघवाऽदत्त वज्रमहन्नेनं प्रथमजामहीनाम्॥

(ऋ० १-३२-३)

पदच्छेद—वृष-यमाणः, अवृणीत, सोमम्, त्रि-कद्रुकेषु, अपबित्, सुतस्य। आ, सायकम्, मघ-वा, अदत्त, वज्रम्, अहन्, एनम्, प्रथम-जाम्, अहीनाम्॥

मन्त्रार्थ—(वृष-यमाणः सोमम् अवृणीत सुतस्य त्रिकद्रुकेषु अपिब्रत्) पुष्ट सोम को वरा। सन्तान (जगत् के निर्मित पदार्थों) को तीन प्रकार के व्यवहारों (त्रिगुणात्मक चलने) में स्वीकार किया।

(मघ-वा सायकम् वज्रम् आ अदत्त) इन्द्र ने शक्तिशाली वज्र को लिया।

(एनम् प्रथम-जाम् अहीनाम् अहन्) कुण्डलियों के इस पहले उत्पन्न हुए को तोड़-फोड़ दिया।

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि इन्द्र की शक्ति अन्तरिक्ष में इधर-उधर भ्रमण कर रहे परमाणुओं के निबन्धनों पर प्रभाव उत्पन्न करती है। वे निबन्धन अपने द्रव्यमान के विचार से तीन प्रकार के हैं।

अगला मंत्र है—

यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनामान्मायिनाममिनाः प्रोत मायाः।
आत्सूर्यं जनयन् द्यामुषासं तादीत्ना शत्रुं न किलाविवित्से॥

(ऋ० १-३२-४)

पदच्छेद—यत्, इन्द्र, अहन्, प्रथम-जाम्, अहीनाम्, आत्, मायिनाम्, अमिनाः प्र, उत, मायाः।

आत्, सूर्यम् जनयन्, द्याम्, उषसम्, तादीत्ना शत्रुम्, न, किल, विवित्से॥

मंत्रार्थ—(उत इन्द्र यत् अहीनाम् प्रथम-जाम् अहन् आत मायाः प्र अमिनाः) और हे इन्द्र! कुण्डलियों में प्रथम उत्पन्न हुए पर जब तुम प्रहार करते हो और तुम रचितों की रचना भली प्रकार नष्ट कर देते हो।

(आत् सूर्यम् द्याम् उषसम् जनयन् तादीत्ना शत्रुम् न विवित्से किल) उस समय सूर्य को, द्युलोक को, ऊषा (प्रकाश) को उत्पन्न करते हो। तदनंतर शत्रु को (तुमने) नहीं पाया (वृत्र नष्ट हो गए और वे नहीं रहे)।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि जब परमाणुओं के निबन्धनों पर अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आपाओं पर इन्द्र की शक्ति का प्रहार होता है तो सूर्य, आकाश और चमक उत्पन्न हो जाती है। अन्तरिक्ष प्रकाशित हो उठता है। उस समय रचना-प्रक्रिया का विरोध नहीं हो सकता। रचना-कार्य वेग से चलने लगता है।

अगला मंत्र है—

अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो वज्रेण महता वधेन।
स्कन्धांसीव कुलिशेना विवृंक्णाऽहिः शयत उपपृक्पृथिव्याः॥

(ऋ० १-३२-५)

पदच्छेद—अहन्, वृत्रम्, वृत्र-तरम्, वि-अंसम्, इन्द्रः, वज्रेण, महता, वधेन। स्कन्धांसि-इव, कुलिशेन, वि-वृक्णा, अहिः, शयते, उप-पृक्, पृथिव्याः॥

मन्त्रार्थ—(इन्द्रः वृत्रम् वृत्र-तरम् वि-अंसम् अहन् महता वधेन वज्रेण) इन्द्र वृत्र को और वृत्र से भी बड़े अवयवों पर प्रहार करता है और महान् वज्र से मार डालता है।

(अहिः कुलिशेन स्कन्धांसि-इव विवृक्णा पृथिव्याः उप-पृक् शयते) शरीर के अवयवों की भाँति तेज शस्त्र से टुकड़े-टुकड़े हुआ-हुआ अहि (अपः की कुण्डली) पृथिवी पर लेट जाता है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि वृत्र-तरम्—वरुणों के बड़े-बड़े आपः के समूह और उनसे भी बड़े-बड़े जो निबन्धन हैं, उन पर प्रहार करता है। वह कम बड़ों को तोड़ देता है। उनको सर्वथा निस्तेज कर देता है। इन सर्वथा निस्तेज परमाणुओं के निबन्धनों से पार्थिव पदार्थ (Solids) बनने लगते हैं।

यह हम पहले एक मंत्र के अर्थ में बता आए हैं कि आपः द्रव्यमान के विचार से तीन प्रकार के होते हैं। एक ह्रस्व जो बहुत छोटे-छोटे होते हैं। ये तेजस् अहंकार (इलेक्ट्रॉन) कहाते हैं। दूसरे वैकारिक अहंकार (प्रोटॉन) कहे जाते हैं और तीसरे भूतादि अहंकार (न्यूट्रॉन) कहे जाते हैं। इन भूतादि अहंकारों से ही पार्थिव पदार्थ बनने आरम्भ होते हैं।

वृत्र है वैकारिक आपः की कुण्डली की भाँति इकट्ठा हो जाना।

अगला मंत्र है—

अयोद्धेव दुर्मद आ हि जुह्वे महावीरं तुविबाधमृजीषम्।
नातारीदस्य समृतिं वधानां सं रुजानाः पिपिष इन्द्रशत्रुः॥

(ऋ० १-३२-६)

पदच्छेद—अयोद्धा-इव, दुः-मदः, आ, हि, जुह्वे, महा-वीरम्, तुवि-बाधम्, ऋजीषम्।

न, अतारीत्, अस्य, सम्-ऋतिम्, वधानाम्, सम्, रुजानाः, पिपिषे, इन्द्रशत्रुः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रार्थ—(दुः-मदः अयोद्धा-इव हि महा-वीरम् तुवि-बाधम् ऋजीषम् आ जुह्वे) मदमस्त [तम् आपः] न लड़नेवालों की भाँति निश्चय से महान् वीर को वध करनेवाले को समीप चारों ओर से आह्वान करता है।

(अस्य वधानाम् न अतारीत् इन्द्र-शत्रुः सम्-ऋतिम् रुजानाः सम् पिपिषे) इन संहार हुओं का पार न पा सकने पर इन्द्र का शत्रु (वृत्र) उन (संहार हुओं में) सम्मिलित हो गया। इन्द्र ने टुकड़े-टुकड़े कर पीस डाला।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि इन्द्र ने जब अपने तेज वज्र से वृत्रों का संहार किया तो शेष आपः उन संहार किए को पार नहीं कर सके। वे संहार कियों में सम्मिलित हो गए। इन्द्र ने उनको पीस डाला।

यह बड़े-बड़े परिमण्डलों से छोटे-छोटे परिमण्डल बनने का वर्णन है।

अगला मंत्र है—

अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रमाऽस्य वज्रमधि सानौ जघान।
वृष्णो वध्रिः प्रतिमानं बुभूषन् पुरुत्रा वृत्रो अशयद् व्यस्तः॥

(ऋ० १-३२-७)

पदच्छेद—अपात्, अहस्तः, अपृतन्यत्, इन्द्रम्, आ, अस्य, वज्रम्, अधि, सानौ, जघान।

वृष्णः, वध्रिः, प्रति-मानम्, बुभूषन्, पुरु-त्रा, वृत्रः, अशयत्, वि-अस्तः॥

मन्त्रार्थ—(अपात् अहस्तः इन्द्रम् अपृतन्यत् अस्य सानौ अधि वज्रम् आ जघान) तमस् आपः बिना हाथ-पाँव के इन्द्र को युद्ध के लिए ललकारता है। इसका (इन्द्र का) वज्र चारों ओर से चोटी पर प्रहार करता है।

(वध्रिः वृष्णः प्रतिमानम् बुभूषन् वृत्रः पुरु-त्रा वि-अस्तः अशयत्) पुरुषत्व-हीन [निस्तेज आपः] शक्तिशाली [इन्द्र] की नकल उतारने की इच्छा करता है; वह बहुत स्थानों पर नीचे लेट जाता है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि तमस् आपः [भूतादि अहंकार] इन्द्र की भाँति होने की इच्छा करते हैं, परन्तु उससे पराजित और टुकड़े-टुकड़े हो शान्त हो जाते हैं।

वही बड़े-बड़े द्रव्यमान वाले परिमण्डलों से छोटे-छोटे द्रव्यमान बनने का वृत्तान्त है।

अगला मंत्र है—

नदं न भिन्नममुया शयानं मनो रुहाणा अति यन्त्यापः।
याश्चिद् वृत्रो महिना पर्यतिष्ठत् तासामहिः पत्सुतःशीर्बभूव॥

(ऋ० १-३२-८)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—नदम्, न, भिन्नम्, अमुया, शयानम्, मनः, रुहाणाः, अति, यन्ति आपः।

याः चित्, वृत्रः, महिना, परि-अतिष्ठत्, तासाम्, अहिः पत्सुतः-शीः, बभूव॥

मन्त्रार्थ—(अमुया शयानम् आपः मनः रुहाणाः यन्ति अति भिन्नम् नदम् न) इस पर सोए हुए को, मन [अति वेग] से उठनेवाले आपः अतिक्रमण कर जाते हैं, टूटे [किनारोंवाली] नदियों की भाँति।

(याः चित् वृत्रः महिना परि-अतिष्ठत् अहिः तासाम् पत्सुतः-शीः बभूव) और जिनको अपनी महिमा से वृत्र चारों ओर से घेरकर ठहरे हुए हैं, उनके पाँव में कुण्डली हो जाते हैं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि आपः जो इन्द्र का प्रतीक है—यहाँ तेजस् अहंकारों से अभिप्राय है—वे मन की गति से भी अधिक वेग से चलते हैं; वे सोए हुए वृत्रों, वैकारिक अहंकारों (प्रोटोन) का अतिक्रमण कर जाते हैं, ऐसे जैसे नदी किनारे तोड़कर बह जाती है। ये आपः, तेजस् अहंकार, उन पर प्रहार करते हैं जिनको वृत्र (प्रोटोन) घेरे हुए हैं। वे इनके पाँव में, अर्थात् इनके अधीन कुण्डली मारे पड़े हैं। अगला मंत्र है—

Gurukula Kangri Library
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar
167987

नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो अस्या अव वधर्जभार।
उत्तरा सूरधरः पुत्र आसीद् दानुः शये सहवत्सा न धेनुः॥

(ऋ० १-३२-९)

पदच्छेद—नीचा-वयाः, अभवत्, वृत्र-पुत्रा, इन्द्रः, अस्याः, अव, वधः जभार।

उत्-तरा, सूः, अधरः, पुत्रः, आसीत् दानुः, शये, सह-वत्सा, न, धेनुः॥

मन्त्रार्थ—(वृत्र-पुत्रा नीचा-वया अभवत् इन्द्रः अस्याः अव वधः जभार) पुत्र है वृत्र जिसका, वह नीचे की गतिवाला हो गया। इन्द्र ने उसके (वृत्र की माँ के) नीचे से घातक प्रहार किया।

(उत्-तरा सूः अधरः पुत्रः आसीत् दानुः शये सह-वत्सा न धेनुः) ऊपर माता, नीचे पुत्र था। दानवी पुत्र के साथ सोई हुई थी जैसे गाय बछड़े के साथ।

वृत्र की माँ नीचे की गतिवाली हो गई और इन्द्र ने उसके नीचे प्रहार किया। ऊपर माँ, नीचे पुत्र था [दानवी]। वृत्र की माँ [पुत्र] वृत्र के साथ ऐसे सोई हुई थी जैसे गाय बछड़े के साथ सोती है।

वृत्र का अभिप्राय है ढाँपनेवाला। यहाँ अभिप्राय है धन-आपः की कुण्डली। यह अपने में ढाँपे हुए थी (तमस् आपः को)। बादल ढाँपनेवालों की माँ—कुण्डली—से अभिप्राय है। यह नीचे झुक गई तो इन्द्र (इन्द्र से अभिप्राय है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऋण-आपः) काष्ठानां ने कुण्डली के नीचे प्रहार किया।

माँ [कुण्डली] ऊपर थी, तमस्-आपः नीचे थे। कुण्डली तमस् की रक्षा कर रही थी जैसे गाय बछड़े की रक्षा करती है। यह परिमण्डल (ऐटम) का चित्र है और उस समय का वर्णन है जब बड़े-बड़े द्रव्यमान वाले परिमण्डल छोटे द्रव्यमान वाले बनाए गए। सूक्त का अगला मंत्र है—

अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानां काष्ठानां मध्ये निहितं शरीरम्।
वृत्रस्य निण्यं वि चरन्त्यापो दीर्घं तम आशयदिन्द्रशत्रुः॥

(ऋ० १-३२-१०)

पदच्छेद—अतिष्ठन्तीनाम्, अग्नि-वेशनानाम्, काष्ठानाम्, मध्ये, नि-हितम्, शरीरम्।

वृत्रस्य, निण्यम्, वि, चरन्ति, आपः, दीर्घम्, तमः, आ, अशयत्, इन्द्र-शत्रुः॥

मन्त्रार्थ—(काष्ठानाम्, अतिष्ठन्तीनाम् अति-वेशनानाम् मध्ये शरीरम् नि-हितम्) सीमावर्ती आपः अस्थिर मार्गों पर चलनेवाले हैं और मध्य में शरीर (Core) स्थिर है।

(इन्द्र-शत्रुः वृत्रस्य निण्यम् आपः विचरन्ति तमः दीर्घम् आ अशयत्) इन्द्र के विरोधी [आवेशवाले] के नीचे अकिंचन (आवेश-रहित) आपः ठहरे हुए हैं, जैसे गाय के नीचे बछड़ा सोया रहता है, घोर अन्धकार में।

इस सूक्त में मंत्र-संख्या १ से ९ तक आपः का वृत्तान्त लिखा है। उनके परस्पर इकट्ठा होकर परिमण्डल बनाने की प्रक्रिया है। और अब मंत्र-संख्या दस में परिमण्डल का चित्र खींच दिया है। यह इस प्रकार बनता है—

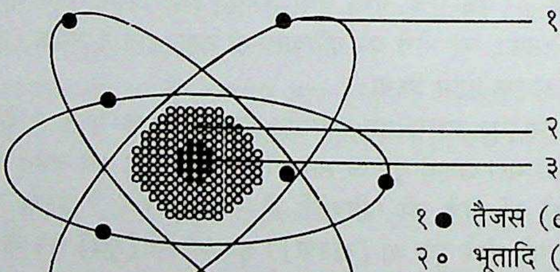

इसी सूक्त के अगले मंत्रों में परिमण्डल का कुछ अधिक वर्णन किया गया है। वह इस प्रकार है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन् निरुद्धा आपः पणिनेव गावः।
अपां बिलमपिहितं यदासीद् वृत्रं जघन्वाँ अप तद् ववार॥

(ऋ० १-३२-११)

पदच्छेद—दास-पत्नीः, अहि-गोपाः, अतिष्ठन्, नि-रुद्धाः, आपः, पणिना-इव, गावः।

अपाम्, बिलम्, अपि-हितम्, यत्, आसीत्, वृत्रम्, जघन्वान्, अप, तत् ववार॥

मन्त्रार्थ—(दास-पत्नीः अहि-गोपाः आपः निरुद्धाः अतिष्ठन्) शरण में आए हुओं की रक्षा करनेवाली अहि [आपः का छाजन] रुका हुआ [ठहरा है]

(पणिना-इव गावः) जैसे गऊएँ रोक रखते हैं (उनके रक्षक)।

(यत् अपाम् बिलम् अपि-हितम् आसीत् तत् वृत्रम् जघन्वान् अप तत् ववार) जब आपः को बिल में बन्द किया हुआ था तब (इन्द्र ने) वृत्र को मारा, आवेश-रहित किया [तो वे] बिल के भीतर के आपः (बह निकले)।

यह कहा है कि वृत्र तमोभूत आपः को रोके हुए होता है। इन्द्र उनको चोट पहुँचाकर निस्तेज करता है तो तमोभूत आपः बहकर बाहर चले जाते हैं।

वर्तमान वैज्ञानिक जानते हैं कि न्यूट्रॉन (सोम) परिमण्डल (ऐटम) में से निकलते हैं तो ऐटम का द्रव्यमान कम हो जाता है और कम द्रव्यमान के परिमण्डल बन जाते हैं। अगला मंत्र है—

अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र सृके यत्त्वा प्रत्यहन् देव एकः।
अजयो गा अजयः शूर सोममवासृजः सर्तवे सप्त सिन्धून्॥

(ऋ० १-३२-१२)

पदच्छेद—अश्व्यः, वारः, अभवः, तत्, इन्द्र, सृके, यत्, त्वा, प्रति-अहन् देवः, एकः,।

अजयः, गाः, अजयः, शूर, सोमम्, अव, असृजः, सर्तवे, सप्त, सिन्धून्॥

मन्त्रार्थ—(सृके इन्द्रः देवः एकः यत् त्वा प्रति अहन् तत् अश्व्यः वारः अभवः) हे गति में आए हुए इन्द्र! जब एक देव [परमात्मा] ने तुमको चोट पहुँचाई, तब तुम अश्व का वारा (तबेला) हो गए।

(शूर अजयः गाः अजयः सोमम् सप्त सिन्धून सर्त्तवे असृजः) हे शूर! बलवान्! तुम किरणों को (तेज की रश्मियों को) जीत गए और सोमों की सात [बहुत] नदियाँ बहने लगीं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि जब परमात्मा के तेज ने परमाणु पर लगाम लगाई तो इन्द्र ऐसे हो गया मानो वह अश्व (परमात्मा के 'तेज') के बाड़े

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अहाते) में पहुँच गया हो।

परन्तु इस वीर ने लगामों पर विजय प्राप्त की और सोम पर भी विजय प्राप्त की और परमाणु अनेक धाराओं में गतिशील हो गए। इन्द्र स्वयं भी गतिशील हो गया।[१]

अगला मंत्र है—

नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध न यां मिहमकिरद्ध्रादुनिं च।
इन्द्रश्च यद् युयुधाते अहिश्चोतापरीभ्यो मघवा वि जिग्ये॥

(ऋ० १-३२-१३)

पदच्छेद—न अस्मै, विद्युत्, न तन्यतुः सिसेध, न याम्, मिहम्, अकिरत् ह्रादुनिम्, च।

इन्द्रः, च, यत्, युयुधाते, अहिः, च, उत, अपरीभ्यः, मघ-वा, वि, जिग्ये।

मन्त्रार्थ—(अस्मै न विद्युत् न तन्यतुः सिसेध न याम् मिहम् अकिरत् ह्रादुनिम् च) इसके लिए, न विद्युत्, न प्रकाश का फैलाव प्राप्त होता है, न वर्षा होती है, न बादल का गर्जन होता है।

(यत् इन्द्रः युयुधाते च अहिः उत् अपरीभ्यः मघवा वि जिग्ये) जब इन्द्र और अहिः (आपः की कुण्डली) दूसरों के लिए संघर्ष करते हैं, इन्द्र जीत जाता है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि जब दूसरों (बिल में उपस्थित तमोभूत आपः) के लिए इन्द्र और अहि में संघर्ष हो रहा होता है, इन्द्र तम-आपः को निकालना चाहता है और धन-आपः उसको रोकने में लगे होते हैं, तब इन्द्र की जीत होती है और तब न विद्युत् चमकती है, न फैलाव होता है, न वर्षा होती है, न बादल गरजते हैं और सब संघर्ष शान्ति से हो जाता है। आगे कहा है—

अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि यत् ते जघ्नुषो भीरगच्छत्।
नव च यन् नवतिं च स्रवन्तीः श्येनो न भीतो अतरो रजांसि॥

(ऋ० १-३२-१४)

पदच्छेद—अहेः, यातारम्, कम्, अपश्यः, इन्द्र, हृदि, यत्, ते जघ्नुषः, भीः, अगच्छत्।

नव, च, यत्, नवतिम्, च, स्रवन्तीः, श्येनः, नः भीतः, अतरः, रजांसि।

मंत्रार्थ—(इन्द्रः ते जघ्नुषः यत् हृदि भीः अगच्छत् अहेः यातारम् कम् अपश्यः) हे इन्द्र! तेरे हनन करनेवाले [कर्म] का जो हृदय में भय उत्पन्न होता है, [वह] अहि-कुण्डली की यात्रा को, किसने नहीं देखा है? [अर्थात् सबने देखा है।]

---

१. देखें ऋ० १-१६३-२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत् च नव नवतिम् रजांसि स्रवन्तीः अतरः श्येनः भीतः न) और जो निन्यान्वे (अनेक) शक्ति की किरणों को पार कर जाता है, जैसे डरा हुआ श्येन (बाज पक्षी) शीघ्र कठिनाइयों को उड़कर पार कर लेता है।

मंत्र का अभिप्राय है कि इन्द्र जब परमाणु से बाहर निकला था, वह तेज की अनेक रश्मियों से घिरा हुआ था और उसी इन्द्र ने अपने हनन करनेवाले कर्म से भय उत्पन्न किया था। इस यात्रा को कौन नहीं देखता है? अर्थात् इनके काम सब देखते हैं।

अगला मंत्र है—

इन्द्रो यातोऽवसितस्य राजा शमस्य स शृङ्गिणो वज्रबाहुः।
सेदु राजा क्षयति चर्षणीनामरान् न नेमिः परि ता बभूव॥

(ऋ० १-३२-१५)

पदच्छेद—इन्द्रः यातः, अव-सितस्य, राजा, शमस्य, च, शृङ्गिणः, वज्र-बाहुः।

सः, इत्, उ, राजा, क्षयति, चर्षणीनाम्, अरान्, न, नेमिः, परिः ता, बभूव॥

मन्त्रार्थ—(वज्र-बाहुः इन्द्रः यातः अव-सितस्य स शृङ्गिणः) शक्तिशाली इन्द्र (उपर के मंत्रों में कहे कर्म करनेवाला) गतिशीलों पर और स्थावरों पर, शान्त स्वभाववालों पर और विरोधियों पर (राजा के समान) शासन करता है।

(सः इत् उं चर्षणीनाम् ता परि बभूव राजा क्षयति अरान् न नेमि) वह गतिशीलों पर राजा बन जाता है जैसे नेमि अरों पर होती है।

इस सूक्त में परिमण्डल (ऐटम) के निर्माण का वर्णन किया गया है। इन्द्र की शक्ति से सीमावर्ती आपः मध्य में आपाओं के बड़े-बड़े गुच्छों के चारों ओर घूमने लगते हैं।

यह इन्द्र के प्रथम कार्यों का वर्णन है। इसकी पूर्ण प्रक्रिया इस प्रकार है—

१. इन्द्र की उत्पत्ति अनादि अग्नि से है। वह अग्नि जब प्रकृति के परमाणु पर अधिष्ठित हुई तो परमाणु में छुपी शक्ति प्रकट हो गई। वह शक्ति—इन्द्र है।

२. यह त्रिगुणात्मक शक्ति है। इसमें सत्त्व, रजस्, तमस्, तीन शक्तियाँ एक-दूसरे को संतुलित किए हुए थीं। प्रत्येक परमाणु की शक्तियाँ भीतर ही परस्पर संतुलित थीं। यह प्रकृति साम्यावस्था में मानी जाती है।

३. बाहर निकलने पर परमाणुओं में परस्पर आकर्षण-विकर्षण होने लगता है। इससे परमाणुओं के संयोग बनते हैं। इनको निबन्धन कहते हैं। वेद (ऋ० १-१६३-३) में इनको आपः कहा है। ये ती। प्रकार के हैं। एक वह जिन पर शेष शक्ति ऋण (रजस्) होती है; दूसरे, जिन पर शेष शक्ति धन (सत्त्व)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

होती है; और तीसरे वे आपः जिन पर शेष शक्ति तमस् (शून्य) होती है। यह हम चित्र[1] द्वारा बता चुके हैं।

४. इतना कुछ होने के उपरान्त इन्द्र का कार्य आरम्भ होता है। यह कार्य तीनों प्रकार की सत्त्व, रजस् और तमस् शक्तियों का कहाता है। परन्तु इन मंत्रों से पता चलता है कि इन तीनों में मुख्य कार्य करनेवाले वे आपः ही हैं जो अपने पर शेष (—) ऋण (रजस् शक्ति) रखते हैं अर्थात् जो आपः तेजस् आपः (इलेक्ट्रॉन्स) कहे जाते हैं।

५. यद्यपि इन्द्र तेजस्, वैकारिक और तमस्, तीनों के संयोग को कहते हैं, परन्तु कार्य करनेवाले मुख्य तेजस् ही होते हैं। इस कारण इन्द्र से अभिप्राय तेजस् अहंकारों से ही लिया जाता है। इन्हें ही इन्द्र का वज्र कहते हैं। इनके कारण ही इन्द्र को वज्री कहा है।

६. वैकारिक अहंकार (प्रोटोन) तो विरोध करनेवाले ही माने जाते हैं। ये तमस् (न्यूट्रॉन) पर छाए होते हैं, इस कारण इनको वृत्र कहा है। वृत्र शब्द 'वृ' धातु से व्युत्पन्न है जिसका अर्थ है—'आच्छादन'।

वर्तमान विज्ञान में इलेक्ट्रॉन को ऋण (—) विद्युत्-धारा माना जाता है, और प्रोट्रोन को धन (—) विद्युत्-धारा। यह ऋण और धन तो किसी ने पहले नाम रख दिए हैं। वस्तुस्थिति यह है कि मुख्य कार्य करनेवाली ऋण (—) इलेक्ट्रॉन की धारा ही है। यही इन्द्र वज्र के नाम से विख्यात है।

७. यह वज्र ही कार्य करता है। इसका प्रथम कार्य यह बताया है कि धन-विद्युत्-आपः के बड़े-बड़े परमाणु-समूहों का तोड़कर टुकड़े-टुकड़े करता है।

८. इन धन-आपः के समूहों में तमस्-आपः निष्क्रिय होने के कारण फँस जाते हैं। इन्द्र का यह भी प्रथम कार्य है कि इन तमस्-आपः को इन धन-आपः से जो वृत्र कहे गए हैं, स्वतन्त्र कर दे।

९. जब तमस्-आपः वृत्रों से छुटकारा पाते हैं तो छोटे-छोटे समूहों में हो जाते हैं। इस प्रकार भिन्न-भिन्न द्रव्यमान के आपः का संयोग बनता है।

इन आपः के संयोगों को वेद में अहिः कहा है। ये परमाणु-गुच्छों के रूप में पड़े होते हैं। इस कारण इनको कुण्डली का नाम दिया जाता है। साँप की कुण्डली की भाँति होने से अहि कहे गए हैं।

१०. जब इन आपः के छोटे-बड़े संयोग बन जाते हैं तो इन संयोगों को परिमण्डल (ऐटम्स) कहते हैं। इनमें तेजस्-आपः सीमा पर, विभिन्न मार्गों पर

---

१. देखें पुस्तक पृष्ठ ४६ से ५०

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तीव्र गति में चक्राकार गति में चलते हैं। इनके बीच वृत्र (सात्त्विक-धन-आवेश) आप: कुण्डली मारे बैठे होते हैं, और इनके भीतर तमस् (आवेश-रहित) कैद होते हैं। इसको भी हमने इस अध्याय में चित्रवत् प्रकट करने का यत्न किया है।

११. ऐसे परिमण्डल (ऐटम्स) बहुत बड़ी संख्या में अन्तरिक्ष में भ्रमण कर रहे कहे गए हैं।

१२. एक हिरण्यगर्भ (नेबुला) में जब परिमण्डल चर्खी की भाँति घूमने लगते हैं तो फिर नक्षत्रादि की रचना होने लगती है।

१३. यह कहा है कि इस समय हिरण्यगर्भ ऐसे चमकने लगता है, जैसे ऊषाकाल में आकाश चमकने लगता है। यह आप: के परस्पर आकर्षण से होता है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थ अध्याय

कॉस्मोगॉनी

जो कुछ हमने द्वितीय और तृतीय अध्याय में वर्णन किया है, वह आधुनिक विज्ञान में कॉस्मोगॉनी कहाता है। हम कॉस्मोगॉनी विज्ञान के अर्थ दूसरे अध्याय में समझा आए हैं। सृष्टि की उत्पत्ति की प्रक्रिया का यह नाम है।

इस विज्ञान में यह समझा जाता है कि वर्तमान जगत् का आरम्भ एक बहुत बड़े विस्फोट से हुआ। यह विस्फोट किसमें हुआ, उसके विषय में आधुनिक विज्ञान कुछ नहीं बताता। वह तो यह मानता है कि मैटर अर्थात् उपादान बना तो है, परन्तु वह उपादान शून्य से उत्पन्न हुआ है। इसके विषय में हमने 'इन्साइक्लोपीडिया ब्रिटेनिका' का प्रमाण दिया है।

वहाँ यह कहा है कि शून्य से 'मैटर' बना और वह गाढ़ा हो गया और फिर उसमें विस्फोट हुआ।

इस विषय में नवीनतम विचारक आइन्स्टीन यह मानते हैं कि देखनेवाला भी यदि देखनेवाली वस्तु की भाँति गतिशील है तो जो कुछ देखा जा रहा है, वह वास्तव में होनेवाली घटना से भिन्न होगा।

न्यूटन ने अपनी गति और जगत् के विषय में विचार बनाए थे यह समझकर कि देखनेवाला स्वयं खड़ा है। वस्तुस्थिति ऐसी नहीं है। वस्तुस्थिति यह है कि हम जो जगत् के पदार्थों की गतियों का अनुमान लगा रहे हैं, स्वयं भी चल रहे हैं। इस कारण हमारे अनुमान वैसा नहीं हो सकते जो वास्तव में हैं। वास्तव में क्या है? इसे आइन्स्टीन सापेक्षता का सिद्धान्त (थ्योरी ऑफ रिलेटिविटी) कहते हैं।

आइन्स्टीन ने एक उदाहरण दिया है कि एक छड़ की लम्बाई अथवा एक सेकण्ड का काल वास्तव में उतना नहीं जितना कि एक स्वयं भागनेवाला व्यक्ति समझता है। क्योंकि जगत् के पदार्थ भी वेग से चल रहे हैं और हम देखनेवाले भी वेग से चल रहे हैं, इस कारण वास्तविक गति अथवा वास्तविक व्यतीत काल का अनुमान ठीक नहीं लगा रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिणामस्वरूप जो कुछ भी गणना चन्द्र, तारागणों इत्यादि की न्यूटन ने लगाई थी, उन पर पुनरावलोकन की आवश्यकता है।

आइन्स्टीन ने गणित के नियमों से पुनरावलोकन किया और अन्तरिक्ष के पदार्थों की गतियों में संशोधन किया।

यह सब ठीक है। परन्तु जो परिणाम आइन्स्टीन और उसकी विचारशैली पर कार्य करनेवाले वैज्ञानिकों ने निकाले हैं, वे विचित्र अर्थात् अयुक्तिसंगत प्रतीत होते हैं।

वेद में जो हमने ऊपर कहा है, उसकी आइन्स्टीन के उक्त विचारों से उसी बात में भिन्नता है जो आइन्स्टीन और उसके अनुयायी जगत् और विश्व के विषय में लगा रहे हैं।

वे परिणाम क्या हैं ? हम उनकी ओर ही पाठकों का ध्यान आकर्षित करना चाहते हैं।

सापेक्षिक सिद्धान्त उपज है उस व्यक्ति के अनुभवों की, जो पृथिवी पर खड़ा जगत् के पदार्थों को देखकर उनकी दिशा और अन्तर को नापने का यत्न कर रहा है। वह पदार्थों की दिशा और उनके देखनेवाले से तथा उनके परस्पर अन्तर को देख, गणित के समीकरण और गुरों में बाँधना चाहता है। इस कार्य में कठिनाई अनुभव करता है, क्योंकि वह तो यह भी नहीं जानता कि पृथिवी, जिस पर वह खड़ा है और कुछ करने का यत्न कर रहा है, कितनी प्रकार की गतियों से प्रभावित है।

परन्तु वेद के अनुसार इन सब अनुभवों और अनुमानों के नाप-तोल को छोड़कर जो सर्वोपरि वस्तुस्थिति है, वह यह कि—

१. जो कुछ हम इन्द्रियों से देख रहे हैं, वह है। वह कभी आरम्भ हुआ था और एक समय उसका अन्त होगा।

२. आरम्भ होने के समय, वह स्वतः नहीं हुआ था अर्थात् आरम्भ कोई करनेवाला था। उसने इसे शून्य से आरम्भ नहीं किया था अर्थात् किसी पदार्थ से इसको आरम्भ किया था जो इसके आरम्भ होने से पहले विद्यमान था।

३. यदि इस दृश्य जगत् के आरम्भ होने से पहले कुछ था तो उससे पहले भी कुछ था अथवा नहीं ? वेद का कहना है कि रचना और विघटन अनन्तकाल से चलते आए हैं।

४. इस दृश्य जगत् के आरम्भ होने में कुछ उद्देश्य है। यह निरुद्देश्य नहीं।

'सापेक्षिक सिद्धान्त' न तो इन प्रश्नों का उत्तर देने के लिए रचा गया है, न ही वह इन प्रश्नों का उत्तर देने में समर्थ है। वह एक वेग से भागती गाड़ी में बैठे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बालक के मन में भ्रमों का प्रदर्शन है जिससे वह विचार करता है कि वह स्वयं भाग रहा है, अथवा बाहर मैदान में खड़े पेड़ भाग रहे हैं ? साथ ही वह इस भ्रम को सत्य समझने लगता है कि गाड़ी के बाहर का जगत् चक्राकार गति में घूम रहा है। उसकी गाड़ी के चारों ओर समीप के पेड़ वेग से घूमते दिखाई देते हैं। यही भ्रम है जो सापेक्षिक सिद्धान्त ने उत्पन्न कर दिए हैं।

भागती गाड़ी में बैठे बालक की भाँति वह गाड़ी से बाहर के जगत् की बनावट और जो समय व्यतीत हो रहा है, उस पर विचार कर रहा है।

इससे गाड़ी में बैठा बालक इस परिणाम पर पहुँचता है कि वह शून्य से आरम्भ होकर शून्य पर पहुँच रहा है और गणित के ऐसे समीकरणों का अनुमान कर रहा है जो भविष्य की ओर गिनने पर भी शून्य का संकेत करते हैं और पीछे की ओर गिनने पर भी शून्य की ओर संकेत करते हैं।

इन बातों को, विशेष सापेक्षिक सिद्धान्त (Special Relativity) का विचार उपस्थित करनेवाले फिलॉसोफी कहते हैं और अनुभव करते हैं कि विज्ञान और फिलॉसोफी में अन्तर बढ़ रहा है।

वेद इस विषय में स्पष्ट मत देता है कि पृथिवी पर खड़ा व्यक्ति अथवा अन्तरिक्ष में खड़ा व्यक्ति कुछ भी देखे और समझे, विश्व अर्थात् स्थान और काल तो हैं। ये अनादि और अनन्त हैं।

इस अनादि और अनन्त में एक मनस्वी, सर्वज्ञ, सर्वव्यापक अस्तित्व समय-समय पर और स्थान-स्थान पर रचना-कार्य आरम्भ करता है। उसके इस करने में उद्देश्य भी है। यह अनादि काल से होता चला आ रहा है और अनन्त काल तक होता रहेगा।

उद्देश्य है इन जगत् में विचरनेवाले असंख्य आत्म-तत्त्वों (जीवात्माओं) को सुख-लाभ कराना।

वर्तमान वैज्ञानिकों को यह सब हास्यास्पद प्रतीत होता है। परन्तु वे स्वयं भी तो नहीं जानते कि आइन्स्टीन क्या है और किसको समझा रहा है ?

यह हम ही नहीं कहते, अपितु कुछ अन्य वैज्ञानिक स्वयं इस 'विशेष सापेक्षिक' विचार को पढ़कर जानने का यत्न करते रहे हैं।

एक रॉबर्ट एम० वाल्ड (Robert M. Wald, Assistant Professor at the Enico Fermi Institute and in the Department of Physics, University of Chicago) यह कह रहे हैं—

What caused this big bang to take place? Unfortunately, this is not a question that cosmologists are equipped to answer at present. In

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

science, one is accustomed to having general laws and specific initial conditions; when the initial conditions are prescribed, the laws predict consequences. Thus, questions of causation are usually answered in terms of the initial conditions operating within physical laws. Similarly, given the present conditions of the universe, Einstein's equation predicts that the big bang must have occured. This is not a very satisfying 'explanation' of why the big bang occured, but it is really all that can be said at present.[1]

अर्थ—वह बड़ा विस्फोट किसने किया? दुर्भाग्य से इस प्रश्न का कॉस्मोलोजिस्ट अभी उत्तर देने के योग्य नहीं हैं। सायंस में एक व्यक्ति सामान्य नियम जानता है और उनके निर्धारित परिणाम, वह भी जब प्रारम्भिक परिस्थिति पहले ही बताई गई होती है, तब नियम की भविष्यवाणी कर देता है कि परिणाम इस प्रकार होंगे। कारण के विषय में प्राय: उन्हीं शब्दों में, जिनमें प्रारम्भिक नियम ज्ञात नियमों में बताते हैं, बताया जाता है। इसी प्रकार वर्तमान जगत् की अवस्था आइन्स्टीन के समीकरण (गणित-गुर) यह बताती है कि धमाका हुआ था। बस, इतना कुछ ही कहा जा सकता है। वह धमाका क्यों और कहाँ हुआ—यह वह नहीं बता सका।

इसी प्रकार आइन्स्टीन का सापेक्षिक विचार कहता है कि जगत् चारों ओर से बन्द है। यह वह गैलेक्सी के विषय में कहता है अथवा किसी अन्य के विषय में, स्पष्ट नहीं है। गैलेक्सी (आकाशगंगा) के लिए 'यूनिवर्स' शब्द उपयुक्त नहीं। यह पूर्ण विश्व का द्योतक है।

पूर्ण विश्व को वेद असीम मानता है। हाँ, यह आकाशगंगा सीमित है और एक रथ के चक्के की भाँति चक्राकार गति से घूम रही है।

इस पर यह प्रश्न उपस्थित होता है कि जो हिरण्यगर्भ (नेबुला) आकाश में चमकते हुए उड़ते दिखाई देते हैं, वे आकाशगंगा के अंग हैं, अथवा उसके बाहर हैं और वे हिरण्यगर्भ क्या नए जगत् बन रहे हैं? जगत् उसको कहते हैं जिनमें पदार्थ गतिशील होते हैं। यूनिवर्स में न चलनेवाले भी हैं।

अभी तक आधुनिक विज्ञान में आइन्स्टीन अन्तिम नाम है, और हमने उसमें और वेदमंत्र में समानता अथवा अन्तर वर्णन करने का यत्न किया है।

●

1. Science and the Future Year Book-1980; p. 94

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचम अध्याय

इन्द्र के कार्य

हमने इस खण्ड के तीसरे अध्याय में यह बताया है कि इन्द्र कहाँ से, किस प्रकार उत्पन्न हुआ और फिर उसकी वृद्धि किस प्रकार कहाँ तक हुई। अब यहाँ हम सामान्य रूप में इन्द्र के कार्यों का, जैसा वेद में कहा है, वर्णन करना चाहते हैं।

इस विषय पर वेद के कई सूक्त हैं। उनमें से एक सूक्त ही यहाँ दे रहे हैं। ऋग्वेद द्वितीय मण्डल के बारहवें सूक्त का प्रथम मंत्र है—

यो जात एव प्रथमो मनस्वान् देवो देवान् क्रतुना पर्यभूषत्।
यस्य शुष्माद् रोदसी अभ्यसेतां नृम्णस्य मह्ना स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-१)

इस पूर्ण सूक्त का देवता (विषय) है—इन्द्रः।

मंत्र का अर्थ इत्यादि हम उपोद्घात की प्रथम कण्डिका में दे आए हैं। इसका भावार्थ यह है कि इन्द्र देवताओं में सबसे पहले उत्पन्न हुआ था। यह अनेक गुणोंवाला है। इसके बल से पृथिवी और आकाश (के सब पदार्थ) डरते हैं। यह उन सबसे बलवान् है।

इन्द्र एक शक्ति है। यह प्रकृति के प्रत्येक परमाणु के भीतर विद्यमान होती है—यह भी हम बता चुके हैं। अग्नि जो परमात्मा का लिंग माना गया है, उससे निम्न स्तर की ही यह शक्ति है। इस शक्ति से व्यवहार करने का ढंग जो नहीं जानते, उनको इससे डरना चाहिए। यह अपार हानि भी पहुँचा सकती है।

आकाश में चमकनेवाली बिजली और पृथिवी पर अनेकानेक कार्य करनेवाली विद्युत्-धाराएँ ही इन्द्र हैं।

सूक्त का दूसरा मंत्र इस प्रकार है—

यः पृथिवीं व्यथमानामदृंहद् यः पर्वतान् प्रकुपिताँ अरम्णात्।
यो अन्तरिक्षं विममे वरीयो यो द्यामस्तभ्नात् स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—यः, पृथिवीम्, व्यथमानाम्, अदृंहत्, यः पर्वतान्, प्र-कुपितान्, अरम्णात्।

यः, अन्तरिक्षम्, वि-ममे, वरीयः, यः, द्याम्, अस्तभ्नात्, सः, जनास, इन्द्रः॥

मन्त्रार्थ—(यः व्यथमानाम् पृथिवीम् अदृंहत् यः प्र-कुपितान् अरम्णात्) जो चलायमान पृथिवी को सुदृढ़ करता है, जो प्रकुपित पर्वतों को स्थिर, शान्त करता है;

(यः वरीयः अन्तरिक्षम् वि-ममे यः द्याम् अस्तभ्नात् सः जनासः इन्द्रः) जो विशाल अन्तरिक्ष को रचता है और जो द्यु स्थान को स्थापित करता है, वह इन्द्र जानो।

पहले मंत्र में तो यह बताया था कि यह कल्याणकारी भी हो सकता है और भय का कारण भी हो सकता है। इस कारण इसके विषय में भली प्रकार जानकारी प्राप्त कर इसको छूना चाहिए।

इस मंत्र में कहा है कि यह पृथिवी को स्थिर करता है। पृथिवी की कई गतियाँ हैं। उन सबके होने पर भी यह पृथिवी चिरकाल से अपने मार्ग पर स्थिर है। यह इन्द्र के कारण है।

इसी प्रकार कहा है कि पर्वतों को अपने स्थान पर स्थिर करता है। इसका यह अभिप्राय है कि ज्वालामुखियों को शान्त करता है। जिस शक्ति से पृथिवी अपनी गति में स्थिर मार्ग पर चलती है, उसी शक्ति से पर्वत स्थिर होते हैं।

इसी कारण कहा है कि विशाल अन्तरिक्ष को रचनेवाला है। 'वि-ममे' का अभिप्राय है अन्तर (फासला अर्थात् दूरी) एक नक्षत्र का दूसरे से स्थिर होता है।

पंच तन्मात्रा में भू-आकर्षण एक प्रकार की तन्मात्रा है। यही यहाँ वेदमंत्र में कहा है कि भू-आकर्षण जिससे पृथिवी अपने मार्ग पर स्थिर है और जिससे पर्वत स्थिर हैं तथा जिसके कारण अन्तरिक्ष में फासले स्थिर हैं, इसी प्रकार वह इन्द्र ही है। बीच में जो है वह सब इन्द्र के कारण ही है। अभिप्राय है कि भू-आकर्षण की शक्ति इन्द्र ही है।

इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

यो हत्वाहिमरिणात् सप्त सिन्धून् यो गा उदाजदपधा बलस्य।
यो अश्मनोरन्तरग्निं जजान संवृक् समत्सु स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-३)

पदच्छेद—यः, हत्वा, अहिम्, अरिणात्, सप्त, सिन्धून्, यः, गाः, उत-आजत्, अप-धा, बलस्य।

यः, अश्मनोः, अन्तः, अग्निम्, जजान, सम्-वृक्, समत्-सु सः, जनासः इन्द्रः॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रार्थ—(यः अहिम् हत्वा सप्त सिन्धून् अरिणात्) जो कुण्डली को (आपः के समूहों को) तोड़-फोड़कर सात धाराओं में चलाता है;

(यः बलस्य अप-धा गाः उत्-आजत्) जो बल के छुपे हुए स्थान से किरणों को बाहर निकालता है;

(यः अश्मनोः अन्तः अग्निम् जजानः समत्-सु सम-वृक् सः जनासः इन्द्रः) जो दो पत्थरों के बीच से अग्नि उत्पन्न करता है, जो संघर्षों में तोड़-फोड़ कर देनेवाला है, हे लोगो! वह इन्द्र है।

यहाँ इस मंत्र में दो बातों का वर्णन है। एक तो यह कि 'अहिम्' (परमाणुओं के बड़े-बड़े निबन्धनों) को तोड़-फोड़ देने के उपरान्त, परमाणुओं को सात धाराओं में बहा देता है। यह उस समय की स्थिति का वर्णन है, जब ब्रह्माण्ड (हिरण्यगर्भ) फटा। इसी को कॉस्मोगॉनी वाले बिग बैंग (बड़ा धमाका) कहते हैं। उसमें विस्फोट करनेवाली इन्द्र शक्ति ही है। उसके बल की छुपी हुई रश्मियाँ प्रकट होती हैं। जब, जैसे मंत्र ऋ० १-३२-२० में वर्णन किया है, भारी परमाणुओं के निबन्धनों के चारों ओर हल्के निबन्धन घूमने लगते हैं तो यह इन्द्र के बल से ही है, तब उस बल से रश्मियाँ उत्पन्न होती हैं।

वर्तमान विज्ञान में माना जाता है कि जब वेग से इलेक्ट्रॉन, प्रोटोन और न्यूट्रॉन के चारों ओर घूमने लगते हैं, तब अन्तरिक्ष में एक प्रकार का तनाव उत्पन्न हो जाता है जिससे चुम्बकीय रश्मियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। यही अभिप्राय रश्मियों के उत्पन्न होने से प्रतीत होता है।

पहले यह बताया है कि भू-आकर्षण इन्द्र से ही है। अब बताया है कि चुम्बकीय शक्ति भी इन्द्र से ही है। कहा है कि जब इन्द्र निबन्धनों में विघटन कर लेता है तो ये निबन्धन पूर्ण अन्तरिक्ष में फैल जाते हैं। तब उनके कार्य से नयी रश्मियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। पंच तन्मात्रा शक्तियाँ हैं।

पत्थर के भीतर की अग्नि इन्द्र की ही है। अभिप्राय है कि चुम्बकीय पत्थर में जो चुम्बकीय शक्ति है, इसको विद्वान् लोग इन्द्र ही समझें।

सूक्त का अगला मंत्र है—

येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि यो दासं वर्णमधरं गुहाऽकः।
श्वघ्नीव यो जिगीवां लक्षमाददर्यः पुष्टानि स जनास इन्द्रः॥

(ऋ०-२-१२-४)

पदच्छेद—येन, इमा, विश्वा, च्यवना, कृतानि, यः, दासम्, वर्णम्, अधरम्, गुहा, अकः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्वघ्नी-इव, यः, जिगीवान्, लक्षम् आदत् अर्यः, पुष्टानि, सः, जनासः, इन्द्रः ॥

मन्त्रार्थ—(येन दासम् वर्णम् अधरम् गुहा अकः) जिसने दास गुणवालों को गुहा में कर दिया;

(यः अर्यः पुष्टानि अदत लक्षम् श्वघ्नी-इव जिगीवान् सः जनासः इन्द्रः) जो शत्रु के सुदृढ़ स्थान को लेता है, जो व्याध की भाँति लक्ष्यों को प्राप्त करता है, उसे इन्द्र जानो।

इस मंत्र में यह कहा है कि यह नाशवान् जगत् इन्द्र का बनाया हुआ है और वह जिस कार्य को करना चाहता है ऐसे कर लेता है जैसे व्याध निशाना बाँधकर तीर चलाता है।

जगत् के चलायमान पदार्थ नाश होनेवाले हैं। वे सब इन्द्र के बनाए हुए हैं। वह कार्य करने में सिद्ध है जैसे व्याध तीर द्वारा निशाना बाँधने में सिद्ध होता है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति घोरमुतेमाहुर्नैषो अस्तीत्येनम्।
सो अर्यः पुष्टीर्विजइवा मिनाति श्रदस्मै धत्त स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-५)

पदच्छेद—यम्, स्म, पृच्छन्ति, कुह, सः, इति, घोरम्, उत, ईम्, आहुः न, एषः, अस्ति, इति एनम्।

सः, अर्यः, पुष्टीः, विज-इव, आ, मिनाति, श्रत्, अस्मै, धत्त, सः, जनासः इन्द्रः ॥

मन्त्रार्थ—(उत् घोरम् यम् पृच्छन्ति स्म कुह सः इति एनम् आहुः स्म न अस्ति इति एनम्) और जिस घोर (भयंकर) को पूछते हैं, वह कहाँ है, इसको कहते हैं, यह नहीं है;

(सः विज-इव अर्यः पुष्टीः आ मिनाति) वह शत्रु की पुष्टियों को (सुदृढ़ स्थानों को) नाश करता है;

(श्रत् अस्मै, धत सः जनासः इन्द्रः) इसमें श्रद्धा धारण करो। हे मनुष्यो! इसे इन्द्र जानो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि यद्यपि इन्द्र दिखाई नहीं देता, फिर भी यह घोर कर्म करनेवाला एक श्रेष्ठ विजयी की भाँति तोड़-फोड़ के उपरान्त निर्माण-कार्य करने लगता है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य यो ब्रह्मणो नाधमानस्य कीरेः।
युक्तग्राव्णो योऽविता सुशिप्रः सुतसोमस्य स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-६)

पदच्छेद—यः, रध्रस्य, चोदिता, यः, कृशस्य, यः, ब्रह्मणः, नाधमानस्य, कीरेः।

युक्त, ग्राव्णः, यः, अविता, सु-शिप्रः सुत-सोमस्य, सः, जनासः, इन्द्रः॥

मन्त्रार्थ—(यः रध्रस्य कृशस्य यः नाधमानस्य कीरेः ब्रह्मणः चोदिता) जो सामर्थ्यवान् को, जो दुर्बल को, जो स्तुति करनेवाले और याचना करनेवाले को प्रेरणा देता है;

(यः सु-शिप्रः युक्त ग्राव्णः सुत-सोमस्य अविता सः जनासः इन्द्रः) जो सुन्दर मुखवाला, ग्राव्णः संयुक्त का सुत सोम का रक्षक है, हे मनुष्यो! वह इन्द्र है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि मनुष्यों में वह समर्थवानों का और शक्तिहीनों का समान रूप से रक्षा करनेवाला है। ग्राव्ण से युक्त और सुन्दर पुत्रों वाले का रक्षक है अर्थात् गृहस्थों की जो रक्षा करता है, उसे इन्द्र ही जानो।

इससे पूर्व के मंत्र में इन्द्र को अन्तरिक्ष के पदार्थों का निर्माण करनेवाला कहा है। यहाँ इस मंत्र में इसे मनुष्यमात्र की रक्षा करनेवाला कहा है।

ग्राव्ण का अर्थ है—पत्थर का सिल-बट्टा। इसका अभिप्राय है कि घर-गृहस्थीवालों का तथा सुन्दर सुखकारक सन्तानवालों का रक्षक इन्द्र ही है।

कुछ भाष्यकार इन्द्र का अर्थ परमात्मा करते हैं। हमारे मत से वे अशुद्ध अर्थ कर रहे हैं। परमात्मा चेतनस्वरूप ज्ञानवान् है। वह भले काम ही करता है। वह बुरे लोगों को दण्ड देता है और भले लोगों को पुरस्कृत करता है। चेतन की विशेषता ही यह है कि यह भले-बुरे में चुनाव करता है। परन्तु इन्द्र तो प्रकृति का अंश है। यह महान् शक्ति होते हुए भी चेतन के गुण नहीं रखता। यह कुशलता तो रखता है, परन्तु कुशलता के प्रयोग के चयन की सामर्थ्य नहीं रखता। यही इस मंत्र में बताया है। मनुष्य के कार्य (अच्छे, बुरे, सब प्रकार के) करने का सामर्थ्य इन्द्र में ही है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो यस्य ग्रामा यस्य विश्वे रथासः।
यः सूर्यं य उषसं जजान यो अपां नेता स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-७)

पदच्छेद—यस्य, अश्वासः, प्रदिशि (प्र-दिशि) यस्य, गावः, यस्य, ग्रामाः, यस्य, विश्वे, रथासः।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः, सूर्यम्, यः, उषसम्, जजान, यः, अपाम्, नेता, सः, जनासः, इन्द्रः।

मन्त्रार्थ—(यस्य प्र-दिशि अश्वासः यस्य गावः यस्य ग्रामाः यस्य विश्वे रथासः) जिसका सब दिशाओं में प्रसार है, जिसकी किरणें हैं, जिसके निवास-स्थान सम्पूर्ण रथ (नक्षत्र) हैं;

(यः सूर्यम् उषसम् जजान सः जनासः इन्द्रः) जो सूर्य को और ऊषा को उत्पन्न करनेवाला है, जो सब विद्युत्-धाराओं का अग्रणी है, हे मनुष्यो! वह इन्द्र है।

मंत्र का अभिप्राय है कि जिसके अनुशासन में अश्व (शक्ति-रश्मियाँ) गावः (प्रकाश की किरणें) ग्रामः (नक्षत्र) और सब रथ (भागते हुए नक्षत्र) हैं, जो सूर्य और ऊषा को उत्पन्न करता है, वह इन्द्र है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते परेऽवर उभया अमित्राः।
समानं चिद् रथमातस्थिऽवांसा नाना हवेते स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-८)

पदच्छेद—यम्, क्रन्दसी, संयती, विह्वयेते, परे, अवरे, उभयाः अमित्राः।
समानम्, चित्, रथम्, आतस्थि-वांसा, नाना, हवेते, सः, जनासः, इन्द्रः॥

मन्त्रार्थ—(क्रन्दसी संयती विह्वयेते परे अवरे अमित्राः उभयाः यम्) शोर मचाते हुए, परस्पर लड़ते हुए दूर और समीपस्थ शत्रुओं के समूह;

(चित् समानं रथम् आतस्थि-वांसा नाना हवेते) और समान रथ पर बैठे हुओं में से (जिसे) विविध प्रकार से पुकारते हैं, वह इन्द्र है।

इस मंत्र में यह कहा है कि युद्ध में लड़ रहे दोनों पक्ष के लोग परस्पर झगड़ते और एक-दूसरे को ललकारते हुए जब एक ही रथ पर बैठे हुओं में से जिस एक को रक्षा के लिए पुकारते हैं, वह इन्द्र है। जब दो पक्ष पराक्रम दिखा रहे हों तो दोनों पराक्रम का आह्वान करते हैं। पराक्रम ही इन्द्र है।

इस मंत्र में संयुक्त रथ पर बैठे हुओं से अभिप्राय इन्द्र और अग्नि से है। लोग इन्द्र के पराक्रम का आह्वान करते हैं, अग्नि का नहीं। अग्नि परमात्मा की शक्ति है। इन्द्र अग्नि की उपस्थिति में ही रथ पर प्रकट होता है। अग्नि के प्रभाव से ही इन्द्र परमाणुओं में प्रकट होता है। अग्नि और इन्द्र दोनों परमाणु पर आरूढ़ होते हैं तो रचना होती है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो यं युध्यमाना अवसे हवन्ते।
यो विश्वस्य प्रतिमानं बभूव यो अच्युतच्युत् स जनासः इन्द्रः।

(ऋ० २-१२-९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—यस्मात्, न, ऋते, वि-जयन्ते, जनासः, यम्, युध्यमानाः, अवसे, हवन्ते।

यः, विश्वस्य, प्रति-मानम्, बभूव, यः, अच्युत-च्युत्, सः, जनासः, इन्द्रः॥

मन्त्रार्थ—(यस्मात् ऋते जनासः न वि-जयन्ते) जिसके बिना लोग विजय प्राप्त नहीं करते;

(युध्यमानाः अवसे यम् हवन्ते) युद्ध करते हुए जिसको रक्षा के लिए पुकारते हैं,

(यः विश्वस्य प्रतिमानम् बभूव) जो बल में सबकी तुलना में बराबर होता है;

(यः अच्युतच्युत् सः जनासः इन्द्र) जो पराजित को पराजित कर देता है; हे मनुष्यो! वह इन्द्र है।

मंत्र का अभिप्राय है कि इन सब में इन्द्र की शक्ति से ही कार्य हो रहा है।

सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

यः शश्वतो मह्येनो दधानानमन्यमानाञ्छर्वा जघान।
यः शर्धते नानुददाति शृध्यां यो दस्योर्हन्ता सः जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-१०)

पदच्छेद—यः, शश्वतः, महि, एनः, दधानान्, अमन्यमानान्, शर्वा, जघान।

यः,. शर्धते, न, अनु-ददाति, शृध्याम्, यः. दस्योः, हन्ता, सः, जनासः, इन्द्रः॥

मन्त्रार्थ—(यः महि एनः दधानान् शश्वतः अमन्यमानान् शर्वा जघान) जो महान् पाप करनेवालों और निरन्तर न माननेवालों को वज्र से मार देता है;

(यः शर्द्धते शृध्याम् न अनु-ददाति, यः दस्योः हन्ता, सः जनासः इन्द्रः) जो अवज्ञा करनेवालों के लिए अवज्ञा की अनुकूलता नहीं करता, वह इन्द्र है।

शश्वतः शब्द का अर्थ किया है निरन्तर।

और 'न अनु-ददाति' अर्थात् अनुकूल व्यवहार नहीं करता।

जो अवज्ञा करते हैं इन्द्र उनकी अवज्ञा के अनुकूल नहीं करता अर्थात् विरोध करता है।

अगला मंत्र इस प्रकार है—

यः शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तं चत्वारिंश्यां शरद्यन्वविन्दत्।
ओजायमानं यो अहिं जघान दानुं शयानं स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-११)

पदच्छेद—यः, शम्बरम्, पर्वतेषु, क्षियन्तम्, चत्वारिंश्याम्, शरदि, अनु-अविन्दत्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ओजायमानम्, यः अहिम्, जघान, दानुम्, शयानम्, सः, जनासः, इन्द्रः ॥

मन्त्रार्थ—(यः पर्वतेषु क्षियन्तम् शम्बरम् चत्वारिंश्याम् शरदि अनु-अविन्दत्) जिसने चालीस वर्ष कठिनाइयों में रहते हुए शम्बर (बादल अथवा विरोध) को प्राप्त किया, विरोध किया;

(यः ओजायमानम् अहिम् शयानाम् दानुम् जघान, सः जनासः इन्द्रः) जिसने ओज से युक्त सोए हुए दानव अहि (कामना) को मार डाला, वह इन्द्र जानो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि चालीस वर्ष तक (आठ वर्ष की वयस् से ४८ वर्ष की वयस् तक गुरुकुल में अखण्ड ब्रह्मचर्य पालन करते हुए) कामनाओं को जीतकर ब्रह्मचर्य का पालन किया, उसमें शक्ति इन्द्र की ही है।

अगला मंत्र है—

यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मानवासृजत् सर्तवे सप्त सिन्धून्।
यो रौहिणमस्फुरद् वज्रबाहुर्द्यामारोहन्तं स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-१२)

पदच्छेद—यः सप्त-रश्मिः वृषभः तुविष्मान्, अव-असृजत्, सर्तवे, सप्त, सिन्धून्।

यः, रौहिणम्, अस्फुरत्, वज्र-बाहुः द्याम्, आ-रोहन्तम्, सः, जनासः, इन्द्रः ॥

मन्त्रार्थ—(यः सप्त-रश्मिः वृषभः तुविष्मान् सप्त सिन्धून् सर्त्तवे अव-सृजत्) जिस बलवान्, बुद्धिमान् सात रश्मियों ने सात धाराओं को बहने के लिए छोड़ दिया (वे सृजन कर दिए);

(यः वज्रबाहुः द्याम् आ-रोहन्तम् रौहिणम् अस्फुरत् सः जनासः इन्द्रः) जो सुदृढ़ बाहोंवाला ऊपर चढ़नेवाले को स्फुरित करता है उसे इन्द्र जानो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि इन्द्र की सात बुद्धिमान् किरणे हैं। यहाँ इन्द्र का अभिप्राय सूर्य है और उसकी सात किरणें हैं। बुद्धिमान् का अभिप्राय है कि अपना भिन्न-भिन्न कार्य करती हैं। उन किरणों को जो बहाता है अथवा सृजन करता है और उठनेवालों को ऊपर उठाता है; (अर्थ है सूर्य का उदय होना जिसके बल से होता है) वह इन्द्र है।

अगला मंत्र है—

द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते शुष्माच्चिदस्य पर्वता भयन्ते।
यः सोमपा निचितो वज्रबाहुर्यो वज्रहस्तः स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-१३)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—द्यावा, चित्, अस्मै, पृथिवी, नमेते, शुष्मात्, चित्, अस्य, पर्वताः भयन्ते।

यः सोम-पाः नि-चितः, वज्र-बाहुः, यः, वज्र-हस्तः, सः जनासः इन्द्रः।

मन्त्रार्थ—(अस्मै द्यावा पृथिवी नमेते चित् अस्य शुष्मात् पर्वता भयन्ते) जिसके लिए आकाश और पृथिवी झुक जाते हैं और जिसके बल से कठिनाइयाँ (पर्वताः) भय खाती हैं (पर्वत का अर्थ गाँठोंवाली अवस्था है);

(यः सोम-पाः नि-चितः वज्र-बाहुः यः वज्र-हस्तः सः जनासः इन्द्रः) जो विख्यात सोम पान करनेवाला है (सोम का अर्थ है परमात्मा की वह शक्ति जो सुन्दर, सुखद् पदार्थ बनाती है) उसका जिसने पान किया है अर्थात् जिसने उसको धारण किया है, जो सुदृढ़ बाहोंवाला (शक्ति की रश्मियों वाला) है, जिसके हाथ में सुदृढ़ शस्त्र है, वह इन्द्र है।

मंत्र का भावार्थ यह है कि इस जगत् के जितने सुन्दर, सुखद, प्रसन्न करनेवाले पदार्थ हैं, उनके बनाने की ईश्वरीय शक्ति सोम को जिसने पीया हुआ है अर्थात् स्वीकार किया हुआ है, वह इन्द्र है। (सोम का अर्थ हम आगे चलकर सोम देवता का वर्णन करते हुए स्पष्ट करेंगे) जिसकी शक्ति आकाश और पाताल के पदार्थों को भय से झुका देती है, वह इन्द्र है।

अगला मंत्र है—

यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तं यः शंसन्तं यः शशमानमूती।
यस्य ब्रह्म वर्द्धनं यस्य सोमो यस्येदं राधः स जनास इन्द्रः॥

(ऋ० २-१२-१४)

पदच्छेद—यः, सुन्वन्तम्, अवति, यः, पचन्तम्, यः, शंसन्तम्, यः, शशमानम्, ऊती।

यस्य, ब्रह्म, वर्धनम्, यस्य, सोमः, यस्य, इदम्, राधः, स, जनासः, इन्द्रः।

मंत्रार्थ—(यः सुन्वन्तम् यः पचन्तम् यःशंसन्तम् यः शशमानम् ऊती अवति) जो छानते हुए (शुद्ध करते हुए) की जो पकाते हुए (पदार्थों का निर्माण करते हुए) की, जो प्रशंसा करते हुए (पसन्द करते हुए) की रक्षा करता है (उसको जीवित और सक्रिय रखने के लिए यत्न करता है);

(ब्रह्म यस्य वर्धनम् इदम् सोमः यस्य राधः सः जनासः इन्द्रः) जिसकी परमात्मा वृद्धि करता है, यह (सोम) जिसका धन है, वह इन्द्र है।

मंत्र का अभिप्राय है कि जो प्रकृति को छानकर उसमें से सुन्दर पदार्थ बना-बनाकर निकालता है (छानने का अभिप्राय है सब निर्मित उपकारी पदार्थों में से व्यर्थ के पदार्थ पृथक् करता है। यह इन्द्र करता है)। सोम पीकर अर्थात्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा की शक्ति को धारण कर। लोग इन्द्र की प्रशंसा करते हैं अर्थात् इन्द्र के इस काम को पसन्द कर स्वीकार करते हैं। जो ऐसा करते हैं, इन्द्र उनकी रक्षा करता है।

परमात्मा इन्द्र को अपनी शक्ति और अधिक देता है। यह शक्ति ही इन्द्र का धन अर्थात् सामर्थ्य है।

अगला मंत्र है—

यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद् वाजं दर्दर्षि स किलासि सत्यः।
वयं त इन्द्र विश्वह प्रियासः सुवीरासो विदथमा वदेम॥

(ऋ० २-१२-१५)

पदच्छेद—यः, सुन्वते, पचते, दुध्रः, आ, चित्, वाजम्, दर्दर्षि, सः, किल, असि, सत्यः।

वयम्, ते, इन्द्र, विश्वह, प्रियासः, सु-वीरासः, विदथम्, आ, वदेम॥

मन्त्रार्थ—(यः सुन्वते पचते दुध्रः वाजम् दर्दर्षि सः किल आ चित् सत्यः असि) जो छानते हुए के लिए और पकाते हुए के लिए कठिनाई से दबानेवाले के लिए बल देता है, वह निश्चय से सत्य (परमात्मा) है।

(इन्द्र ते प्रियासः सु-वीरासः वयम् विश्वह विदथम् आ वदेम) हे इन्द्र! तेरे प्रियजन और बलपूर्वक कार्य करनेवाले हम सर्वदा आपकी स्तुति (गान) करें। 'हम' से अभिप्राय है जो इन्द्र के गुण कर्म और स्वभाव को जानते हैं, अर्थात् जो विद्युत्-विज्ञान के व्यवहार को जानते हैं। जो जानकार हैं, वे सदा इन्द्र (विद्युत्-शक्ति) की स्तुति करते हैं, उसके गुण-कर्म-स्वभाव का वर्णन करते हैं।

ऋग्वेद सूक्त २-१२ का सारांश

तीसरे अध्याय में यह बताकर कि इन्द्र की उत्पत्ति कैसे हुई, हमने इस अध्याय में यह बताने का यत्न किया है कि इन्द्र इस संसार में क्या-क्या करता है। वैसे तो इन्द्र की व्याख्या बहुत लम्बी-चौड़ी है, परन्तु इस सूक्त (ऋ० २-१२) में इन्द्र के मुख्य-मुख्य कार्य बताए हैं। वे कार्य इस प्रकार हैं—

१. इन्द्र देवताओं में सबसे प्रथम उत्पन्न हुआ। देवता प्रकृति से उत्पन्न होते हैं और प्रकृति में से दिव्य गुण और दिव्य कर्मवाला इन्द्र सबसे पहले उत्पन्न हुआ है।

यह हम बता चुके हैं कि वह अग्नि जिसका वर्णन (ऋ० १-१) में है वह उत्पन्न नहीं हुई। इसी कारण वह (अग्नि) देवता नहीं हो सकती। उसका प्रकृति के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। फिर भी उसमें भी दिव्य गुण हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

२. यह इन्द्र अन्तरिक्ष और पृथिवी के पदार्थों को बनाता है और वे इससे भय खाते हैं, अर्थात् यह उनको बनाता भी है और विनष्ट भी करता है।

३. यह पृथिवी पर सब पदार्थों को स्थिर करता है और पृथिवी को भी अपनी गति में स्थिर रखता है। यह बड़े-बड़े परिमण्डलों को बनाने में सहायता देता है और उनको तोड़कर छोटे-छोटे परिमण्डल भी बनाता है।

४. भू-आकर्षण इसके कारण ही प्रकट होता है। पत्थरों के भीतर की शक्ति (चुम्बकीय शक्ति) भी इन्द्र के कारण ही है।

५. इन दो शक्तियों (भू-आकर्षण और चुम्बकीय शक्ति) से ही पूर्ण रचित जगत् बना हुआ है। ये दोनों शक्तियाँ तब उत्पन्न होती हैं जब आपः (ऐटॉमिक पार्टिकल्स) परस्पर आकर्षण-विकर्षण से घूमते हूए परिमण्डल (ऐटम) बनाते हैं। जब भूतादि और वैकारिक अहंकारों के चारों ओर तेजस् अहंकार घूमने लगते हैं, तब ये दो शक्तियाँ सक्रिय परिमण्डलों में उत्पन्न हो जाती हैं।

६. शक्ति स्वयं दिखाई नहीं देती परन्तु यह निर्माण कर रही है। ये दोनों कार्य-जगत् में, तोड़-फोड़ और निर्माण-कार्य, निरन्तर हो रहे हैं।

७. इन्द्र बलवान् और निर्बल के शरीर में समान रूप से कार्य करता है। शरीर में दो प्रकार की शक्तियाँ कार्य करती हैं। एक प्राण कहाती है। वेद का कथन है कि वह (प्राण) शक्ति परमात्मा का तेज है। शरीर में जिससे शरीर के अवयव बनते हैं और स्थिर रहते हैं, वह दूसरी शक्ति है। यह इन्द्र की है और यह बलवान् तथा निर्बल में समान रूप से कार्य करती है।

८. सूर्य की प्रकाश-किरणें और ऊष्मा-किरणें जो सूर्य से पृथिवी पर आ रही हैं, वे इन्द्र के द्वारा ही सूर्य में उत्पन्न हुई हैं।

९. युद्ध में जो दो पक्ष लड़ रहे होते हैं तो दोनों में पौरुष और बल इन्द्र की शक्ति का फल ही है। इन्द्र और परमात्मा की शक्ति दोनों एक ही रथ पर बैठे हुए हैं। परन्तु योद्धाओं में (दोनों पक्ष) लड़नेवाले इन्द्र की ही स्तुति करते हैं। जो कोई इस रहस्य को जानता है, वह इसका प्रयोग कर इससे लाभ उठाता है। इन्द्र के साथ रथ पर बैठा हुआ दूसरा परमात्मा का तेज है। रथ से अभिप्राय शरीर है। वेदमंत्र का कथन है कि लड़नेवाले इन्द्र का ही आह्वान करते हैं, अग्नि का नहीं।

१०. जो इन्द्र की अवज्ञा करते हैं, अर्थात् इसके जो नियम हैं उनके विरुद्ध कार्य करने लगते हैं, वह (इन्द्र) उन्हें मार देता है। अवज्ञा करनेवालों के यह अनुकूल नहीं होता।

इन्द्र विद्युत् है। विद्युत् के कार्य करने के नियम हैं और उन नियमों को जानकर उनके अनुकूल कार्य करनेवालों की इन्द्र सहायता करता है, और जो उन

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नियमों का पालन नहीं करते, इन्द्र उनकी सहायता नहीं करता; प्रत्युत उनको हानि पहुँचाता है।

११. कष्ट सहन करने की सामर्थ्य भी इन्द्र के कारण ही है। जब कोई मनुष्य लम्बे काल तक ब्रह्मचर्य का पालन कर स्वाध्याय इत्यादि करता है तो यह इन्द्र के कारण ही कर सकता है।

१२. सूर्य की किरणों में इन्द्र ही कारण है। सूर्य का उदय होना और अस्त होना इन्द्र के कारण ही होता है। इसी प्रकार ऊष्मा भी इन्द्र की ही उपज है।

पृथिवी पर प्रातःकाल सूर्य उदय होने से पूर्व दिखाई देनेवाला प्रकाश और सृष्टि-रचना के समय जब ब्रह्माण्ड (नेबुला) बन जाता है तो उसमें जो प्रकाश होता है, वह भी इन्द्र की ही उपज है।

१३. जगत् का निर्माण इन्द्र करता है, परन्तु यह कार्य वह परमात्मा की शक्ति को ग्रहण करके ही कर सकता है। सोम परमात्मा की शक्ति है जिसे इन्द्र अपने में धारण कर पदार्थ को सुन्दर, सुखद् और स्वादिष्ट बनाता है।

१४. जब जगत्-रचना होती है तो उपकारी और व्यर्थ के पदार्थ दोनों बनते हैं। तब इन्द्र इनको पवित्र करता है अर्थात् वह उपयोगी को व्यर्थ के पदार्थों से पृथक् कर देता है। इसे छानना कहा जाता है। अभिप्राय है उपयोगी को अनुपयोगी से पृथक् करना।

१५. इन्द्र के स्वभाव को जाननेवाले इसके कार्य से लाभ उठाते हैं।

वर्तमान वैज्ञानिक भाषा में इन्द्र विद्युत् की शक्ति है। इसके तीन रूप हैं। एक, ऋण-आवेश को लिये हुए। इसे तेजस् (इलेक्ट्रॉन) कहा जाता है। दूसरे, धन-आवेशवाला, इसे वैकारिक (प्रोटॉन) कहा जाता है, और तीसरे को भूतादि (न्यूट्रॉन) कहा जाता है। ये तीनों ही रूप इन्द्र के हैं, परन्तु इन तीनों में ऋण-आवेश (इलेक्ट्रॉन) विशेष कार्य करता है।

वैकारिक (धन-आवेश) अहंकार प्राणी की शिराओं में कार्य करता दिखाई देता है।

१६. हिरण्यगर्भ इन्द्र की शक्ति से फटता है। इस फटने से वे सब पदार्थ जो परमाणुओं के आकर्षण-विकर्षण से परिमण्डलों के रूप से बने हैं, वे सातों अन्तरिक्षों में फैल जाते हैं। सातों अन्तरिक्षों का अभिप्राय है—पूर्ण सात सौरमण्डलों के स्थानों पर वे परिमण्डल फैल जाते हैं। जो कुछ हिरण्यगर्भ में पकता है और बनता है, वह भी इस फटने से सब हिरण्यगर्भ में फैल जाता है।

यद्यपि यह स्पष्ट रूप से नहीं कहा कि पूर्णतः आकाशगंगा में फैल जाता है, परन्तु हम समझते हैं कि अपनी गैलेक्सी, जिसे आकाशगंगा कहा जाता है,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एक ही हिरण्यगर्भ से बनी है और एक ही विस्फोट पर फैली है। यह माना जाता है कि इस आकाशगंगा में सात सौरमण्डल हैं और रथ के चक्र की भाँति वे किसी केन्द्र-बिन्दु के चारों ओर घूम रहे हैं।

उसके फटने को वर्तमान कॉस्मोगॉनी में 'बिग-बैंग' (बड़ा धमाका) कहा गया है। कॉस्मोगॉनी इस बिग-बैंग से ही आरम्भ होती है। वेद-विज्ञान इससे पहले की बात भी बताता है। अर्थात् इस बिग-बैंग का कारण।

१७. विस्फोट के उपरान्त नक्षत्र और सूर्य बन गए और नक्षत्रों के भीतर का अन्तर निश्चित हो गया और वे अपने-अपने मार्ग पर स्थिर रूप से चलने लगे।

१८. अपने सौरमण्डल में भी नक्षत्र सूर्य के चारों ओर स्थिर मार्गों पर चलते हैं। यह भी कहा है कि नक्षत्र घूमते हुए केन्द्र से दूर जाने की राह पर होते हैं। घूमनेवाले पदार्थ की इस फैलनेवाली प्रवृत्ति को 'एक्सपेन्डिग टेन्डेन्सी सेन्ट्रीपीटल फोर्स' कहा है। मंत्र में इसे विरोधी शक्ति कहते हुए बताया है कि इन्द्र की शक्ति जो उसे केन्द्राभिमुख रखती है, जिसे सेन्ट्रीफ्यूगल प्रवृत्ति कहते हैं, संतुलित कर देती है। सभी नक्षत्र अपने स्थिर मार्गों पर चल रहे हैं। कहा है कि नक्षत्रों की केन्द्रीय प्रवृत्ति पर जब अप-केन्द्रीय प्रवृत्ति विजय पा लेगी, तब प्रलय होगी।

१९. यह सेन्ट्रीपीटल (अभिकेन्द्रीय) शक्ति सूर्य में इन्द्र उत्पन्न करता है। शक्ति अरों को सुदृढ़ करती है और नक्षत्र अपने स्थिर मार्ग पर चलते रहते हैं।

२०. इन्द्र की शक्ति तो अच्छे-बुरे दोनों प्रकार के कर्म करनेवालों में कार्य कर रही है। जैसे नक्षत्रों में चक्कर काटने की शक्ति इन्द्र की है और इस शक्ति से सेन्ट्री-फ्यूगल (केन्द्र से दूर) ले-जाने की प्रवृत्ति नक्षत्र में आ जाती है। नक्षत्रों को केन्द्र से बाँध रखने (सेन्ट्रीपीटल) की प्रवृत्ति भी इन्द्र की ही दी हुई है। इसी प्रकार बुरे कर्म करनेवालों में भी इन्द्र की शक्ति है और अच्छे कर्म करनेवालों में भी शक्ति इन्द्र की ही है। परमात्मा की कृपा से ठीक समय में ठीक प्रवृत्ति ही सफल होती है।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठ अध्याय

इन्द्र के साथी

ऋग्वेद में इन्द्र के साथियों का उल्लेख मिलता है। उन साथियों का वर्णन हम इस अध्याय में करना चाहते हैं। हमने यह बताया है कि मुख्य रूप से ऋण-विद्युत् (इलेक्ट्रॉन) ही इन्द्र के कार्यों का प्रतिनिधित्व करती है। अतः इन्द्र के साथी धन-विद्युत् अर्थात् तमस् का उल्लेख भी वेद में है।

ऋग्वेद के सूक्त १-१३६ का देवता 'मित्र, वरुण' और इसी सूक्त के छठे तथा सातवें मंत्र का देवता 'अर्यमः' (सोम) है।

ये मित्र-वरुण और अर्यमः क्या हैं? इसका मंत्रों से ही पता चल जाएगा। सूक्त का पहला मंत्र इस प्रकार है—

प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्यां बृहन्नमो हव्यं मतिं
भरता मृळयद्भ्यां स्वादिष्ठं मृळयद्भ्याम्।
ता सम्राजा घृतासुती यज्ञेयज्ञ उपस्तुता।
अथैनोः क्षत्रं न कुतश्चनाधृषे देवत्वं नू चिदाधृषे॥

(ऋ० १-१३६-१)

पदच्छेद—प्र, सु, ज्येष्ठम्, नि-चिराभ्याम्, बृहत्, नमः, हव्यम्, मतिम्, भरत, मृळयत्-भ्याम्, स्वादिष्ठम्, मृळयत्-भ्याम्।

ता, सम्-राजा, घृता-आसुती, यज्ञे-यज्ञ, उप-स्तुता।

अथ, एनोः, क्षत्रम्, न, कुतः, चन, आ-धृषे, देव-त्वम्, नु, चित् आ-धृषे॥

मन्त्रार्थ—(बृहत् ज्येष्ठम् स्वादिष्ठम् नमः हव्यम् मतिम् नि-चिराभ्याम् मृळयत्-भ्याम् भरत) हे ऋत्विजो (अर्थात् देवताओ)! बहुत बड़ी स्वादिष्ट अन्न की हवि देने की बुद्धि को प्राचीन सुख-कारकों (दोनों मित्र और वरुण) के लिए धारण करो। दोनों इस कारण कि ये दोनों मंत्र के देवता हैं।

(ता सम्-राजा घृता-सुती यज्ञे-यज्ञ उप-स्तुता) वे चमकते हुए (दोनों मित्र और वरुण) घृत से सनी हुई [जैसे हवन में समिधा घी से सनी होती है] प्रत्येक

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ में (निर्माण-कार्य से) स्तुति किए हुए—

(अथ एनोः क्षत्रम् कुतः चन देव-त्वम् आ-धृषे) और इन दो (मित्र तथा वरुण) के बल और देवत्व को कहीं से भी नहीं दबाया जा सकेगा।

सूक्त का अगला मंत्र है—

अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी पन्था ऋतस्य समयंस्त
रश्मिभिश्चक्षुर्भगस्य रश्मिभिः।
द्युक्षं मित्रस्य सादनमर्यम्णो वरुणस्य च।
अथा दधाते बृहदुक्थ्यं वय उपस्तुत्यं बृहद् वयः॥

(ऋ० १-१३६-२)

पदच्छेद—अदर्शि, गातुः, उरवे, वरीयसी, पन्थाः,
ऋतस्य, सम्, अयंस्त, रश्मि-भिः, चक्षुः, भगस्य, रश्मि-भिः।
द्युक्षम्, मित्रस्य, सादनम्, अर्यम्णः, वरुणस्य, च।
अथ दधाते, बृहत्, उक्थ्यम्, वयः, उप-स्तुत्यम्, बृहत् वयः॥

मन्त्रार्थ—(गातुः वरीयसी उरवे अदर्शि ऋतस्य पन्थाः रश्मि-भिः भगस्य चक्षुः रश्मि-भिः सम् अयंस्त) फैलने की योग्यतावाली बहुत फैलती हुई दिखाई देती है। ऋतों (प्राकृतिक नियमों) के मार्ग पर शोभायमान विख्यात रश्मियों से संयुक्त हो जाते हैं।

(मित्रस्य अर्यम्णः च वरुणस्य द्युक्षम् सादनम्) मित्र, अर्यमा और वरुण का रहने का स्थान द्युलोक है।

(अथ उक्थ्यम् दधाते बृहत् वयः उपस्तुत्यम् बृहत् वयः) और कहे जाने-वाले बहुत बड़े अन्न-भण्डार से स्तुति किए जाने योग्य और दिए जाने योग्य है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि अन्न के बहुत बड़े भण्डार (प्रकृति) से जिसका स्थान द्युलोक है, मित्र वरुण और अर्यमा बन रहे हैं।

सूक्त का अगला मंत्र है—

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा
सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे।
ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती।
मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः॥

(ऋ० १-१३६-३)

पदच्छेद—ज्योतिष्मतीम्, अदितिम्, धारयत्-क्षितिम्, स्वः-वतीम्,
आ, सचेते दिवे-दिवे, जागृवांसा, दिवे-दिवे।
ज्योतिष्मत्, क्षत्रम्, आशाते, आदित्या, दानुनः पती।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मित्रः, तयोः वरुणः, यातयत्-जनः, अर्यमा, यातयत्-जनः ॥

मन्त्रार्थ—(ज्योतिष्मतीम् अदितिम् धारयत्-क्षितिम् स्वः-वतीम्) अन्तरिक्ष में ठहरी शक्तिशाली प्रकृति को (ये दोनों) धारण करते हैं।

(आ सचेते दिवे दिवे जागृवांसा दिवे दिवे) प्रतिदिन (ये दोनों) सचेत हुए-हुए प्रतिदिन सेवन करते हैं।

(ज्योतिष्मत् क्षत्रम् आदित्या दानुनः पती आशाते) अदिति (प्रकृति के दो पुत्र) तेजोमय और बल को दान में पाते हुए (उसका) भोग करते हैं।

(तयोः मित्रः वरुणः यातयत्-जनः अर्यमा यातयत्-जनः) उत्पन्न हुए दोनों—मित्र और वरुण का अर्यमा भजनेवाला है, कार्यरत करनेवाला है।

मंत्र का अभिप्राय है कि शक्तिशाली अदिति के दो पुत्र मित्र और वरुण, प्रकृति से अन्न का दान पाते रहते हैं। वे प्रकृति से बल और ओज पाते रहते हैं। उन दोनों को अर्यमा कार्य में लगाता है। किस कार्य में लगाता है?

अयं मित्राय वरुणाय शंतमः सोमो
भूत्ववपानेष्वाभगो देवो देवेष्वाभगः।
तं देवासो जुषेरत विश्वे अद्य सजोषसः।
तथा राजाना करथो यदीमह ऋतावाना यदीमहे॥

(ऋ० १-१३६-४)

पदच्छेद—अयम्, मित्राय, वरुणाय, शम्-तमः, सोमः, भूतु, अव-पानेषु, आ-भगः, देवः, देवेषु, आ-भगः।

तम्, देवासः, जुषेरत, विश्वे, अद्य, स-जोषसः।

तथा, राजाना, करथः, यत्, ईमहे, ऋत-वाना, यत्-ईमहे॥

मन्त्रार्थ—(अयम् सोमः शम्-तमः मित्राय वरुणाय भूतु अवपानेषु आ-भगः देवः देवेषु आभगः) यह सोम अत्यन्त शान्त (मित्र और वरुण के लिए) अत्यन्त सुखकारक होवे। ग्रहण किए हुए देवताओं में (जिनके लिए सोम मिला है) देव (सोम) ऐश्वर्यवान् होवे।

आ-भगः का अर्थ है चारों ओर से ऐश्वर्य लानेवाला होवे।

(तम् देवासः जुषेरत विश्वे अद्य स-जोषसः) उसको सम्पूर्ण देवतागण आज संयुक्त होकर काम में लगावें।

(तथा राजाना करथः यत् ईमहे ऋत-वाना यत् ईमहे) और (तुम दोनों) चमकते हुए जो ऋतों (प्राकृतिक नियमों) के पालन करनेवाले हो उनको हम चाहते हैं (पाने की इच्छा करते हैं)।

सोम परमात्मा की वह शक्ति है जो मित्र और वरुण को रचना-कार्य के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए मिली हुई है। वह शक्ति उनको मिलती रहे—ऐसा हम चाहते हैं, जिससे संसार सुन्दर और सुखकारक बनता रहे।

इन्द्र के प्रकरण में भी शक्ति इन्द्र को मिली कही है जो पदार्थों को सुन्दर करने के लिए है। मित्र और वरुण इन्द्र के सजग और सक्रिय अंश हैं। इस कारण यह सोम उनकी ही सहायता के लिए है।

सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

यो मित्राय वरुणायाविधज्जनोऽनर्वाणं तं
परि पातो अंहसो दाश्वांसं मर्त्तमंहसः।
तमर्यमाभि रक्षत्यृजूयन्तमनु व्रतम्।
उक्थैर्य एनोः परिभूषति व्रतं स्तोमैराभूषति व्रतम्॥ *(ऋ० १-१३६-५)*

पदच्छेद—यः, मित्राय, वरुणाय, अविधत्, जनः, अनर्वाणम्, तम्, परि, पातः, अंहसः, दाश्वांसम्, मर्तम्, अंहसः।

तम्, अर्यमा, अभि, रक्षति, ऋजु-यन्तम्, अनु-व्रतम्।

उक्थैः यः, एनोः, परि-भूषति, व्रतम्, स्तोमैः आ-भूषति, व्रतम्॥

मन्त्रार्थ—(यः जनः मित्राय वरुणाय अविधत् तम् अनर्वाणम् परिपातः अंहसः दाश्वांसम् मर्तम्) जो उत्पन्न हुए मित्र और वरुण के लिए सेवा करते हैं, उन शक्तिविहीन की रक्षा करो, उनको नष्ट होने से बचाओ।

(तम् यः उक्थैः ऋजु-यन्तम् अनु व्रतम् अर्यमा अभि रक्षति एनोः व्रतम् परिभूषति व्रतम्, स्तोमैः आ-भूषति) जो (दो) ऊपर स्तुति किए गए हैं, उनमें उसकी जो ऋजु गति से चलता है, अर्यमा रक्षा करता है और नियम का पालन करता हुआ (पदार्थ को) सुन्दर बनाता है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि अर्यमा ऊपर जो ऋजु गति से चलता है, उसकी रक्षा करता है। अर्यमा है तमस्-आपः। वे परिमण्डल के मध्य में बहुत अधिक द्रव्यमानवाले होते हैं। अर्यमा अपनी भू-आकर्षण-शक्ति से काष्ठा पर घूमनेवाले आपः को बाँधे रखता है। यह अभिकेन्द्रीय शक्ति से होता है।

अगला मंत्र है—

नमो दिवे बृहते रोदसीभ्यां मित्राय वोचं
वरुणाय मीळहुषे सुमृळीकाय मीळहुषे।
इन्द्रमग्निमुप स्तुहि द्युक्षमर्यमणं भगम्।
ज्योग्जीवन्तः प्रजया सचेमहि सोमस्योती सचेमहि॥ *(ऋ० १-१३६-६)*

पदच्छेद—नमः, दिवे, बृहते, रोदसीभ्याम्, मित्राय, वोचम्, वरुणाय, मीळहुषे, सु-मृळीकाय, मीळहुषे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इन्द्रम्, अग्निम्, उप, स्तुहि, द्युक्षम्, अर्यमणम्, भगम्।
ज्योक्, जीवन्तः, प्र-जया, सचेमहि, सोमस्य, ऊती, सचेमहि॥

मन्त्रार्थ—(रोदसीभ्याम् मित्राय वरुणाय बृहत् दिवे मीळहुषे सु-मृळीकाय नमः वोचम् मीळहुषे) पृथिवी और आकाश के लिए, मित्र और वरुण के लिए, महान् देवों के लिए सुख के भोग को सुखपूर्वक नमस्कार करता है—

(कौन नमस्कार करता है ? ऋषि—मंत्र का प्रवक्ता।)

(इन्द्रम् अग्निम् द्युक्षम् अर्यमणम् भगम् उप स्तुहि) अग्नि, इन्द्र, द्युलोक, अर्यमा और ऐश्वर्यवान् की स्तुति की जाती है।

(ज्योक् जीवन्तः प्र-जया सचेमहि सोमस्य ऊती सचेमहि) जो दीर्घकाल तक प्रजाओं को जीवित रखते हैं, उनकी मैं स्तुति करता हूँ।

अगला मंत्र है—

ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो मंसीमहि स्वयशसो मरुद्भिः।
अग्निर्मित्रो वरुणः शर्म यंसन् तदश्याम मघवानो वयं च॥

(ऋ० १-१३६-७)

पदच्छेद—ऊती, देवानाम्, वयम्, इन्द्र-वन्तः, मंसीमहि, स्व-यशसः, मरुत्-भिः ?

अग्निः, मित्रः, वरुणः शर्म, यंसन्, तत्, अश्याम, मघ-वानः वयम्, च॥

मन्त्रार्थ—वयम् इन्द्र-वन्तः देवानाम् ऊती मंसीमहि स्व-यशसः मरुत्-भिः) हम इन्द्रवान् (इन्द्र-शक्ति का ज्ञान रखनेवाले) अपने-आप को देवताओं की रक्षा से मरुतों द्वारा सुख और यशवाला मानें।

(अग्निः मित्रः वरुणः शर्म यंसन् वयं मघवानः च तत् अश्याम) अग्नि, मित्र और वरुण सुख देवें। हम धनवान् और ऐश्वर्यवान् उसका भोग करें।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि इन्द्र की शक्ति (विद्युत्) को प्राप्त कर हम देवताओं से सुख और ऐश्वर्य प्राप्त करें। देवता है अग्नि (जातवेदः-अग्नि)। मित्र-वरुण हमारे सुख को सम्पन्न करें। हम धन और ऐश्वर्य प्राप्त करें। मरुतों द्वारा (संसार के पदार्थों द्वारा। मरुत हैं अणु। वे ही सब पदार्थों को बनाते हैं) हम धन और ऐश्वर्य का भोग करें।

इन मंत्रों के पढ़ने से यही समझ में आता है कि ऋषि विद्युत् के गुणों, कार्यों को जानता था और उसने मनुष्यों को आदेश दिया है कि वह इन्द्र-विद्युत् का प्रयोग कर धन ऐश्वर्य प्राप्त करें।

इस सूक्त में पहले यह बताया है कि अदिति से ही इन्द्र और उसके तीन साथी मित्र, वरुण और अर्यमा बनते हैं। यह भी बताया है कि अर्यमा प्रकृति के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निबन्धनों का भण्डार है। ज्यों-ज्यों मित्र और वरुण व्यय होते जाते हैं, अर्यमा उनकी कमी पूर्ण करते जाते हैं।

यहाँ यह ध्यान देने योग्य है कि इस सूक्त के मंत्र, १,२, ३, ४, ५ का देवता मित्र और वरुण कहा है और मंत्र-संख्या ६ तथा ७ का देवता अर्यमा कहा है।

एक अन्य सूक्त (ऋ० १-३२) में बताया है कि परिमण्डल में मित्र सीमा पर बदलते मार्गों पर गतिशील हैं, शरीर (ऐटम के कोर) में अर्यमा को अपने भीतर ऐसे रोके हुए हैं जैसे स्वामी गौओं को रोक छोड़ता है।

ये अर्यमा परिमण्डल का द्रव्यमान होते हैं और जब वृत्र अर्थात् प्रोटोन व्यय होते हैं तो तमस् (न्यूट्रॉन) अर्थात् अर्यमा उनको अपना द्रव्यमान प्रदान करते हैं।

शक्ति का बहाव तो चल पड़ता है, परन्तु परिमण्डल का द्रव्यमान घटता जाता है। परिमण्डल (ऐटम) के न्यून द्रव्यमान वाले परिमण्डल बनते जाते हैं। यह परिमण्डल (ऐटम) के विघटन का वृत्तान्त है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तम् अध्याय

इन्द्र और वायु

वायु के विषय में यास्क कहता है—

अथातो मध्यस्थाना देवताः। तासां वायुः प्रथमागामी भवति। वायुर्वा तेः। वेतेर्वा स्याद् गतिकर्मणः। एतेरिति स्थौलाष्ठीविः अनर्थको वकारः। तस्यैषा भवति॥ *(यास्क० १०-१)*

अर्थ है—अब मध्य स्थानवाले देवता कहते हैं। उनमें वायु प्रथम है। वायु वाति से अथवा वेति से (गति अर्थवाले से) ऐसा स्थौलाष्ठीवि कहता है। 'इ' गतो धातु से वायु शब्द बना है। व अक्षर निरर्थक है। इससे ऐति और व लगने से वेति गतिवाली वायु का अर्थ है।

इसका अभिप्राय यह है कि वायु का कर्म गति है। वायु गति के अर्थवाली है। प्रश्न यह उपस्थित होता है कि वह वायुः जिससे हम साँस लेते हैं, उससे अभिप्राय है, अथवा वायुः से कुछ अन्य का अभिप्राय है? यास्क और स्थौलाष्ठीवि के मत से वेद में वायुः का अभिप्राय साँस लेनेवाली वायु से नहीं है।

गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति को वायुः कहते हैं।

वेद में वायु गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति के अर्थ में है। जहाँ वायु को देवता के रूप में स्मरण किया गया है, वायु गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति के अर्थ में है। यहाँ हम देवताओं का वर्णन कर रहे हैं। इस कारण वायु गति-उत्पादक शक्ति का ही वर्णन हो रहा है।

वायु की उत्पत्ति अर्थात् गति उत्पन्न करनेवाली शक्ति की उत्पत्ति के विषय में ऋग्वेद में कहा है—

इन्द्रवायू इमे सुता उप प्रयोभिरा गतम्।
इन्दवो वामुशन्ति हि॥ *(ऋ० १-२-४)*

इस मंत्र का देवता है—इन्द्रवायू। मंत्र में इन्द्र-वायु का सम्बन्ध वर्णन किया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—इन्द्रवायू, इमे, सुता:, उप, प्रय:-भि: आ गतम्।
इन्दव:, वाम्, उशन्ति, हि॥

मन्त्रार्थ—(इन्द्रवायू इमे सुता: प्रय:-भि: उप आ गतम्) हे इन्द्र और वायु! उत्पन्न इन अन्नों के द्वारा (अपने उपादान कारणों सहित) आओ।

(इन्द्रव: हि वाम् उशन्ति) इन्द्र की शक्तियाँ उन दोनों को चाहती (आकर्षित करती) हैं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि जब परमाणु के भीतर की शक्ति इन्द्र परमाणु की असाम्यावस्था होने के कारण प्रकट हुई तो ये तीन प्रकार की होने से परस्पर अपने स्वाभाविक गुण से आकर्षण करने लगी।

परमाणु-अन्तर्गत इन्द्र त्रिगुणात्मक कहा गया है। एक गुण है तैजस्; इसे ऋण-विद्युत् कहते हैं। दूसरा गुण है सत्त्व; इसे धन-विद्युत् कहते हैं। तीसरा है तमस्; इसे शून्य (अर्थात् 0 शक्ति) कहते हैं।

ये परस्पर आकर्षण-अपाकर्षण करने लगते हैं। इस प्रक्रिया से परमाणुओं में गति उत्पन्न होती है। अत: ऋण-विद्युत् धन और शून्य की ओर आकर्षित होती है। विकर्षण करने की शक्ति ही वायु है। इसी से गति उत्पन्न होती है।

मंत्र में 'सुता:' का अर्थ है बननेवाले पदार्थ। यहाँ परमाणु की साम्यावस्था भंग होने पर आवेश वाले परमाणु से अभिप्राय है—'महत्'। महत् का प्रत्येक परमाणु तीन प्रकार के आवेश रखता है और जब एक परमाणु का एक आवेश दूसरे के सामने आता है तो दूसरे परमाणु को आकर्षित करने लगता है। इससे गति उत्पन्न होती है। अभिप्राय यह है कि आकर्षण अथवा इसके विपरीत विकर्षण-शक्ति ही वायु है।

दूसरे शब्दों में इन्द्र ही वायु उत्पन्न करता है। इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

वायविन्द्रश्च चेतथ: सुतानां वाजिनीवसू।
तावा यातमुप द्रवत्॥ (ऋ० १-२-५)

पदच्छेद—वायो, इन्द्र:, च चेतथ:, सुतानाम्, वाजिनी-वसू।
तौ, आ, यातम्, उप, द्रवत्॥

मन्त्रार्थ—(वायो इन्द्र: च वाजिनी-वसू सुतानाम् चेतथ:) वायु और इन्द्र अन्न में बसे हुए पदार्थों को चेतन कर देते हैं (उनको आवेशयुक्त कर देते हैं)।

(तौ द्रवत् उप आ यातम्) वे दोनों आवेशवाले अन्न शीघ्र समीप आ जाओ।

मंत्र में कहा गया है कि अन्न अर्थात् उपादान-कारण। यहाँ महत् में आवेश

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से युक्त परमाणुओं से अभिप्राय है। इस आवेश के कारण भिन्न-भिन्न आवेशवाले परमाणु समीप-समीप तीव्र गति से आते हैं। यह गति वायु के कारण होती है।

इस सूक्त का अगला मंत्र भी इसी विषय में है—

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातमुप निष्कृतम्।
मक्ष्वि१त्था धिया नरा॥ (ऋ० १-२-६)

इस मंत्र का देवता भी इन्द्र-वायु है।

पदच्छेद—वायो, इन्द्रः च, सुन्वतः, आ यातम्, उप, निः-कृतम्। मक्षु, इत्था, धिया, नरा॥

मन्त्रार्थ—वायो इन्द्रः च सुन्वतः निः-कृतम् उप आ यातम्) हे इन्द्र और वायु! उत्पन्न करनेवाले शुद्ध किए हुए को समीप लाओ।

(मक्षु इत्था धिया नरा) सत्य ही दोनों शक्तियाँ शीघ्र कार्य करती हैं।

मंत्र में कहा है कि इन्द्र और वायु शुद्ध किए हुए को समीप लाते हैं। शुद्ध किए हुए से अभिप्राय है जैसे कच्चे माल से शुद्ध उपकारी माल बनाया जाए। प्रकृति के परमाणुओं से महत् बनता है। यह प्रकृति से शुद्ध किया हुआ माना जाता है। यही महत् है परमाणु जिसमें विरोधी आवेश से शीघ्र परस्पर आकर्षित हो मिल जाते हैं। यह कार्य इन्द्र और वायु का है।

इन्द्र और वायु के विषय पर वेद में एक अन्य सूक्त ऋ० ४-४६ भी है। उसमें भी दोनों का परस्पर सम्बन्ध बताया गया है। इन्द्र त्रि-गुणात्मक शक्ति है। जब यह परमाणु में बहिर्मुख होती है तो इसके तीन मुख हो जाते हैं—यह हम ऊपर बता आए हैं। इससे आकर्षण-अनाकर्षण होता है। यह सब ऊपर बताया जा चुका है। इससे परमाणुओं में गति उत्पन्न होती है। इस सूक्त में यह कहा है कि इन्द्र रथ है और वायु उस रथ पर सवार गति करता है।

बृहदारण्यक उपनिषद् में इस वायु का वृत्तान्त व्याख्या-सहित मिलता है। वहाँ एक कथा के द्वारा इसका वर्णन किया गया है। कहते हैं कि एक बार महाराज जनक ने सहस्र गौओं का दान किया और कहा—जो ब्रह्मवेत्ता ऋषि है, वह इन गौवों को ले-जा सकता है। उन गौओं के लेने का अधिकार याज्ञवल्क्य ने उपस्थित किया तो वहाँ पर उपस्थित अन्य ऋषि याज्ञवल्क्य को चुनौती देते हुए उससे प्रश्न पूछने लगे। बहुत-से ऋषियों ने प्रश्न पूछे। उनमें से एक कपि-गोत्रोत्पन्न पतंजल के आश्रम में थे और वहाँ एक गन्धर्व विद्वान् से पूछा गया था—

.....नु त्वं काप्य तत् सूत्रं! येनायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्तीति। सो ऽब्रवीत् पतंचलः काप्यो नाहं तद् भगवन्! वेदेति। सोऽब्रवीत्— (बृ० उप० ३-७-१)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'क्या तुम उस सूत्र को जानते हो, जिसके द्वारा यह लोक-परलोक और सारे भूत ग्रथित हैं?'

''उस गन्धर्व ने कहा, 'मैं नहीं जानता।'

''अतः हे याज्ञवल्क्य! यदि तुम यह बता दो तो तुम्हारा गौओं को ले-जाने का अधिकार मान लेंगे।''

याज्ञवल्क्य ने कहा, ''मैं जानता हूँ।''

स होवाच वायुर्वै गौतम तत् सूत्रं वायुना वै गौतम सूत्रेणायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दृब्धानि भवन्ति''''। *(बृ० उ० ३-७-२)*

''हे गौतम! वायु ही वह सूत्र है। वायुरूपसूत्र के द्वारा ही यह लोक, परलोक और समस्त भूत-समुदाय गुँथे हुए हैं (ग्रथित हैं)।''

इसके आगे याज्ञवल्क्य ने अनेक उदाहरण देकर बताया कि यह वायु ही सबको भीतर से बाँधे हुए है।

अतः जैसाकि हम ऊपर बता आए हैं—परमाणुओं की त्रिगुणात्मक शक्ति जब बहिर्मुख हुई तो वह शक्ति आस-पास के परमाणुओं को आकर्षित करने लगी और इससे गति उत्पन्न हुई और परमाणुओं के संयोग-वियोग बनने लगे। यह गति वायु है। यही वेद में कहा है। उस गति से चराचर जगत् के पदार्थ बनते और टूटते हैं। यहाँ तक कि मनुष्य की सन्तान का होना अथवा मनुष्य के शरीर का बनना भी इसी वायु से होता है। यह भी कहा है कि जब जीवात्मा को मोक्ष मिलता है और वह सूक्ष्म शरीर से भी छूट जाता है तो यह वायु के कारण ही है।

वायु से सूक्ष्म शरीर बनता है और वायु से ही वह बना सूक्ष्म शरीर विघटित होता है।

अभी तक हमने आदि-अग्नि, वैश्वानर अग्नि, इन्द्र, मित्र, वरुण, अर्यमा (सोम) का वर्णन कर इनसे उत्पन्न वायु का वर्णन किया है।

हमने यह भी बताया है कि सामान्य वायु (हवा) का भी वर्णन वेदों में है। वह साँस लेनेवाली वायु कई मंत्रों और सूक्तों का देवता (विषय) भी है, परन्तु वह वायु दिव्य गुणवाला देवता नहीं।

इस कारण वह वायु हमारी इस पुस्तक का विषय नहीं है। वेद में अन्य भी कई विषयों पर कहा है जो दिव्य गुणवाले नहीं हैं। वे सब वेद में होने पर भी हमारी इस पुस्तक का विषय नहीं हैं, वेदों में दिव्य गुणयुक्त पदार्थों (देवताओं) का वर्णन है। अतः इस वायु का और अन्य सांसारिक पदार्थों का हम इस पुस्तक में वर्णन नहीं कर रहे।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टम अध्याय

अश्विनौ

'अशु' धातु से अश्व और उसमें 'इन्' प्रत्यय लगने से अश्विन् बनता है। इसका द्विवचन 'अश्विनौ' है। अर्थ है—(कार्य को) व्याप्त करनेवाले दो।

दो से किन-किन का अभिप्राय है? इसमें हमारा मत है कि जो भी दो दिव्य गुणयुक्त पदार्थ इकट्ठे किसी कार्य को करते हैं तो वे वेद में अश्विनौ देवता कहे जाते हैं।

अतः भिन्न-भिन्न प्रसंगों और स्थानों में भिन्न-भिन्न देवताओं से प्रयोजन होता है।

उदाहरण के रूप में ऋग्वेद (१-३-१, २, ३) में अग्नि और वायु से अभिप्राय है—ऐसा हमारा मत है। इस मत का अपना कारण हम मन्त्रार्थ देने के उपरान्त बताएँगे।

सूक्त का प्रथम मंत्र इस प्रकार है—

अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्पाणी शुभस्पती।
पुरुभुजा चनस्यतम्॥ *(ऋ० १-३-१)*

पदच्छेद—अश्विना, यज्वरीः, इषः, द्रवत्पाणी, शुभः, पती।
पुरु-भुजा, चनस्यतम्॥

मन्त्रार्थ—(अश्विना इषः यज्वरीः शुभः पती द्रवत्पाणी) हे अश्विनौ! यज्ञ कार्य में देखनेवाले, खुले हाथों से अन्न देनेवाले, शुभ कर्म का पालन करनेवाले—

(पुरु-भुजा चनस्यतम्) बहुत खानेवाले! (अन्न का) सेवन करो।

मनुष्य-शरीर में अग्नि और वायु के कर्म का उल्लेख है। शरीर में खाया अन्न अग्नि से पचता है और वायु से वह पचा अन्न भिन्न-भिन्न अंगों तक पहुँचता है।

इस सूक्त का दूसरा मंत्र है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्विना पुरुदंससा नरा शवीरया धिया।
धिष्ण्या वनतं गिरः॥ (ऋ० १-३-२)

पदच्छेद—अश्विना, पुरु-दंससा, नरा, शवीरया, धिया।
धिष्ण्या, वनतम्, गिरः॥

मन्त्रार्थ—(नरा शवीरया धिया पुरु-दंससा अश्विना) हे अश्विनौ! वेग से अनेक कार्य करनेवाली अग्रणी बुद्धि से—

(धिष्ण्या वनतम् गिरः) हे बुद्धिवाले! स्तुतियों का सेवन करो।

इस मंत्र में भी कहा है कि वही दो शक्तियाँ जो शरीर में भिन्न-भिन्न कार्य करने की सामर्थ्य उत्पन्न करती हैं, वे ही बुद्धि को प्रखर कर मनुष्यों से अनेक कार्य कराती हैं।

इसी विषय पर अगला मंत्र है—

दस्रा युवाकवः सुता नासत्या वृक्तबर्हिषः।
आ यातं रुद्रवर्तनी॥ (ऋ० १-३-३)

पदच्छेद—दस्रा, युवाकवः, सुताः, नासत्या, वृक्त-बर्हिषः।
आ, यातम्, रुद्रवर्तनी॥

मन्त्रार्थ—(नासत्या दस्रा रुद्रवर्तनी सुताः युवाकवः वृक्त-बर्हिषः आ यातम्) सदा सत्य, प्राण-शक्ति रखनेवाले (तुम दोनों) मिले-जुले प्राणियों का पृथक्-पृथक् पालन करने (आओ)।

शरीर में अग्नि और वायु आवें और उसको प्राण-शक्ति दें। वृक्त-बर्हिषः का अर्थ कटी हुई दुम है, परन्तु अभिप्राय है सामान्य-जन, जिनमें जीव पृथक्-पृथक् हैं और वे समाज का निर्माण करते हैं। उनके शरीरों में शक्ति अग्नि और वायु की है।

अग्नि है अनादि शक्ति।

अश्विनौ के विषय पर एक अन्य सूक्त में निम्न मंत्र है। इस पूर्ण सूक्त का देवता (विषय) भी है—अश्विनौ।

प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेद गच्छताम्।
अस्य सोमस्य पीतये॥ (ऋ० १-२२-१)

पदच्छेद—प्रातः-युजा, वि, बोधय, अश्विनौ, आ, इह, गच्छताम्।
अस्य, सोमस्य, पीतये॥

मन्त्रार्थ—(अश्विनौ प्रातः-युजा वि बोधय गच्छताम्) हे अश्विनौ! प्रातः-काल युक्त होकर विशेष (भली प्रकार) ज्ञान कराने के लिए प्राप्त होवो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्य सोमस्य पीतये) उस सोम (परमात्मा) की शक्ति का पान करने के लिए।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि मनुष्य (पति-पत्नी) प्रातः के यज्ञ-कर्म में लग जाएँ। परमात्मा की शक्ति का ध्यान कर ज्ञान प्राप्त करें। सोम परमात्मा की शक्ति है।[१]

इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

या सुरथा रथीतमोभा देवा दिविस्पृशा।
अश्विना ता हवामहे॥ *(ऋ० १-२२-२)*

पदच्छेद—या, सु-रथा, रथि-तमा, उभा, देवा, दिवि-स्पृशा।
अश्विना, ता, हवामहे॥

मंत्रार्थ—(या उभा देवा सुरथा रथि-तमा दिवि-स्पृशा) जो दोनों अच्छे रथ पर सवार ओजस्वी व्यक्तियों के सम्पर्क में आने के लिए—

(ता अश्विना हवामहे) उन दो अश्विनौ को हम पुकारें, स्मरण करें।

इस मंत्र में भी अश्विनौ से अभिप्राय पति-पत्नी है। सुरथा के अर्थ हैं अच्छे रथ अर्थात् शरीरवाले। रथी हैं उसमें रहनेवाले जीवात्मा।

इस सूक्त का अगला मंत्र है—

या वां कशा मधुमत्यश्विना सूनृतावती।
तया यज्ञं मिमिक्षतम्॥ *(ऋ० १-२२-३)*

पदच्छेद—या, वाम्, कशा, मधु-मती, अश्विना, सूनृता-वती।
तया, यज्ञम् मिमिक्षतम्॥

मन्त्रार्थ—(या वाम् अश्विना कशा मधु-मती सूनृता-वती) जो तुम (दोनों) अश्विनौ की वाणी मिठासभरी और बुद्धियुक्त होवे;

(तया यज्ञम् मिमिक्षतम्) उससे यज्ञ सम्पन्न करें।

पति-पत्नी मीठी और बुद्धियुक्त वाणी बोलें, जिससे उनका गृहस्थ-कर्म सफल हो।

अगला मंत्र है—

नहि वामस्ति दूरके यत्रा रथेन गच्छथः।
अश्विना सोमिनो गृहम्॥ *(ऋ० १-२२-४)*

पदच्छेद—नहि, वाम्, अस्ति, दूरके, यत्र, रथेन, गच्छथः।
अश्विना, सोमिनः, गृहम्॥

---

१. देखें सोम का प्रकरण

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रार्थ—(वाम् नहि अस्ति दूरके यत्र रथेन गच्छथ:) आप दोनों के लिए दूर नहीं है, जहाँ रथ से जाते हो।

(अश्विना सोमिनः गृहम्) हे अश्विनौ! सोम पीनेवाले (परमात्मा के ज्ञान ग्रहण करनेवाले) का घर।

मंत्र का अभिप्राय है कि सोम पीनेवाले का घर, अर्थात् परमात्मा का ज्ञान रखनेवाले का घर, जिन्होंने परमात्मा का ज्ञान प्राप्त किया हुआ है—यह कहा है गृहस्थों के लिए ऐसे ज्ञानवालों का घर दूर नहीं। वे जा सकते हैं, क्योंकि उनके शरीर स्वस्थ हैं। रथ की आवश्यकता नहीं।

अश्विनौ के विषय में एक अन्य सूक्त में कहा है—

त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना।
युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायंसेन्या भवतं मनीषिभिः॥

(ऋ० १-३४-१)

पदच्छेद—त्रिः, चित्, नः, अद्य, भवतम्, नवेदसा, वि-भुः, वाम्, यामः उत, रातिः, अश्विना।

युवोः, हि, यन्त्रम्, हिम्या-इव, वाससः, अभि-आयंसेन्या, भवतम्, मनीषि-भिः॥

मन्त्रार्थ—(नवेदसा अश्विना निः चित् अद्य नः भवतम् वाम् यामः वि-भुः उत रातिः) हे बुद्धिमान् अश्विनौ (इन्द्र और वायु)! आज हमको तुम दोनों का रथ तीन बार व्यापक रखे और रथ होवे (सवारी के लिए प्राप्त होवे)।

(युवोः यन्त्रम् हिः वाससः हिम्या-इव मनीषि-भिः अभि-आयंसेन्या भवतम्) निश्चय तुम दोनों का यंत्र मनीषियों द्वारा दिन-रात की भाँति नियम के साथ बन गया (चलने लगा)।

मंत्र में इन्द्र और और वायु का कार्य बताया है। ये दोनों आपः को अपने रथ पर सवार कर ऊपर-नीचे घुमाते हैं, जैसे दिन के बाद रात और रात के बाद दिन आता है। निश्चय से यह रथ अर्थात् इन्द्र और वायु की गति आपः को घुमाती है।

हिम्या से यहाँ रात का अभिप्राय है। जैसे रात का संयोग दिन से होता है, वैसे एक गुण का संयोग दूसरे गुण से होता है। धन और ऋण से मिलता है और शून्य तो दोनों से मिल सकता है, ये ही यंत्र बनाते हैं। आपः में धन-शक्ति और ऋण-शक्तियाँ दोनों होती हैं। वे ही दिन और रात की भाँति युक्त होती हैं। इन्द्र और वायु रजस्-आपः को वैकारिक-आपः और तमस्-आपः के ऊपर-नीचे घुमाने लगते हैं। यह परिमण्डल में होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सूक्त में शब्द त्रिः बहुत बार आया है। अर्थ है तीन बार। परन्तु इसका अभिप्राय है अनेक बार अथवा बार-बार।

सूक्त का अगला मंत्र है—

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद् विदुः।
त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिर्वश्विना दिवा॥

(ऋ० १-३४-२)

पदच्छेद—त्रयः, पवयः, मधु-वाहने, रथे, सोमस्य, वेनाम्, अनु, विश्वे, इत्, विदुः।

त्रयः, स्कम्भासः, स्कभितासः, आ-रभे, त्रिः, नक्तम्, याथः, त्रिः, अश्विना, दिवा॥

मन्त्रार्थ—(मधु-वाहने रथे पवयः त्रयः अनु विश्वे सोमस्य वेनाम् इत् विदुः) सुख से ले-जानेवाले रथ में तीन सुदृढ़ चक्र इस सम्पूर्ण-सुन्दर सुलभ कामनाओं को पूर्ण करने के अनुसार, यात्रा पर जानेवाले जानते हैं।

(त्रयः स्कम्भासः स्कभितासः आरभे अश्विना नक्तम् त्रिः याथः दिवा) उ पद-पूर्ति के लिए है। तीन खम्भे स्थापित हैं, आश्रय के लिए हैं अश्विनौ (इन्द्र और वायु)। तीन बार ये दोनों अन्धकार में और तीन बार प्रकाश में हो जाते हैं।

इससे पूर्व के मंत्र में कहा है कि तुम दोनों का यन्त्र बन गया। इस मंत्र में बताया है कि यंत्र कैसे बन गया। तीन खम्भे स्थापित हो गए आश्रय के लिए। परिमण्डल में तीन स्थान पर आपः को खड़ा कर दिया गया। खम्भे बने हैं, आपः के आश्रय के लिए। उनमें से दो आपः कभी अन्धकार में और कभी प्रकाश में जाते हैं। वे रथ के सुदृढ़ चक्र पर घूम रहे हैं। कभी ऊपर आते हैं और कभी नीचे जाते हैं। यह परिमण्डल में रजस् और वैकारिक-आपः अर्थात् मित्र और वरुण के विषय में कहा है। ये वैज्ञानिक भाषा में इलेक्ट्रॉन और प्रोटोन हैं।

सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना त्रिरद्य यज्ञं मधुना मिमिक्षतम्।
त्रिर्वाजवतीरिषो अश्विना युवं दोषा अस्मभ्यमुषसश्च पिन्वतम्॥

(ऋ० १-३४-३)

पदच्छेद—समाने, अहन्, त्रिः, अवद्य-गोहना, त्रिः अद्य, यज्ञम्, मधुना, मिमिक्षतम्।

त्रिः, वाज-वतीः, इषः, अश्विना, युवम्, दोषाः, अस्मभ्यम्, उषसः, च, पिन्वतम्॥

मन्त्रार्थ—(समाने त्रिः अहन् त्रिः अवद्य-गोहना त्रिः अद्य यज्ञम् मधुना

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मिमिक्षतम्) समान रूप में तीन बार चोट मारकर अब दोष दूर करो और इनका सिंचन करो (ठीक काम पर लगाओ)।

(अश्विना युवम् दोषः उषसः च त्रिः वाज-वतीः इषः अस्मभ्यम् पिन्वतम्) हे अश्विनौ (इन्द्र और वायु)! तुम दोनों में सुधार करो और तीन बार बलवान् व्यवहार करनेवाला (इन्द्र) हमारे प्रति सेवन करे।

ऊपर के मंत्र में तीन प्रकार के आपः को खम्भे से बाँध दिया गया था। दो सुदृढ़ चक्र पर घूमते थे। कभी प्रकाश में और कभी अन्धकार में जाते थे। इस मंत्र में कहा है कि उनकी गति में यदि कोई दोष है तो इन्द्र उसको ठीक कर दे। इस प्रकार इन्द्र यज्ञ-कार्य (रचना-कार्य) को आगे चलाए।

अगला मंत्र है—

त्रिर्वर्तिर्यातं त्रिरनुव्रते जने त्रिः सुप्राव्ये त्रेधेव शिक्षतम्।
त्रिर्नान्द्यं वहतमश्विना युवं त्रिः पृक्षो अस्मे अक्षरेव पिन्वतम्॥

(ऋ० १-३४-४)

पदच्छेद—त्रिः, वर्तिः यातम्, त्रिः, अनुव्रते (अनु-व्रते), जने, त्रिः, सुप्र-अव्ये, त्रेधा-इव, शिक्षतम्।

त्रिः, नान्द्यम्, वहतम्, अश्विना, युवम्, त्रिः, पृक्षः, अस्मे इति, अक्षरा-इव, पिन्वतम्॥

मन्त्रार्थ—(त्रिः वर्तिः यातम् त्रिः अनु-व्रते जने त्रिः सुप्र-अव्ये त्रेधा-इव शिक्षतम्) तीन बार व्यवहार को प्राप्त होवो और तीन बार अनुकूल प्रबन्ध उत्पन्न होने पर भली प्रकार प्रवेश-योग्य तीन दिशा में प्रेरित होवो।

(नान्द्यम् त्रिः वहतम् अश्विना युवम् त्रिः पृक्षः अस्मे त्रिः अक्षरा-इव पिन्वतम्) हे अश्विनौ (इन्द्र और वायु)! तुम दोनों समृद्धि पाने योग्य कार्य सम्पन्न करते हो, तीन बार बहुत कार्य (तालाब भरने की भाँति) हमारे लिए प्राप्त करो।

परिमण्डल में आपः भर दिए जाएँ जैसे तालाब में जल भर दिया जाता है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवं त्रिर्देवताता त्रिरुतावतं धियः।
त्रिः सौभगत्वं त्रिरुत श्रवांसि नस् त्रिष्ठं वां सूरे दुहिता रुहद् रथम्॥

(ऋ० १-३४-५)

पदच्छेद—त्रिः, नः, रयिम्, वहतम्, अश्विना, युवम्, त्रिः, देव-ताता, त्रिः, उत, अवतम्, धियः।

त्रिः, सौभग-त्वम्, त्रिः, उत, श्रवांसि, नः, त्रि-स्थम्, वाम्, सूरे, दुहिता, आ रुहत्, रथम्॥

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रार्थ—(अश्विना युवम् त्रिः नः रयिम् वहतम् त्रिः देव-ताता त्रिः उत अवतम् धियः।) हे अश्विनौ (इन्द्र और वायु)! तुम दोनों हमारे को धन दो। तीन देवकर्म (यज्ञ-कर्म) में हमारी बुद्धि की रक्षा करो।

(त्रिः सौभगत्वं त्रिः उत श्रवांसि वाम् त्रि-स्थम्) तुम दोनों तीन बार हमको अन्नादि से सौभाग्यवान् करो।

(वाम् सूरे दुहिता आ रुहत् रथम्) तीन बार सूर्य की लकड़ी (ऊर्जा) को शरीर में सवार कराओ।

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि इन्द्र और वायु ही मनुष्य को श्रेष्ठ कर्मों की बुद्धि देते हैं और सूर्य की ऊर्जा से हमारे शरीर में बल, वीर्य और अन्न मिलता है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा त्रिः पार्थिवानि त्रिरु दत्तमद्भ्यः।
ओमानं शंयोर्ममकाय सूनवे त्रिधातु शर्म वहतं शुभस्पती॥

(ऋ० १-३४-६)

पदच्छेद—त्रिः नः अश्विना, दिव्यानि, भेषजा, त्रिः, पार्थिवानि, त्रिः, ऊँ इति, दत्तम् अत्-भ्यः।

ओमानम्, शम्-योः, ममकाय, सूनवे, त्रि-धातु, शर्म वहतम्, शुभः, पती॥

मन्त्रार्थ—(अश्विना नः दिव्यानि भेषजा त्रिः दत्तम् पार्थिवानि अद्भ्यः) हे अश्विनौ (इन्द्र और वायु)! हमको बार-बार दिव्य पार्थिव और जलीय ओषधियाँ खाने को दो (दिव्य से अभिप्राय है दिव्य गुणवाली। पार्थिव और अद्भिः का अर्थ है सूखी और जल में उत्पन्न।)

(ममकाय सूनवे ओमानम् शम्-योः शुभ-पति त्रिधातु शर्म वहतम्) हे शुभ-पालना करनेवाले अश्विनौ! मेरे पुत्र के लिए सुखकारक और शान्तिदायक तीन धातुओं का गृह दो।

यहाँ भी अश्विनौ से अभिप्राय इन्द्र और वायु ही है।

त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे परि त्रिधातु पृथिवीमशायतम्।
तिस्रो नासत्या रथ्या परावत आत्मेव वातः स्वसराणि गच्छतम्॥

(ऋ० १-३४-७)

पदच्छेद—त्रिः, नः, अश्विना, यजता, दिवे-दिवे, परि, त्रि-धातु, पृथिवीम्, अशायतम्।

तिस्रः, नासत्या, रथ्या, परा-वतः, आत्मा-इव, वातः, स्वसराणि, गच्छतम्॥

मन्त्रार्थ—(अश्विना दिवे-दिवे यजता नः पृथिवीम् परि त्रिधातु त्रिः

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अशायतम्) हे यज्ञ करनेवाले अश्विनौ! हमारे लिए पृथिवी को तीन धातुओं से स्थापित करो।

(नासत्या तिस्रः रथ्या आत्मा-इव वातः परा-वतः स्वसराणि गच्छतम्) असत्य न होनेवाले रथ के तीनों स्वामियो! प्राण और आत्मा की भाँति रथ-स्थित शरीर को जाओ।

'पृथिवी को तीन धातुओं से स्थापित करो' का अभिप्राय है कि पार्थिव, जलीय और आग्नेय पदार्थों को पृथिवी में स्थापित करो, और प्राणी के शरीर में ऐसे आओ जैसे आत्मा और प्राण आते हैं।

इस सूत्र में अश्विनौ से अभिप्राय अग्नि और वायु है। ऐसा क्यों है—यह आगे चलकर स्पष्ट करेंगे।

त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिस्त्रय आहावास्त्रेधा हविष्कृतम्।
तिस्रः पृथिवीरुपरि प्रवा दिवो नाकं रक्षेथे द्युभिरक्तुभिर्हितम्॥

(ऋ० १-३४-८)

पदच्छेद—त्रिः, अश्विना, सिन्धु-भिः, सप्तमातृ-भिः, त्रयः, आ-हावाः, त्रेधा, हविः, कृतम्।

तिस्रः, पृथिवीः, उपरि, प्रवा, दिवः, नाकम्, रक्षेथे इति, द्यु-भिः अक्तु-भिः, हितम्॥

मन्त्रार्थ—(अश्विना सप्तमातृभिः सिन्धु-भिः त्रिः आ-हावाः त्रेधा हविष्कृतम्) हे अश्विनौ! सात माताओं (शक्तियों) की धाराओं के द्वारा तीन कोषों में तीन प्रकार से सम्पादन की हुई हवि भरो।

(प्रवा तिस्रः पृथिवीः उपरि दिवो नाकम् द्यु-भिः अक्तु-भिः हितम् रक्षेथे) गतिशील (तुम दोनों) तीन बार पृथिवी और ऊपर आकाश में स्थापित होकर दिन और रात रक्षा करते हो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि अश्विना (अग्नि और वायु) मनुष्य-शरीर में तीन कोषों (रक्त, मांस और मज्जा) में सम्पादन हुई हवि अर्थात् सूर्य की किरणों से निर्मित अन्न को भर दें।

और ये गतिशील अश्विनौ (अग्नि और वायु) पृथिवी और आकाश में स्थापित होकर दिन-रात शक्ति की रक्षा करें। सात धाराओं में आ रही शक्ति की रक्षा करें और शरीर के तीनों धातुओं (रक्त, मांस और मज्जा) में उनको भर दें।

क्व१ त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य क्व१ त्रयो बन्धुरो ये सनीळाः।
कदा योगो वाजिनो रासभस्य येन यज्ञं नासत्योपयाथः॥

(ऋ० १-३४-९)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—क्व, त्री, चक्रा, त्रि-वृतः, रथस्य, क्व, त्रयः, बन्धुरः, ये, स-नीळाः।

कदा, योगः, वाजिनः रासभस्य, येन, यज्ञम्, नासत्या, उप-याथः॥

मन्त्रार्थ—(त्रि-वृतः रथस्य त्री चक्राः क्व ये स-नीळाः बन्धुरः त्रयः क्व) रथ के तीन वृत (पहले आधार) और तीन चक्र कहाँ हैं? ते तीन बन्धन कहाँ संयुक्त हैं?

(वाजिनः रासभस्य योगः कदा येन यज्ञम् उप-याथः) शक्तिशाली गधे (शरीर) का भोग (अश्विनौ से) किया हुआ, जिससे यज्ञ के समीप आते हो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि रथ के तीन वृत्र जिनको ऊपर कोष कहकर स्मरण किया है (अर्थात् रक्त, मांस और मज्जा कहा है) और इनका इन गतिशील शक्तियों से कब संयोग हुआ है? ये शरीर जो इनके बिना गधे समान काम करनेवाला था, उसे भय कब आया है? इसका उत्तर है जब शरीर में जीवात्मा आता है, तब परमात्मा की शक्ति जो जीवात्मा को उधार मिली होती है, मिलती है। परमात्मा की शक्ति ही अग्निरूप वायु है।

आ नासत्या गच्छतं हूयते हविर्मध्वः पिबतं मधुपेभिरासभिः।
युवोर्हि पूर्वं सवितोषसो रथमृताय चित्रं घृतवन्तमिष्यति॥

(ऋ० १-३४-१०)

पदच्छेद—आ, नासत्या, गच्छतम्, हूयते, हविः, मध्वः, पिबतम्, मधु-पेभिः आस-भिः।

युवोः, हि, पूर्वम्, सविता, उषसः, रथम्, ऋताय, चित्रम्, घृत-वन्तम्, इष्यति॥

मन्त्रार्थ—(नासत्या आ गच्छतम् हविः हूयते मधु-पेभिः, आस-भिः, मध्वः, पिबतम्) न नाश होनेवाले (अश्विनौ!) आवो। हवि दी जा रही है। मधु पीनेवाले मुख से मधु पान करो।

(युवोः सविता उषसः पूर्वम् रथम् ऋताय इष्यति हि चित्रम् घृत-वन्तम्) तुम (अग्नि और वायु) दोनों नियम के पालन के लिए उषा के पूर्व के रथ (सूर्य) की इच्छावाले हो। निश्चय से रथ विचित्र है और घृत (उपादान कारण) वाला है।

इस सूक्त में मंत्र-संख्या १, २, ३, ४, ५, ६ में अश्विनौ से अभिप्राय इन्द्र तथा वायु है। मंत्र-संख्या ७, ८, ९, १० में अश्विनौ का अभिप्राय अग्नि और वायु है। यह इन्द्र और अग्नि में भेद आया है। इसका कारण है कि मंत्र-संख्या ७, ८, ९, १० में अश्विनौ को नासत्य कहा है अर्थात् जो असत् नहीं, अर्थात् अविनाशी है। अविनाशी परमात्मा की अग्नि और उससे उत्पन्न वायु ही है। इन्द्र को नासत्या

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नहीं कहा जा सकता। इन्द्र यद्यपि प्रकट तो अग्नि के बल से ही होता है (ऋग्वेद १-१६३-२) और वायु भी परमात्मा के तेज अथवा अग्नि का ही रूपान्तर है, इस कारण दोनों अविनाशी हैं। इन मंत्रों में अश्विनौ को नासत्या कहा है।

अन्य भाष्यकार (प्रायः सब) अश्विनौ को 'कोई विशेष देवता है' ऐसा मानते हैं। परन्तु कौन देवता है जो नासत्य कहा जा सकता है? देवता तो प्रायः प्रकृति से उत्पन्न होते हैं। केवल अग्नि और वायु ही प्रकृति के परमाणु की शक्ति के प्रकट होने से पहले बनते हैं। यह अनादि अग्नि का एक रूप ही है। ये दोनों अविनाशी हैं। इसी कारण इनको 'नासत्या' कहा है।

स्वामी दयानन्द ने 'अश्विनौ' को किसी प्रकार के यंत्र के संचालक और निर्माता माना है। हम समझते हैं कि यंत्र का बनाना अथवा संचालन केवल कला-कौशल है। कला-कौशल (टेक्नॉलॉजी) मानवकृत होने से वेद में नहीं हो सकती। शुद्ध विज्ञान, सृष्टि-रचना की प्रक्रिया तो वेद में हो सकती है, परन्तु कला-कौशल (टेक्नॉलॉजी) जो मानव-कृत है, वह मानेंगे तो मानव-इतिहास भी वेद में मानना पड़ेगा और फिर मानवों के वेद के आविर्भाव के पीछे का मानव-इतिहास वेद में मानना पड़ेगा, जिसे स्वामी जी स्वयं भी नहीं मानते। जैसे इतिहास में कर्म भी मनुष्य की रुचि और इच्छानुसार होते हैं, उसी प्रकार तकनीकी विद्या भी मनुष्य की रुचि और इच्छा के अनुसार होती है। हमारा इसमें निश्चित मत है कि तकनीकी बातें वेदों में नहीं हैं।

जहाँ पति-पत्नी को अश्विनौ कहा है, वहाँ भी उन द्वारा निर्मित कुछ नहीं है। वरन् उनमें इन्द्र और वायु अथवा अग्नि और वायु के कार्य का ही वर्णन है।

हमारा यह निश्चित मत है कि कोई भी देवता जब मिलकर एक कार्य करते हैं (एक रथ खींचते हैं) तब अश्विनौ समझे जाते हैं। वह भी केवल उस कार्य में, जिसमें इकट्ठे होकर कार्य करते हैं। उनके पृथक्-पृथक् चाहे कुछ भी काम हों।

एक अन्य सूक्त में भी अश्विनौ का वर्णन इस प्रकार है—

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा।
तमश्विना पिबतं तिरोअह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे॥

(ऋ० १-४७-१)

पदच्छेद—अयम्, वाम्, मधुमत्-तमः, सुतः, सोमः, ऋत-वृधा।
तम्, अश्विना, पिबतम्, तिरः-अह्न्यम्, धत्तम्, रत्नानि, दाशुषे॥

मन्त्रार्थ—(ऋत-वृधा तम् अयम् सुतः सोमः मधुमत्-तमः) हे प्रकृति के नियमों के बढ़ानेवाले (नियमानुसार जगत्-रचना करनेवाले अश्विनौ), आपकी सन्तान सुखकारक और मधुर हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तम् अश्विना पिबतम् दाशुषे रत्नानि धत्तम् तिरः-अह्न्यम्) हे अश्विनौ! उस (रचित जगत्) को पियो (ग्रहण करो), रत्नों (जगत् के सुन्दर उपयोगी पदार्थों) को देनेवाले के लिए धारण करो और तिरा (व्यतीत हो रहे दिन) ब्रह्मदिन के अंतिम हवन के समय तक अर्थात् सब-कुछ के समाप्त होने तक।

यहाँ 'तिरा' का अर्थ 'बीत गया' न कर 'बीत रहा' किया है। यही उपयुक्त प्रतीत होता है। दिन से अभिप्राय ब्रह्मदिन अर्थात् रचना के अंत तक दृष्टि बनी रहे (रक्षा होती रहे)।

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेना यातमश्विना।
कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सु शृणुतं हवम्॥

(ऋ० १-४७-२)

पदच्छेद—त्रि-बन्धुरेण, त्रि-वृता, सु-पेशसा, रथेन, आ, यातम्, अश्विना। कण्वासः, वाम्, ब्रह्म, कृण्वन्ति, अध्वरे, तेषाम्, सु, शृणुतम्, हवम्॥

मंत्रार्थ—(अश्विना त्रि-बन्धुरेण त्रि-वृता सु-पेशसा रथेन आ यातम्) हे अश्विनौ! तीन बन्धनोंवाले, तीन व्यवहारोंवाले, सुन्दर रूपवाले रथ से आओ।

(कण्वासः वाम् अध्वरे ब्रह्म कृण्वन्ति) बुद्धिमान् तुम दोनों के यज्ञ में अन्न प्रस्तुत करते हैं।

(तेषाम् हवम् सु शृणुतम्) उन (बुद्धिमानों) के आह्वान को भलीभाँति श्रवण करो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि अग्नि और वायु बुद्धिमानों के रथ अर्थात् शरीर में आकर तीन धातुओं (रक्त, मांस और मज्जा) के द्वारा इस अग्नि और वायु को इस शरीर में कर रहे यज्ञ को अन्न से पुष्ट करें। अन्न खाने से परमात्मा की ये शक्तियाँ पुष्ट होती हैं।

उन बुद्धिमानों का आह्वान ये अग्नि और वायु सुनें और आवें।

इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा।
अथाद्य दस्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसमुप गच्छतम्॥

(ऋ० १-४७-३)

पदच्छेद—अश्विना, मधुमत्-तमम्, पातम्, सोमम्, ऋता-वृधा। अथ, अद्य, दस्रा, वसु, बिभ्रता, रथे, दाश्वांसम्, उप, गच्छतम्॥

मन्त्रार्थ—(ऋता-वृधा अश्विना मधुमत्तमं सोमं पातं) ऋतों (प्राकृतिक नियमों) को बढ़ानेवाले और उसके अनुसार कार्य करनेवाले अश्विनौ मधुर-सोम (परमात्मा की सोम शक्ति) का पान (ग्रहण) करें।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दस्रा अथ अद्य रथे वसु बिभ्रता दाश्वांसम् उप गच्छतम्) हे दस्रा (दुष्टों का नाश करनेवाले) अश्विनौ! और अब रथ (शरीर) में धन अर्थात् बल को धारण करते हुए दाता (बुद्धिमान् मनुष्य जो दूसरों का कल्याण करते हैं) के पास आओ।

त्रिषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्।
कण्वासो वां सुतसोमा अभिद्यवो युवां हवन्ते अश्विना॥

(ऋ० १-४७-४)

पदच्छेद—त्रि-सधस्थे, बर्हिषि, विश्व-वेदसा, मध्वा, यज्ञम् मिमिक्षतम्। कण्वासः, वाम्, सुत-सोमाः, अभि-द्यवः, युवाम्, हवन्ते, अश्विना॥

मन्त्रार्थ—(बर्हिषि विश्व-वेदसा त्रिषधस्थे मध्वा यज्ञं मिमिक्षतम्) अन्तरिक्ष में सब-कुछ जाननेवाले तीन स्थानों पर स्थित मधुरस (सोम) से यज्ञ को सिंचन करने की इच्छा करते हुए;

(अश्विना वाम् सुत-सोमाः अभि-द्यवः कण्वासः युवाम् हवन्ते) हे अश्विनौ! तुम्हारे लिए सोम के सार (सोम आपः से उत्पन्न पदार्थ) दीप्ति हुए-हुए (सुन्दर स्वादिष्ट सुखद) तैयार किए हुए बुद्धिमान् आप दोनों का आह्वान करते हैं।

अगला मंत्र है—

याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतं युवमश्विना।
ताभिः ष्व१स्माँ अवतं शुभस्पती पातं सोमतावृधा॥

(ऋ० १-४७-५)

पदच्छेद—याभिः कण्वम्, अभिष्टि-भिः, प्र, आवतम्, युवम्, अश्विना। ताभिः, सु, अस्मान्, अवतम्, शुभः, पती इति, पातम्, सोमम्, ऋता-वृधा॥

मन्त्रार्थ—(अश्विना युवम् याभिः अभिष्टिभिः कण्वं प्रावतम्) हे अश्विनौ! तुम दोनों ने इच्छाओं (उद्देश्यों) से बुद्धिमान् की रक्षा की।

(शुभस्पती ताभिः अस्मान् सु अवतम्) शुभ कर्मों के पालक उनके द्वारा हमारी भली प्रकार रक्षा करें।

(ऋता-वृधा पातम् सोमम्) प्राकृतिक नियमों का पालन करनेवाले सोम (सोम आपः) का पान करो (ग्रहण करो)।

इस मंत्र में विशेष बात यह कही है कि बुद्धिमान् की रक्षा के लिए सोम आपः पीकर, पुष्ट होकर रक्षा करें।

अगला मंत्र है—

सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे पृक्षो वहतमश्विना।
रयिं समुद्रादुत वा दिवस्पर्यस्मे धत्तं पुरुस्पृहम्॥

(ऋ० १-४७-६)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—सु-दासे, दस्रा, वसु, बिभ्रता, रथे, पृक्षः, वहतम्, अश्विना। रयिम्, समुद्रात्, उत, वा, दिवः, परि, अस्मे, धत्तम्, पुरु-स्पृहम्॥

मन्त्रार्थ—(अश्विना दस्रा सुदासे रथं वसु बिभ्रता पृक्षः वहतम्) हे दर्शनीय अश्विनौ! रथ में धन को धारण करते हुए सुखकारक का वहन करो।

(समुद्रात् उत वा दिवः परि पुरु-स्पृहम् रयिम् अस्मे धत्तम्) अन्तरिक्ष से अथवा द्युलोक से बहुत स्पृहावाले धन को हमारे लिए धारण करो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि अपने साथ अन्न को लाकर सुख दो। यह अन्न अन्तरिक्ष अथवा द्युलोक से धारण करो अर्थात् जिससे पृथिवी पर मनुष्यों को सुख पहुँचाना है, उसे अन्तरिक्ष अथवा द्युलोक से लाओ।

यह हम जानते हैं कि आपः अन्तरिक्ष में बनते हैं। *(ऋ० १-१६२-३, ४)*

सूक्त का अगला मंत्र है—

यन्नासत्या परावति यद् वा स्थो अधि तुर्वशे।
अतो रथेन सुवृता न आ गतं साकं सूर्यस्य रश्मिभिः॥

(ऋ० १-४७-७)

पदच्छेद—यत्, नासत्या, परा-वति, यत्, वा, स्थः, अधि, तुर्वशे। अतः, रथेन, सु-वृता, नः, आ, गतम्, साकम् सूर्यस्य, रश्मि-भिः॥

मन्त्रार्थ—(नासत्या यत् परावति स्थः यत् वा अधि तुर्वशे) हे नाश न होने वाले! यदि दूरस्थ हो अथवा अति समीप हो—

(अतः, सूर्यस्य रश्मिभिः साकम् सुवृता रथेन नः आ गतम्) अतः, जहाँ भी हो, सूर्य-रश्मियों के साथ शोभायमान होते हुए रथ से हमारे पास आओ।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि सदा रहनेवाले अश्विनौ दूर हों, चाहे समीप हों, जहाँ भी हों, सूर्य की रश्मियों के साथ वर्तते हुए रश्मिरूपी रथ में सवार हो, हमारे पास आवें।

अग्नि और वायु पृथिवी पर सूर्य की रश्मियों के साथ पृथिवी पर आवें।

अर्वाञ्चा वां सप्तयोऽध्वरश्रियो वहन्तु सवनेदुप।
इषं पृञ्चन्ता सुकृते सुदानव आ बर्हिः सीदतं नरा॥

(ऋ० १-४७-८)

पदच्छेद—अर्वाञ्चा, वाम्, सप्तयः, अध्वर-श्रियः, वहन्तु, सवना, इत्, उप।

इषम्, पृञ्चन्ता, सु-कृते, सु-दानवे, आ बर्हिः, सीदतंम्, नरा॥

मन्त्रार्थ—(अध्वरश्रियः, सप्तयः सवना इत् उप अर्वा चा वाम् वहन्तु) यज्ञ की शोभावाले सात (सूर्य-किरणें) तुमको रचना-यज्ञ के समीप लाएँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नरा सुकृते सुदानवे इषम्, पृञ्चन्ता बर्हिः आ सीदतम्) हे नेताओ! (अश्विनौ।) श्रेष्ठ काम करने और भली प्रकार देनेवाले के लिए अन्न से युक्त करो। अन्तरिक्ष में आकर बैठो अथवा यज्ञवेदी (बर्हिः) पर आकर बैठो।

अश्विनौ (अग्नि और वायु)! सूर्य की किरणों के साथ आकर पृथिवी पर रचना-यज्ञ कर रहे की सहायता करो।

वेद की यह शैली है कि जहाँ देवताओं को कुछ करने को कहा जाता है, उसका अभिप्राय होता है कि वे देवता ऐसा करते हैं। अग्नि और वायु सूर्य की रश्मियों में बैठकर पृथिवी पर आते हैं और मनुष्यों का कल्याण करते हैं। मनुष्य उनकी शक्ति से शुभ कार्य करता है।

अगला मंत्र है—

तेन नासत्या गतं रथेन सूर्यत्वचा।
येन शश्वदूहथुर्दाशुषे वसु मध्वः सोमस्य पीतये॥

(ऋ० १-४७-९)

पदच्छेद—तेन, नासत्या, आ, गतम्, रथेन, सूर्य-त्वचा।

येन, शश्वत्, ऊहथुः, दाशुषे, वसु, मध्वः, सोमस्य, पीतये॥

मन्त्रार्थ—(नासत्या सूर्य-त्वचा तेन रथेन आ गतम्) जो असत् होनेवाले नहीं, वे सूर्य की त्वचा से उस रथ से आवें।

(येन दाशुषे वसु शश्वत् ऊहथुः मध्वः सोमस्य पीतये) जिससे देने के लिए निरन्तर अन्न बहुत करते हो (निर्माण करते हो) मधु स्वादिष्ट पान करने (ग्रहण करने) के लिए।

सूर्य के बाहर के मण्डल से रश्मियाँ आती हैं, वे सात प्रकार की हैं। वे पृथिवी पर आकर अन्न का निर्माण करती हैं। उस अन्न से गृहस्थी लोग पृथिवी पर सामर्थ्य प्राप्त करते हैं और फिर उससे कल्याण-कार्य करते हैं।

अगला मंत्र है—

उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू अर्कैश्च नि ह्वयामहे।
शश्वत् कण्वानां सदसि प्रिये हि कं सोमं पपथुरश्विना॥

(ऋ० १-४७-१०)

पदच्छेद—उक्थेभिः, अर्वाक्, अवसे, पुरुवसू इति पुरु-वसू, अर्कैः च, नि, ह्वयामहे।

शश्वत्, कण्वानाम्, सदसि, प्रिये, हि, कम्, सोमम्, पपथुः, अश्विना॥

मन्त्रार्थ—(पुरूवसू अवसे उक्थेमिः अर्कैः च अर्वाक् नि ह्वया-महे) अतुल धनवाले (सामर्थ्यवाले) अश्विनौ! रक्षा के लिए मंत्रोच्चारण के द्वारा हम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

निरन्तर आह्वान करते हैं अर्थात् हम सामर्थ्य प्राप्त करने का यत्न करते हैं।

(अश्विना कण्वानाम् प्रिये सदसि शश्वत् सोमम् पपथुः) हे अश्विनौ! बुद्धिमानों की प्रिय सभा में बैठे हुए सोम (परमात्मा की सुख-शक्ति) को ग्रहण करो, निश्चय से हमारे सुख के लिए।

इस सूक्त में भी अग्नि और वायु ही अश्विनौ हैं।

अतः हमारा मत है कि जब भी कोई दो देवता मिलकर किसी कार्य को करें तो 'अश्विनौ' कहाते हैं।

इन सब मंत्रों से हमारा यह निष्कर्ष है कि जब दो दिव्य शक्तियाँ मिलकर एक साँझा कार्य करती हैं तो वे शक्तियाँ 'अश्विनौ' नाम से सम्बोधित की जाती हैं। वे रथ में जुते हुए दो अश्वों के समान कार्य करती हैं।

प्रायः प्राकृतिक शक्तियाँ (अग्नि और वायु) मिलकर कार्य करती हैं। ये दोनों परमात्मा की अनादि शक्ति के रूप ही हैं।

●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

खण्ड तीन

प्रथम अध्याय

सूर्य

अभी तक हमने अग्नि (आदि), वायु, वैश्वानर अग्नि, इन्द्र, मित्र-वरुण, अश्विनौ के विषय पर वेदमत का वर्णन किया है।

अब हम सूर्य का वर्णन करेंगे। ऋग्वेद में एक सूक्त है जिसका देवता (विषय) है 'सूर्य वैश्वानरौ' अर्थात् सूर्य और वैश्वानर अग्नि। यह है ऋग्वेद १० का ८८वाँ सूक्त। इस सूक्त में सूर्य की उत्पत्ति के विषय पर कहा है।

यह हम बता चुके हैं कि वैश्वानर अग्नि वह है जो हिरण्यगर्भ में काम कर रही होती है; हिरण्यगर्भ में उत्पन्न होनेवाले पदार्थों की नेता कही जाती है। नेता का अर्थ है, कार्य में रत करनेवाली।

अतः वह अग्नि जो सूर्य को कार्य में लगाती है, उस पर यह सूक्त है। इस सूक्त का प्रथम मंत्र इस प्रकार है—

हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृश्याहुतं जुष्टमग्नौ।
तस्य भर्मणे भुवनाय देवा धर्मणे कं स्वधया पप्रथन्त॥

(ऋ० १०-८८-१)

पदच्छेद—हविः पान्तम्, अजरम्, स्वः-विदि, दिवि-स्पृशि, आ-हुतम्, जुष्टम्, अग्नौ।

तस्य, भर्मणे, भुवनाय, देवाः, धर्मणे, कम, स्वधया, पप्रथन्त॥

मन्त्रार्थ—(अजरम् पान्तम् हविः जुष्टम् स्वः-विदि दिवि-स्पृशि अग्नौ आ-हुतम्) न जीर्ण होनेवाली, पीने (ग्रहण करने) योग्य, सेवन योग्य हवि आकाश को जाननेवाली, द्युलोक को स्पर्श करनेवाली अग्नि में चारों ओर से आहुति दी जाती है।

(तस्य भर्मणे भुवनाय धर्मणे कम् देवाः स्वधया पप्रथन्त) उसका भरण-पोषण और भुवन के लिए धारण करने के लिए स्वधा (प्रकृति) से सुख देनेवाले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

देवता (आपः) फैलाते हैं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि उस अग्नि में जो द्युलोक को छू रही है, प्रकृति जो सेवन करने योग्य है (रचना-यज्ञ में आहुति बनने योग्य है) वह आहुति दी गई है, अर्थात् प्रकृति अग्नि में ऐसे जाती है जैसे हवन-यज्ञ में आहुति दी जाती है।

अग्नि का ऋग्वेद १-१६३-१ में वर्णन किया गया है। प्रकृति से सुख-कारक देवता अर्थात् आपः, पवन के अर्थात् सौरमण्डल के लिए प्रकृति को फैला रहे हैं।

इस मंत्र में तो केवल इतना वर्णन किया है कि प्रकृति को अग्नि की भेंट किया जा रहा है। उसमें जो आपः बनते हैं, वे निर्माणाधीन सौरमण्डल का पालन-पोषण कर रहे हैं और उसे धारण कर रहे हैं।

इससे अगला मंत्र है—

गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हमाविः स्वरभवज्जाते अग्नौ।
तस्य देवाः पृथिवी द्यौरुतापोऽरणयन्नोषधीः सख्ये अस्य॥

(ऋ० १०-८८-२)

पदच्छेद—गीर्णम्, भुवनम्, तमसा, अप-गूळ्हम्, आविः, स्वः, अभवत्, जाते, अग्नौ।

तस्य, देवाः पृथिवी, द्यौः, उत, आपः अरणयन्, ओषधीः, सख्ये, अस्य॥

मन्त्रार्थ—(गीर्णम् तमसा अप-गूळ्हम् स्वः भुवनम्, अग्नौ जाते आविः अभवत्) निगला हुआ (आत्मसात् किया हुआ) अन्धकार में डूबे हुए भुवन (सूर्य-मण्डल) में सूर्य अग्नि को प्राप्त होने पर प्रकाशमान हो गया।

(तस्य अस्य सख्ये देवाः पृथिवी द्यौः आपः उत ओषधीः अरणयन्) उस (अग्नि) के सहाय से देवता, पृथिवी, द्युलोक, आपः और ओषधियाँ प्रकाशमान हो जाने पर प्रसन्नता से रमण करने लगीं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि सूर्य में अग्नि के सहयोग से सौरमण्डल प्रकाशमान हुआ था। अग्नि परमात्मा का तेज है।

इससे अगला मंत्र है—

देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निं स्तोषाण्यजरं बृहन्तम्।
यो भानुना पृथिवीं द्यामुतेमामाततान रोदसी अन्तरिक्षम्॥

(ऋ० १०-८८-३)

पदच्छेद—देवेभिः, नु, इषितः, यज्ञियेभिः, अग्निम्, स्तोषाणि, अजरम्, बृहन्तम्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यः, भानुना, पृथिवीम्, द्याम्, उत, इमाम् आ-ततान, रोदसी अन्तरिक्षम्॥

मन्त्रार्थ—(यज्ञियेभिः देवेभिः नु इषितः अजरम् बृहन्तम् अग्निम् स्तोषाणि) यज्ञ के योग्य देवताओं (आपः) के द्वारा शीघ्र इच्छा किया हुआ बहुत बड़ी अजर अग्नि की स्तुति करता हूँ।

(यः भानुना पृथिवीम् उत इमाम् द्याम् रोदसी अन्तरिक्षम् आ-ततान) जो अपने तेज से पृथिवी और द्यु लोकों को तथा अन्तरिक्ष को विस्तृत करती है।

मंत्र का अभिप्राय है कि परमात्मा का तेज जो हिरण्यगर्भ में वैश्वानर अग्नि बन जाता है, वह अग्नि अजर है और वह प्रयुक्त होती है यज्ञ करनेवाले देवताओं द्वारा। यज्ञ है सृष्टि-रचना का कार्य, और इसको करनेवाले देवता हैं आपः, जो असाम्यावस्था के परमाणुओं से बने हैं। वे ही सृष्टि-रचना कर रहे हैं। मंत्र का ऋषि उस अग्नि की स्तुति अर्थात् उसके गुण-कर्म-स्वभाव का चिन्तन और वर्णन करता है। यह अग्नि अपने तेज (शक्ति) से आकाश, पृथिवी और अन्तरिक्ष को विस्तृत करती है, अर्थात् उसका निर्माण करती है।

इसका अगला मंत्र है—

यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टो यं समाञ्जन्नाज्येना वृणानाः।
स पतत्रीत्वरं स्था जगद्यच्छ्वात्रमग्निरकृणोज्जातवेदाः॥

(ऋ० १०-८८-४)

पदच्छेद—यः, होता, आसीत्, प्रथमः, देव-जुष्टः, यम्, सम्-आञ्जन, आज्येना, वृणानाः।

सः, पतत्रि, इत्वरम्, स्थाः, जगत्, यत्, श्वात्रम्, अग्निः, अकृणोत् जातवेदाः॥

मन्त्रार्थ—(यः देव-जुष्टः प्रथमः होता आसीत् यम् वृणानाः आज्येन समाञ्जन्) जो देवताओं से सेवित पहला होता (यज्ञ करनेवाला हुआ, जिसको यज्ञ करनेवाले ने) घी (श्रेष्ठ सामग्री) से (सृष्टिरचना-यज्ञ को) संयुक्त किया;

(सः जातवेदाः अग्निः पतत्रि इत्वरम् स्थाः जगत् यत् श्वात्रम् अकृणोत्) वह उत्पन्न हुओं को जाननेवाली अग्नि पक्षी की भाँति गमनशील स्थावर और जगत्-पदार्थों को शीघ्र बनाती है। (जो जातवेदाः-अग्नि बनाती है।)

अगला मंत्र है—

यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्नतिष्ठो अग्ने सह रोचनेन।
तं त्वाहेम मतिभिर्गीर्भिरुक्थैः स यज्ञियो अभवो रोदसिप्राः॥

(ऋ० १०-८८-५)

पदच्छेद—यत्, जातवेदः, भुवनस्य, मूर्धन्, अतिष्ठः, अग्ने, सह, रोचनेन।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तम्, त्वा, अहेम, मति-भिः, गीःभिः, उक्थैः, सः, यज्ञियः, अभवः, रोदसि-प्राः ॥

मन्त्रार्थ—(जात-वेदः अग्ने यत् भुवनस्य मूर्धन् रोचनेन सह अतिष्ठः) हे पैदा हुए को जाननेवाली अग्नि! जो चमकने के साथ भुवन के मस्तक पर ठहरी हुई;

(तम् त्वा मतिभिः, गीः-भिः उक्थैः अहेम) उस तुम्नको (जातवेदः) बुद्धि और स्तुतियों द्वारा, वेदमंत्रों द्वारा (हम) प्राप्त होते हैं;

(सः रोदसिप्राः यज्ञियः अभवः) वह द्यौ और पृथिवी को पूर्ण करनेवाली (वैश्वानर अग्नि) यज्ञ के योग्य हो गई।

मंत्र का अभिप्राय है कि सूर्य बनता है हिरण्यगर्भ में। इसके लिए उसे, वेदमंत्रों के कहे अनुसार, बुद्धि से जानकर और उसकी स्तुति कर अर्थात् उसके गुण-कर्म-स्वभाव के अनुसार हम इस ज्ञान को प्राप्त करते हैं। वह ज्ञान यह है कि इस वैश्वानर अग्नि के योग से सूर्य यज्ञ करने के योग्य हो गया। अभिप्राय यह है कि सूर्य जो कुछ कार्य कर रहा है, वह वैश्वानर के सहयोग से कर रहा है।

इसी सूक्त के कुछ मंत्र और भी ज्ञातव्य हैं—

यं देवासोऽजनयन्ताग्निं यस्मिन्नाजुहवुर्भुवनानि विश्वा।
सो अर्चिषा पृथिवीं द्यामुतेमामृजूयमानो अतपन्महित्वा॥

(ऋ० १०-८८-९)

पदच्छेद—यम्, देवासः, अजनयन्त, अग्निम्, यस्मिन्, आ, अजुहवुः भुवनानि, विश्वा।

सः, अर्चिषा, पृथिवीम्, द्याम्, उत, इमाम्, ऋजु-यमानः, अतपत्, महित्वा॥

मंत्रार्थ—(यं अग्निं देवासः अजनयन्त यस्मिन् विश्वा भुवनानि आ अजुहवुः) जिस सूर्य की अग्नि को देवता (आपः) उत्पन्न करते हैं और जिसमें समस्त भुवनों को हवन कर रहे हैं (अपना योगदान दे रहे हैं);

(सः अर्चिषा महि-त्वा पृथिवीम् उत् द्यां इमाम् ऋजु-यमानः अतपन्) वह (अग्नि) अपने तेज और महानता से पृथिवी और द्युलोक को ऋजु-गति से चलाती है और यह सूर्य तपता (गर्म हो जाता है)।

जगत् में पदार्थों की गति अण्डाकार है। यही अभिप्राय है ऋजुः गति से। ये भुवन सूर्य के चारों ओर घूमने लगते हैं।

सूक्त का अगला मंत्र है—

स्तोमेन हि दिवि देवासो अग्निमजीजनञ्छक्तिभी रोदसिप्राम्।
तमू अकृण्वन् त्रेधा भुवे कं स ओषधीः पचति विश्वरूपाः॥

(ऋ० १०-८८-१०)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—अप, त्ये, तायवः, यथा नक्षत्रा, यन्ति, अक्तु-भिः।
सूराय, विश्व-चक्षसे॥

मन्त्रार्थ—(यथा तायवः, अप त्ये अक्तु-भिः सूराय विश्वा-चक्षसे नक्षत्रा यन्ति) जैसे चोर (भाग जाता है) वैसे ही रात्रि के चले जाने से सूर्य के चमकने से नक्षत्र चले जाते हैं।

अभिप्राय यह है कि रात में जाने पर और सूर्य के निकल आने पर गगन में तारागण विलुप्त हो जाते हैं अर्थात् दिखाई नहीं देते।

अगला मंत्र है—

अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो जनाँ अनु।
भ्राजन्तो अग्नयो यथा॥ (ऋ० १-५०-३)

पदच्छेद—अदृश्रम्, अस्य, केतवः, वि, रश्मयः, जनान्, अनु।
भ्राजन्तः अग्नयः, यथा॥

मन्त्रार्थ—(अस्य केतवः रश्मयः जनान् अनु वि अदृश्रम् यथा अग्नयः भ्राजन्तः) इस (सूर्य) की चमकती हुई किरणें लोगों को क्रमशः विशेष रूप से देखती हैं, जैसे चमकती हुई अग्नियाँ।

मंत्र का अभिप्राय है जैसे चमकती हुई अग्नियाँ दिखाई देती हैं, वैसे ही सूर्य की किरणें दिखाई देती हैं।

इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिष्कृदसि सूर्य।
विश्वमा भासि रोचनम्॥ (ऋ० १-५०-४)

पदच्छेद—तरणिः, विश्व-दर्शतः, ज्योतिः-कृत्, असि, सूर्य।
विश्वम्, आ, भासि, रोचनम्॥

मन्त्रार्थ—(सूर्य ज्योतिः-कृत् विश्व-दर्शतः तरणिः असि विश्वम् रोचनम् आ भासि) हे सूर्य, ज्योति उत्पन्न करनेवाले, सम्पूर्ण को देखनेवाले! (सबका) तर जाते हो। चमकते हुए को भाषित (प्रकट) करते हो।

अगला मंत्र है—

प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्ङुदेषि मानुषान्।
प्रत्यङ् विश्वं स्वर्दृशे॥ (ऋ० १-५०-५)

पदच्छेद—प्रत्यङ्, देवानाम्, विशः, प्रत्यङ्, उत, एषि, मानुषान्।
प्रत्यङ्, विश्वम्, स्वः, दृशे॥

मन्त्रार्थ—(देवानाम् विशः दृशे मानुषान् प्रत्यङ् उत एषि) देवताओं की सन्तान के प्रति, मनुष्यों के प्रति, विश्व के प्रति प्राप्त होता है, द्युलोक को देखने के लिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मंत्र का अभिप्राय यह है कि सूर्य देवताओं की सन्तान को उत्पन्न करता है, प्राप्त होता है, उनको प्रकट करता है, मनुष्यों को प्रकट करता है और सम्पूर्ण को प्रकट करता है।

इस पूर्ण सूक्त में सूर्य का सामान्य वर्णन ही है, जिससे सूर्य का पूर्ण सौर-मण्डल में पता चलता है।

अब हम कुछ मंत्र सूक्त १-११५ के दे रहे हैं।

इस सूक्त का प्रथम मंत्र इस प्रकार है—

चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः।
आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षं सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥

(१-११५-१)

पदच्छेद—चित्रम्, देवानाम्, उत्, अगात्, अनीकम्, चक्षुः, मित्रस्य, वरुणस्य, अग्नेः।

आ, अप्राः, द्यावापृथिवी इति, अन्तरिक्षम्, सूर्यः, आत्मा, जगतः, तस्थुषः, च॥

मन्त्रार्थ—(मित्रस्य वरुणस्य अग्नेः चक्षुः चित्रम् देवानाम् अनीकं उत् अगाद्) मित्र, वरुण और अग्नि की आँख विचित्र किरण-समूह उठाती है।

(द्यावापृथिवी अन्तरिक्षम् आ अप्राः सूर्यः जगतः तस्थुषः, च आत्मा) द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष को व्याप्त करता है। सूर्य जगत् और स्थावर पदार्थों का आत्मा (ऊर्जा) है।

मंत्र का अभिप्राय है कि मित्र, वरुण और अग्नि की आँख सूर्य है अर्थात् ज्योति है और इसमें से विचित्र प्रकार की किरणें उत्पन्न होती हैं।

ये द्युलोक, पृथिवी और अन्तरिक्ष में प्रकाश करती हैं तथा यह स्थावर और जगत्-पदार्थों की आभ्यन्तरिक शक्ति हैं।

सूक्त का अगला मंत्र है—

सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यो न योषामभ्येति पश्चात्।
यत्रा नरो देवयन्तो युगानि वितन्वते प्रति भद्राय भद्रम्॥

(ऋ० १-११५-२)

पदच्छेद—सूर्यः, देवीम्, उषसम्, रोचमानाम्, मर्यः, न, योषाम्, अभि, एति, पश्चात्।

यत्र, नरः, देव-यन्तः, युगानि, वि-तन्वते, प्रति, भद्राय, भद्रम्॥

मन्त्रार्थ—(सूर्यः रोचमानाम् देवीम् उषसम् पश्चात् अभि एति मर्यः न योषाम्) दिव्य सूर्य चमकती हुई ऊषा के पीछे ऐसे आता है जैसे किसी स्त्री के पीछे पुरुष आता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—स्तोमेन, हि, दिवि, देवासः, अग्निम्, अजीजनन्, शक्ति-भिः, रोदसिप्राम्।

तम्, ऊँइति, अकृण्वन्, त्रेधा, भुवे, कम्, सः, ओषधीः, पचति, विश्वरूपाः ॥

मन्त्रार्थ—(देवासः शक्ति-भिः रोदसिप्राम् अग्निं दिवि स्तोमेन हि अजीजनन्) देवों ने शक्तियों के द्वारा द्यौ-पृथिवी को भरनेवाली अग्नि को द्युलोक में स्तुतियों (वेदज्ञान के अनुसार) से निश्चय से उत्पन्न किया।

(तमू कम् त्रेधा भुवे अकृण्वन्) उसे सुखकारक त्रिगुणात्मक होने के लिए किया;

(सः विश्वरूपाः ओषधीः पचति) वह समस्त रूप की ओषधियों को पचाती है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि देवता अर्थात् आपः अपने में शक्ति के द्वारा उन सब पदार्थों को बनाते हैं, जो अन्तरिक्ष में और पृथिवी पर हैं। यह हुआ इन आपः से, त्रिगुणात्मक शक्ति के उत्पन्न होने से। उसी अग्नि ने सब प्रकार की औषधियों (वनस्पतियों) को बनाया। यह सभी शास्त्रों में वर्णित है कि वनस्पतियों के बीज अन्तरिक्ष में बने और फिर वहाँ से पृथिवी पर आए।

इसी सूक्त का अगला मंत्र है—

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि देवाः सूर्यमादितेयम्।
यदा चरिष्णू मिथुनावभूतामादित् प्रापश्यन् भुवनानि विश्वा॥

(ऋ० १०-८८-११)

पदच्छेद—यदा, इत्, एनम्, अदधुः, यज्ञियासः, दिवि, देवाः, सूर्यम् आदितेयम्।

यदा चरिष्णू, इति, मिथुनौ, अभूताम्, आत्, इत्, प्र, अपश्यन्, भुवनानि, विश्वा॥

मन्त्रार्थ—(यदा इत् आदितेयम् सूर्यम् एनम् यज्ञियासः, देवाः दिवि अदधुः) जब इस अदिति के पुत्र सूर्य को यज्ञ करने के योग्य देवताओं ने अन्तरिक्ष में स्थापित किया (देवताओं से अभिप्राय आपः से है।);

(यदा चरिष्णू मिथुनौ अभूताम् आद् इत् विश्वा भुवनानि प्र अपश्यन्) जब चरणशील (गति कर रहे) दोनों (सूर्य और वैश्वानर में) संयोग होता है, तो सम्पूर्ण भुवन उसे देखने लगते हैं।

अगला मंत्र है—

विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा वैश्वानरं केतुमह्नामकृण्वन्।
आ यस्ततानोषसो विभातीरपो ऊर्णोति तमो अर्चिषा यन्॥

(ऋ० १०-८८-१२)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पदच्छेद—विश्वस्मै, अग्निम्, भुवनाय, देवा:, वैश्वानरम्, केतुम्, अह्नाम्, अकृण्वन्।

आ, यः, ततान, उषसः, वि-भातीः, अपो इति, ऊर्णोति, तमः, अर्चिषा, यन्॥

मन्त्रार्थ—(देवा: विश्वस्मै भुवनाय वैश्वानरं अग्निं अह्नां केतुं अकृण्वन्) देवों ने सम्पूर्ण भुवन के लिए वैश्वानर अग्नि को, दिनों के प्रकट करनेवाले को बनाया।

(यः उषसः विभातीः अपः आ ततान) जिसने चमकती हुई प्रकाशमान आपाओं को फैलाया;

(यन् तमः अर्चिषा ऊर्णोति) और जो प्रकाश से अन्धकार को दूर करती हैं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि वैश्वानर अग्नि पूर्ण सौरमण्डल के लिए थी और सूर्य ने आपाओं को इसमें फैला दिया।

अगला मंत्र है—

वैश्वानरं कवयो यज्ञियासोऽग्निं देवा अजनयन्नजुर्यम्।
नक्षत्रं प्रत्नममिनच्चरिष्णु यक्षस्याध्यक्षं तविषं बृहन्तम्॥

(ऋ० १०-८८-१३)

पदच्छेद—वैश्वानरम्, कवयः, यज्ञियासः, अग्निम्, देवाः, अजनयन्, अजुर्यम्।

नक्षत्रम्, प्रत्नम् अमिनत् चरिष्णु, यक्षस्य, अधि-अक्षम्, तविषम्, बृहन्तम्॥

मन्त्रार्थ—(यज्ञियासः कवयः देवाः अजुर्यम् वैश्वानरम् अग्निम् अजनयन्) विद्वान्, यज्ञ करने की योग्यतावाले देवों (आपः) ने जरारहित वैश्वानर अग्नि को प्रस्फुटित किया।

(नक्षत्रं प्रत्नं चरिष्णु यज्ञस्य अध्यक्षं तविषं बृहन्तम् अमिनत्) पुराने चलायमान नक्षत्र का जो पूजनीय बलवान् आकाश का अध्यक्ष था, उसको निस्तेज कर दिया।

मंत्र का अभिप्राय है कि आपः यज्ञ (रचना-कार्य) करने के योग्य हैं, और ये नष्ट करने की भी योग्यता रखते हैं। पुराने चलते हुए नक्षत्रों को अपने महान् बल से अमिनत् (तेजहीन) कर देते हैं।

ऋग्वेद १-५० में सूर्य का सामान्य वर्णन है। वह इस प्रकार है—

अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा यन्त्यक्तुभिः।
सूराय विश्वचक्षसे॥ *(ऋ० १-५०-२)*

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(यत्र देव-यन्तः, नरः, युगानि भद्राय प्रति भद्रग वि-तन्वते) लोग युगों तक देव-कर्मों की इच्छा करते हुए (अपने) कल्याण के लिए भले कार्य करते हैं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि सूर्य का निर्माण और इसका कार्य युगों तक चलता है और उसके आश्रय लोग अपने कल्याण के लिए भले कार्य करते हैं।

सूर्य नित्य ऊषा के उपरान्त उदय होता है। स्त्री के पीछे पुरुष के जाने का कथन अलंकार मात्र है।

ऊषा से अभिप्राय हिरण्यगर्भ का प्रकाश है। इस प्रकाश के उपरान्त ही सूर्य की सृष्टि होती है—यह हम वैश्वानर अग्नि के वर्णन में बता चुके हैं।

सूक्त का अगला मंत्र इस प्रकार है—

भद्रा अश्वा हरितः सूर्य्यस्य चित्रा एतग्वा अनुमाद्यासः।
नमस्यन्तो दिव आ पृष्ठमस्थुः परि द्यावापृथिवी यन्ति सद्यः॥

(ऋ० १-११५-३)

पदच्छेद—भद्रा, अश्वाः, हरितः, सूर्यस्य, चित्राः एत-ग्वा, अनु-माद्यासः। नमस्यन्तः, दिवः, आ, पृष्ठम्, अस्थुः, परि, द्यावापृथिवी इति, यन्ति सद्यः॥

मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य भद्राः अश्वाः चित्राः अनु-माद्यासः एत-ग्वाः हरितः) सूर्य की कल्याणकारी विचित्र किरणें आनन्द देनेवाली विस्तार करती हैं।

(क्या विस्तार करती हैं? अपने गुणों और कर्मों का।)

(नमस्यन्तः दिवः पृष्ठम् आ अस्थुः द्यावा पृथिवी परि यन्ति सद्यः) सत्कार की जाती हुई द्यौ की पीठ पर स्थित हो जाती हैं। द्युलोक और पृथिवी तुरन्त परिक्रमा करने लगते हैं।

मंत्र का अभिप्राय है कि सूर्य की कल्याण करनेवाली किरणें जो विचित्र हैं, आनन्द देनेवाली हैं; द्यौ की पीठ पर स्थित हो जाती हैं और द्युलोक से पृथिवी की ओर जाने लगती हैं।

अगला मंत्र है—

तत् सूर्यस्य देवत्वं तन् महित्वं मध्या कर्तोर्विततं सं जभार।
यदेदयुक्त हरितः सधस्थादाद्रात्री वासस्तनुते सिमस्मै॥

(ऋ० १-११५-४)

पदच्छेद—तत्, सूर्यस्य, देव-त्वम्, तत्, महि-त्वम्, मध्या कर्तोः, वि-ततम्, सम्, जभार।

यदा, इत्, अयुक्त, हरितः, सध-स्थात्, आत्, रात्री, वासः, तनुते, सिमस्मै॥

मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य तत् देवत्वं तत् महित्वम् मध्या कर्तोः विततम् सम्

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

जभार) सूर्य का दिव्य मान अथवा महानता के कार्य के मध्य में फैले हुए को समेट लेता है।

(यदा इत् सध-स्थात् हरितः अयुक्त आत् रात्री वासः तनुते सिमस्मै) जब यह स्थिर स्थान से किरणों को अयुक्त (पृथक्) करता है, तब रात्रि सबको ढाँप लेती है।

यहाँ रात्रि का अभिप्राय प्रलय-काल है। सूर्य उस समय अपनी किरणों से असम्बद्ध हो जाता है और अन्धकार फैल जाता है।

सूर्य के कार्य से ही जगत् का कार्य चलता है।

सूक्त का अगला मंत्र है—

तन् मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे सूर्यो रूपं कृणुते द्योरुपस्थे।
अनन्तमन्यद् रुशदस्य पाजः कृष्णमन्यद्धरितः सं भरन्ति॥

(ऋ० १-११५-५)

पदच्छेद—तत्, मित्रस्य, वरुणस्य, अभि-चक्षे, सूर्यः रूपम्, कृणुते, द्योः, उप-स्थे।

अनन्तम्, अन्यत् रुशत्, अस्य, पाजः, कृष्णम्, अन्यत्, हरितः, सम्, भरन्ति॥

मन्त्रार्थ—(तत् मित्रस्य वरुणस्य अभि-चक्षे द्योः उप-स्थे सूर्यः रूपम् कृणुते) जब मित्र और वरुण के सामने आने पर आकाश में उपस्थित सूर्य रूप को बनाता है;

(अस्य अन्यत् कृष्णम् अन्यत् रुशत् अनन्तम् पाजः हरितः सम् भरन्ति) इसका दूसरा अन्धकारयुक्त, दूसरा चमकयुक्त है, अनन्त बलवान् किरणें सब स्थान पर भर जाती हैं।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि प्रलय के उपरान्त जब व्यक्त अवस्था बनती है तब मित्र और वरुण इसके सामने आते हैं और सूर्य का रूप बनता है। और जो यह पहले अन्धकारमय था, लाल हो चमक उठता है और इसकी अनन्त किरणें चारों ओर भर जाती हैं।

इससे अगला मंत्र है—

अद्या देवा उदिता सूर्यस्य निरंहसः पिपृता निरवद्यात्।
तन्नो मित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः॥

(ऋ० १-११५-६)

पदच्छेद—अद्य, देवा, उत्-इता, सूर्यस्य, निः, अंहसः, पिपृत, निः, अवद्यात्।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तत्, नः, मित्रः, वरुणः, ममहन्ताम्, अदितिः, सिन्धुः, पृथिवी, उत द्यौः ॥

मन्त्रार्थ—(सूर्यस्य उदिता अद्य देवा निः अंहसा निः अवद्यात् पिपृत) सूर्य के उदय होने पर (चमक उठने पर) उस समय किरणें पाप से युक्त (अन्धकार से बाहर) निन्दित से बाहर (अन्धकार से दूर) रक्षा करें (रक्षक होती हैं)।

(तत् मित्रः वरुणः अदितिः सिन्धुः पृथिवी उत द्यौः नः मामहन्ताम्) तब मित्र, वरुण, प्रकृति, अन्तरिक्ष, पृथिवी और द्युलोक हमारी पूजा करें। हमारी सेवा करें।

इस सूक्त में बताया है कि हिरण्यगर्भ में जब पृथिवी अर्थात् ठोस अंश पृथक् हुआ तो सूर्य ऐसा ही था जैसे पृथिवी अप्रकाशित है। पृथिवी के परमाणुओं में से बने मित्र और वरुण एक पार्थिव पिण्ड के समक्ष आए तो यह चमक उठा और इसमें से अनन्त किरणें निकलने लगीं और पूर्ण भुवन (सूर्यमण्डल) प्रकाशित हो उठा। हम अन्धकार से मुक्त हो गए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

सूर्य-सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिकों की खोज

सौरमण्डल में सूर्य सबसे अद्‌भुत नक्षत्र है। यह स्वतः चमकनेवाला और अपार ऊष्मा प्रसारित करनेवाला है। अतः इसका वर्तमान खोज से बाहर रह सकना असम्भव था।

वर्तमान वैज्ञानिकों की पूर्ण खोज सूर्य की भूमि पर पहुँचनेवाली रश्मियों के विश्लेषण पर ही निर्भर है।

मनुष्य-कृत दो यंत्रों ने सूर्य की प्रकृति को जानने में बहुत सहायता की है। एक है दूरबीन और दूसरी है वर्ण-क्रमदर्शी।

दूरबीन से तो दूर की वस्तु बड़ी करके देखी जाती है और वर्णक्रमदर्शी से सूर्य से आनेवाली प्रकाश-किरणों का विश्लेषण किया गया है। इन दोनों यंत्रों की सहायता से पृथक्-पृथक् और इन दोनों को इकट्‌ठा करके सूर्य की बहुत-सी बातों का अनुमान लगाया गया है।

वर्णक्रमदर्शी जो प्रकाश का विश्लेषण कर देती है, उस विश्लेषण को दूरबीन से देखने पर प्रकाश की देखे जाने की सीमा के बाहर भी कुछ रेखाएँ प्रकट होती हैं। उन रेखाओं पर गर्मी, सर्दी और विद्युत् अथवा चुम्बकीय आकर्षण-विकर्षण का प्रभाव देखा गया है। वैसे ही परिवर्तन सूर्य से आनेवाली प्रकाश-रेखाओं में देखकर सूर्य में हो रहे कार्य का अनुमान लगाया जाता है।

यह विद्या कुछ अधिक गहन होने से और यहाँ स्थानाभाव के कारण, वर्णन नहीं की जा सकती। हम इन परीक्षणों से अब तक जाने गए परिणामों का ही उल्लेख यहाँ कर रहे हैं। वे इस प्रकार हैं—

(१) सूर्य आँख को चौंधिया देनेवाला प्रकाश-पिण्ड है।

(२) यह एक श्वेत चमकती हुई चकत्ती-सी है।

(३) इसके दूर-दूर किनारे से आनेवाली किरणें मनुष्य की आँख पर ८.७९° का कोण बनाती हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(४) सूर्य पृथिवी से लगभग ९३,०००,००० मील (१४९,६६४,९०० कि०मी०) दूर है।

(५) सूर्य का व्यास (डायमीटर) पृथिवी के व्यास से १०९ गुणा है।

(६) सूर्य का भार $(२\times१०)^{२७}$ टन है। यह पृथिवी से ३,३३,००० गुणा अधिक है।

(७) सूर्य का घनत्व (डेन्सिटी) मध्य में पृथिवी पर एक पत्थर के घनत्व से आठ गुणा अधिक और किनारों पर यह वायु से भी कम है। औसत घनत्व जल से १·४१ गुणा है।

(८) सूर्य अपने पूर्ण मण्डल के भुवनों तथा नक्षत्रों-सहित आकाशगंगा में चल रहा है। पूर्ण आकाशगंगा के नक्षत्रों की भाँति सौर-मण्डल भी एक केन्द्र-बिन्दु के चारों ओर घूम रहा है।

(९) सूर्य में काले धब्बे दिखाई देते हैं जो गति करते प्रतीत होते हैं। ये विलुप्त भी हो जाते हैं और पुनः प्रकट भी हो जाते हैं। यह देखा गया है कि ये काले पिण्ड चुम्बकीय शक्ति रखते हैं।

(१०) सूर्य के धब्बे वास्तव में काले अर्थात् अन्धकारमय नहीं। वरन् ये मध्य में प्रकाशयुक्त हैं और किनारे पर छायावाले हैं, परन्तु सूर्य के उग्र प्रकाश के कारण काले दिखाई देते हैं। ये काले धब्बे गुम हो जाते हैं और फिर प्रकट होते हैं। इनके गुम होने का समय भिन्न-भिन्न है।

(११) सूर्य अपने धुरे पर घूम रहा है। परन्तु ध्रुवों के समीप इसके घूमने की गति कम है और विषुवत् रेखा पर इसकी गति अधिक है। विषुवत् रेखा पर यह पूर्ण चक्कर २४.६५ दिन में लगाता है। दिन पृथिवी पर के २४ घंटे का ले रहे हैं।

(१२) जब सूर्य को पूर्ण ग्रहण लगा होता है तो इसके किनारे पर से लपटें निकलती दिखाई देती हैं।

(१३) वर्णक्रमदर्शी से इसका प्रकार देखने पर पता चलता है कि सूर्य पर की जलती हुई गैसों (वस्तुओं) में क्या-क्या पदार्थ जल रहे हैं।

(१४) सूर्य के मध्य में गर्मी २,००,००० डिग्री सेन्टीग्रेट है और बाहरी सतह पर ४,२०० डिग्री सेन्टीग्रेट है।

(१५) अभी तक इस बात का प्रमाण नहीं मिला कि सूर्य ठण्डा हो रहा है अथवा गर्म हो रहा है। इससे अनुमान लगाया जाता है कि जितनी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

शक्ति इसमें से बाहर फेंकी जा रही है, उतनी शक्ति इसके भीतर विघटन से उत्पन्न हो रही है।

वैसे तो कुछ और भी गुण तथा लक्षण पता किए गए हैं, परन्तु वे सब भी उसी प्रकार के हैं जैसे ऊपर बताए हैं।

जो बात हमने इन लक्षणों को पढ़कर उनकी तुलना वेद में वर्णन से करने पर जानी है, वह यह है कि वर्तमान विज्ञान का वर्णन उसके आकार-विस्तार से सम्बन्ध रखता है और वेद का वर्णन सूर्य की बनावट और उसमें शक्ति के स्रोत से सम्बन्ध रखता है।

वेद-विज्ञान के अनुसार एक अनादि स्रोत शक्ति का है। वह स्रोत परमात्मा है। शक्ति के अनादि स्रोत का नाम अग्नि कहा है। उससे ही सूर्य की बनावट का वर्णन किया है।

उस आदि-शक्ति के प्रकृति के परमाणुओं पर आघात से परमाणु-शक्ति प्रकट हो जाती है। पहले यह संतुलित होती है और बाद में यह बहिर्मुख हो जाती है। तब पड़ोस के परमाणुओं में आकर्षण-विकर्षण होने से परमाणुओं के निबन्धन (ग्रुप्स) बन जाते हैं। ये निबन्धन तीन प्रकार हैं और वैदिक भाषा में आप: कहाते हैं। वेद कहता है कि ये आप: सूर्य में निरन्तर अनादि अग्नि के बल से प्रकृति के परमाणुओं में से बना-बनाकर सूर्य में डाले जा रहे हैं और उनके तेज से सूर्य में उष्मा और प्रकाश उत्पन्न हो रहा है।

यह अनादि शक्ति परमाणु पर आरूढ़ होती है तो इसका नाम वैश्वानर अग्नि हो जाता है, और जब तक यह परमाणु पर आरूढ़ रहती है, परमाणु की शक्ति बहिर्मुख रहती है और तब तक रचना चलती रहती है। तब ईश्वर की इच्छा से यह शक्ति परमाणु पर से हट जाती है तो प्रलय हो जाती है। सबसे पहले सूर्य ही ताप और ओजहीन होता है।

दोनों वर्णन एक-दूसरे से पृथक् हैं। वर्तमान विज्ञान इसका इस प्रकार वर्णन करता है—

It has been realized for many years that the observed rate of energy-loss by leaking of radiation from the solar surface must be balanced rather exactly by the rate of energy generation in the interior, since there is little evidence that the sun is heating or cooling rapidly.

(Enc. Britt. (1967) vol. 21, page 418)

यहाँ कहा है कि भीतर से शक्ति का उद्भव हो रहा है। वह भीतर में कहाँ से आई है? वह अग्नि के प्रभाव से प्रकृति के परमाणुओं की भीतरी शक्ति का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आविर्भाव ही है। विशाल व्योम में उपस्थित प्रकृति के परमाणु ही सूर्य में ईंधन बन रहे हैं।

युक्ति से वर्तमान विज्ञान की बात ठीक प्रतीत नहीं होती। क्योंकि, यदि शक्ति सूर्य के भीतर के पदार्थ के विघटन से निकल रही है तो सूर्य का शक्ति-भण्डार घटते जाना चाहिए। यह सिद्ध नहीं हो पा रहा है।

सूर्य से निकलनेवाली शक्ति लाखों वर्षों से और वर्तमान विज्ञान की गणना से साठ-सत्तर हजार वर्ष से मनुष्य के जीवन के लिए उपयुक्त सिद्ध हो रही है। इससे पृथिवी पर प्राणी-सृष्टि निरन्तर चल रही है।

●●●

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषयानुक्रमणिका

अग्निना रयिमश्नवत्	—ऋ० १-१-३	३८
अग्निमीळे पुरोहितम् यज्ञस्य	—ऋ० १-१-१	१०,३५
अग्नि: पूर्वेभिऋर्षिभिरीड्यो	—ऋ० १-१-२	३७
अग्निर्होता कविक्रतु: सत्यश्चित्रश्रवस्तम: ।	—ऋ० १-१-५	४१
अग्ने यं यज्ञमध्वरं विश्वत: परिभूरसि॥	—ऋ० १-१-४	४०
अच्छिद्रा सूनो सहसो	—ऋ० १-५८-८	५७
अत एव न देवता भूतं च॥	—ब्र० सू० १-२-२७	४०
अतिष्ठन्तीनामनिवेशनानाम्	—ऋ० १-३२-१०	१०६
अथ निर्वचनम्। तद्येषु पदेषु	—निरुक्त २-१	१८
अथा ते अन्तमानां विद्याम्	—ऋ० १-४-३	९७
अथातो दैवतम्। तद्यानि नामानि	—यास्क निरुक्त० ७-१	११
अथातो मध्यस्थाना देवता: । तासाम्	—यास्क० १०-१	१३५
अदर्शि गातुरुरवे वरीयसी	—ऋ० १-१३६-२	१३०
अदृश्रमस्य केतवो वि रश्मयो	—ऋ० १-५०-३	१६०
अद्या देवा उदिता सूर्यस्य	—ऋ० १-११५-६	१६३
अप त्ये तायवो यथा नक्षत्रा	—ऋ० १-५०-२	१५९
अपादहस्तो अपृतन्यदिन्द्रम्	—ऋ० १-३२-७	१०४
अपिहितस्य अर्थस्य परोक्षवृत्तौ—पं० भगवद्दत्त	—निरुक्त भाष्य-२-१	१७
अयोद्धेव दुर्मद आ हि	—ऋ० १-३२-६	१०३
....अयं मन्त्रार्थ चिन्ताऽभ्यूहोऽभ्यूढ:	—निरुक्त० १३-१२	१३
अयं मित्राय वरुणाय शंतम:	—ऋ० १-१३६-४	१३१
अयं वां मधुमत्तम: सुत:	—ऋ० १-४७-१	१४८
अर्वाञ्चा वां सप्रयोऽध्वरश्रिय:	—ऋ० १-४७-८	१५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अश्विना पुरुदंससा नरा	—ऋ० १-३-२	१४०
अश्विना मधुमत्तमं पातम्	—ऋ० १-४७-३	१४९
अश्विना यज्वरीरिषो द्रवत्	—ऋ० १-३-१	१३९
अश्व्यो वारो अभवस्तदिन्द्र	—ऋ० १-३२-१२	१०७
असद्वा इदमग्र आसीत्। तदाहुः	—शत० ब्रा० ६-१-१-१	९३
असि यमो अस्यादित्यो	—ऋ० १-१६३-३	२९
असि सोमेन समया विपृक्त	—ऋ० १-१६३-३ (२)	२९
असि यमो अस्यादित्यो	—ऋ० १-१६३-३ (१)	२९, ४८
अस्य पीत्वा शतक्रतो	—ऋ० १-४-८	९९
अहन्नहिं पर्वते शिश्रियाणम्	—ऋ० १-३२-२	१०१
अहन् वृत्रं वृत्रतरं व्यंसमिन्द्रो	—ऋ० १-३२-५	१०३
अहेर्यातारं कमपश्य इन्द्र हृदि	—ऋ० १-३२-१४	१०८
आत्मानं ते मनसारादजानामवो	—ऋ० १-१६३-६	५२
आ धावता सुहस्त्यः शुक्रा	—ऋ० ९-४६-४	१६
आ नासत्या गच्छतं हूयते	—ऋ० १-३४-१०	१४७
आ सूर्ये न रश्मयो ध्रुवासो	—ऋ० १-५९-३	६४
आ स्वमद्म युवमानो	—ऋ० १-५८-२	५४
इतीमानि चत्वारि पदजातान्य	—यास्क निरु० १-१२	१५
इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निम्	—ऋ० १-१६४-४६	६०, ६६
इन्द्र वायु इमे सुता उप	—ऋ० १-२-४	१३५
इन्द्रस्य नु वीर्याणि प्र वोचम्	—ऋ० १-३२-१	१००
इन्द्रोयातोऽवसितस्य राजा	—ऋ० १-३२-१५	१०९
इमा ते वाजिन्नवमार्जनानीमा	—ऋ० १-१६३-५	५१
उक्थेभिरर्वागवसे पुरूवसू	—ऋ० १-४७-१०	१५२
उत त्या यजता हरी कुमारात्	—ऋ० ४-१५-८	८१
उत ब्रुवन्तु नो निदो निरन्यतः	—ऋ० १-४-५	९८
उतेव मे वरुणश्छन्त्स्यर्वन्	—ऋ० १-१६३-४	६९
उप त्वाग्ने दिवेदिवे दोषावस्तर्धिया वयम्	—ऋ० १-१-७	४२
उप नः सवना गहि सोमस्य	—ऋ० १-४-२	९६
ऊती देवानां वयमिन्द्रवन्तो	—ऋ० १-१३६-७	१३३
एकस्यात्मनोऽन्ये देवाः	—यास्क निरुक्त ७-४	२७, ९२
एतत् त्यत् त इन्द्रियमचेति	—ऋ० ६-२७-४	७६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

एमाशुमाशवे भर यज्ञश्रियम्	—ऋ० १-४-७	९८
एष वां देवावश्विना कुमारः	—ऋ० ४-१५-९	८१
क्राणा रुद्रेभिर्वसुभिः पुरोहितो	—ऋ० १-५८-३	५४
क्व१त्री चक्रा त्रिवृतो रथस्य	—ऋ० १-३४-९	१४६
गीर्णं भुवनं तमसापगूळ्हम्	—ऋ० १०-८८-२	१५५
चित्रं देवानामुदगादनीकम्	—ऋ० १-११५-१	१६१
ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्	—ऋ० १-१३६-३	१३०
····त इद्धाः सप्त नाना	—शत० ब्रा० ६-१-१-२	९३
ततो मरुतो सृजन्-ईशानमुखान्॥	—जै० ब्रा० ३-३८१	१९
तत्खल्वाहुः कतिभ्यस्तु—	—बृहद्दे० १-२३	९
तत् सूर्यस्य देवत्वं तन् महित्वम्	—ऋ० १-११५-४	१६२
तद्धितांस्तदभिप्रायान्	—बृहदे० १-३	१२
तन् मित्रस्य वरुणस्याभिचक्षे	—ऋ० १-११५-५	१६३
तपुर्जम्भो वन आ वातचोदितो	—ऋ० १-५८-५	५५
तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र	—ऋ० १०-८२-६	७१
तरणिर्विश्वदर्शतो ज्योतिः	—ऋ० १-५०-४	१६०
····तास्त्रिविद्या ऋचः। परोक्षकृतः	—यास्क निरुक्त० ७-१	२४
तिस्र एव देवता इति नैरुक्ताः	—निरुक्त ७-५	३१
तेऽब्रुवन्। न वाऽइत्थंसन्तः	—शत० ब्रा० ६-१-१-३	९४
तेन नासत्या गतं रथेन	—ऋ० १-४७-९	१५२
दधुष्ट्वा भृगवो मानुषेष्वा	—ऋ० १-५८-६	५६
दस्रा युवाकवः सुता नासत्या	—ऋ० १-३-३	१४०
दासपत्नीरहिगोपा अतिष्ठन्	—ऋ० १-३२-११	१०७
दिवश्चित् ते बृहतो जातवेदो	—ऋ० १-५९-५	९५
देवेभिर्न्विषितो यज्ञियेभिरग्निम्	—ऋ० १०-८८-३	१५५
देवीं वाचमजनयन्त देवास्तां	—ऋ० ८-१००-११	२३
द्वयां अग्ने रथिनो विंशतिम्	—ऋ० ६-२७-८	७९
द्यावा चिदस्मै पृथिवी नमेते	—ऋ० २-१२-१३	१२३
नदं न भिन्नममुया शयानम्	—ऋ० १-३२-८	१०४
नमस्ते प्राण क्रन्दाय	अथर्व० ११-४-२	४२
नमो दिवे बृहते रोदसीभ्याम्	—ऋ० १-१३६-६	१३२
न मृत्युरासीदमृतं न तर्हि	—ऋ० १०-१२९-२	७२

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

न हि कश्चिदविज्ञा याथा—	—बृहदे० १-४	१२
न हि वामस्ति दूरके यत्रा	—ऋ० १-२२-४	१४१
नासदासीन्नो सदासीत् तदानीम्	—ऋ० १०-१२९-१	७२
नास्मै विद्युन्न तन्यतुः सिषेध	—ऋ० १-३२-१३	१०८
नीचावया अभवद् वृत्रपुत्रेन्द्रो	—अ० १-३२-९	१०५
नु चित्सहोजा अमृतो नि तुन्दते	—ऋ० १-५८-१	५३
····(अग्नि) परमेश्वरं भौतिकं वा	—ऋ० १-१-१ व्याख्या म० दयानन्द	६०
····नु त्वं काप्य तत् सूत्रं। येनाथं	—वृ० उप० ३-७-१	१३७
परेहि विग्रमस्तृतमिन्द्रम्	—ऋ० १-४-४	९८
परोक्षकृताः प्रत्यक्षकृताश्च	—यास्क निरुक्त ७-३	२४
पूषा त्वेतश्च्यावयतु प्र	—ऋ० १०-१७-३	३३
प्रत्यङ् देवानां विशः प्रत्यङ्	—ऋ० १-५०-५	१६०
प्र नू महित्वं वृषभस्य वोचम्	—ऋ० १-५९-६	६५
प्र सु ज्येष्ठं निचिराभ्याम्	—ऋ० १-१३६-१	१२९
प्राणाय नमो यस्य सर्वमिदम्	—अथर्व० ११-४-१	३९
प्रातर्युजा वि बोधयाश्विनावेद	—ऋ० १-२२-१	१४०
पृष्टो दिवि पृष्टो अग्निः पृथिव्याम्	—ऋ० १-९८-२	६१
बोधद्यन्मा हरिभ्यां कुमारः	—ऋ० ४-१५-७	८०
बृहती इव सूनेव रोदसी	—ऋ० १-५९-४	६४
भद्रा अश्वा हरितः सूर्य्यस्य	—ऋ० १-११५-३	१६२
भवा वरूथं गृणते विभावो	—ऋ० १-५८-९	५७
मनुष्य वा ऋषिषूत्क्रामत्सु	—निरुक्त १३-१२	१४
महद्दीर्घवद्वा ह्रस्व परिमण्डलाभ्याम्॥	—ब्र० सू० २-२-११	५०
····महाभाग्याद् देवताया एक आत्मा	—यास्क निरुक्त ७-४-२६	९२
मूर्धा दिवो नाभिरग्निः पृथिव्या	—ऋ० १-५९-२	६३
····माहाभाग्याद् देवताया एक आत्मा	—निरुक्त० ७-४	२७
यज्जातवेदो भुवनस्य मूर्धन्	—ऋ० १०-८८-५	१५६
....यथो एतत्पौरुषविधिकैरङ्गैः	—यास्क० ७-७	३२
यदक्रन्दः प्रथमं जायमान	—ऋ० १-१६३-१	२९, ४७
यदिन्द्राहन् प्रथमजामहीनाम्	—ऋ० १-३२-४	१०२
यदुदीरत आजयो धृष्णवे	—ऋ० १-८१-३	६९

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यदेदेनमदधुर्यज्ञियासो दिवि	—ऋ० १०-८८-११	१५८
यदङ्ग दाशुषे त्वमग्ने भद्रं करिष्यसि।	—ऋ० १-१-६	४१
यद्वाग्वदन्त्यविचेतनानि राष्ट्री	—ऋ० ८-१००-१०	२२
यन्नासत्या परावति यद् वा	—ऋ० १-४७-७	१५१
यमेनदत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र	—ऋ० १-१६३-२	२९, ४८
यस्मान्न ऋते विजयन्ते जनासो	—ऋ० २-१२-९	१२१
यस्य गावावरुषा सूयवस्यू	—ऋ० ६-२७-७	७९
यस्याश्वासः प्रदिशि यस्य गावो	—ऋ० २-१२-७	१२०
याभिः कण्वमभिष्टिभिः प्रावतम्	—ऋ० १-४७-५	१५०
या वां कशा मधुमत्यश्विना	—ऋ० १-२२-३	१४१
या सुरथा रथीतमोभा देवा	—ऋ० १-२२-२	१४१
येनेमा विश्वा च्यवना कृतानि	—ऋ० २-१२-४	११८
यैस्त्वग्निरिन्द्रः सोमश्च वायुः	—बृहदे० १-८२	२६
यो जात एव प्रथमो मनस्वान्	—ऋ० २-१२-१	१०, ११६
यो मित्राय वरुणायाविधज्जनो	—ऋ० १-१३६-५	१३२
यो रध्रस्य चोदिता यः कृशस्य	—ऋ० २-१२-६	१२०
यो हत्वाहिमरिणात् सप्त	—ऋ० २-१२-३	११७
यो होतासीत् प्रथमो देवजुष्टः	—ऋ० १०-८८-४	१५६
यं क्रन्दसी संयती विह्वयेते	—ऋ० २-१२-८	१२१
यं देवासोऽजनयताग्निम्	—ऋ० १०-८८-९	१५७
यं शम्बरं पर्वतेषु क्षियन्तम्	—ऋ० २-१२-११	१२१
यं स्मा पृच्छन्ति कुह सेति	—ऋ० २-१२-५	११९
यः शश्वतो मह्येनो दधानान्	—ऋ० २-१२-१०	१२२
यः सुन्वते पचते दुध्र आ चिद्	—ऋ० २-१२-१५	१२५
यः सुन्वन्तमवति यः पचन्तम्	—ऋ० २-१२-१४	१२४
यः सप्तरश्मिर्वृषभस्तुविष्मान्	—ऋ० २-१२-१२	१२३
यः पृथिवीं व्यथामानामदृंहद्	—ऋ० २-१२-२	११६
राजन्तमध्वराणां गोपामृतस्य	—ऋ० १-१-८	४२
रोदसी मरुतो देवाः	—बृहद्दे० १-८३	२६
वधीदिन्द्रो वरशिखस्य	—ऋ० ६-२७-५	७७
वया इदग्ने अग्नयस्ते अन्ये	—ऋ० १-५९-१	६३
वायविन्द्रश्च चेतथः सुतानाम्	—ऋ० १-२-५	१३६

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वायविन्द्रश्च सुन्वत आ यातम्	—ऋ० १-२-६	१३७
वि वातजूतो अतसेषु तिष्ठते	—ऋ० १-५८-४	५५
विश्वस्मा अग्निं भुवनाय देवा	—ऋ० १०-८८-१२	१५८
विश्वे च देवाः सविता त्वष्टा	—बृहदे० १-८४	२६
वेदितव्यं दैवतं हि मन्त्रे....	—बृहद्दे० १-२	१२
वैश्वानर तव तत् सत्यमस्त्वस्मान्	—ऋ० १-९८-३	६२
वैश्वानरस्य सुमतौ स्याम राजा	—ऋ० १-९८-१	६१
वैश्वानरो महिम्ना विश्वकृष्टिः	—ऋ० १-५९-७	६६
वैश्वानरं कवयो यज्ञियासो	—ऋ० १०-८८-१३	१५९
वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात् ॥	—ब्र० सू० १-२-२४	४०
वृक्षे वृक्षे नियता मीमयद् गौस्ततो	—ऋ० १०-२७-२२	१६
वृषायमाणोऽवृणीत सोमम्	—ऋ० १-३२-३	१०२
त्रिंशच्छतं वर्मिण इन्द्र साकम्	—ऋ० ६-२७-६	७८
सऽएव पुरुषः प्रजापतिरभवन्	—शत० ब्रा० ६-१-१-५	९४
सत्त्वरजस्तमसां साम्यावस्था प्रकृतिः ।	—सां० द० १-६१	४६
सत्त्वान्यमूर्तान्यपि च	—बृहद्देव० १-८१	२६
वैश्वानरं कवयो यजियासोऽग्निम्	—ऋ० १०-८८-१३	१५९
स नः पितेव सूनवेऽग्ने	—ऋ० १-१-९	४३
स होवाच वायुर्वै गौतम	—बृ० उप. ३-७-२	१३८
समाने अहन् त्रिरवद्यगोहना	—ऋ० १-३४-३	१४३
स योऽयं मध्ये प्राणः एषऽएवेन्द्र	—शत० ६-१-१-२	११, ५९, ९३
सर्वाण्येतानि नामानि	—बृहद्दे० १-२७	१५
सुदासे दस्रा वसु बिभ्रता रथे	—ऋ० १-४७-६	१५०
सुरूप कृत्नुमूतये सुदुघामिव	—ऋ० १-४-१	९६
सूर्यो देवीमुषसं रोचमानां मर्यः	—ऋ० १-११५-२	१६१
स्तुताः पृथक् पृथक् स्वैः स्वैः	—बृहदे० १-८५	२६
स्तोतृभिर्देवता नाम्ना—	—बृहद्दे० १-२२	९
स्तोमेन हि दिवि देवासो	—ऋ० १०-८८-१०	१५७
स्मर्यमाणमनुमानं स्यादिति ॥	—ब्र० सू० १-२-२५	४०
हविष्पान्तमजरं स्वर्विदि दिविस्पृशि	—ऋ० १०-८८-१	१५४
होतारं सप्त जुह्वो३यजिष्ठम्	—ऋ० १-५८-७	५६

Central Library Gurukula Kangri (Deemed...) Haridwar 167387

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विषधस्थे बर्हिषि विश्ववेदसा	—ऋ० १-४७-४	१५०
त्रयः पवयो मधु वाहने रथे	—ऋ० १-३४-२	१४३
त्रितो गुह्येन व्रतेन। असि सोमेन····	ऋ० १-१६३-३	१९
त्रिरश्विना सिन्धुभिः सप्तमातृभिः	—ऋ० १-३४-८	१४६
त्रिर्नो अश्विना दिव्यानि भेषजा	—ऋ० १-३४-६	१४५
त्रिर्नो अश्विना यजता दिवेदिवे	—ऋ० १-३४-७	१४५
त्रिर्नो रयिं वहतमश्विना युवम्	—ऋ० १-३४-५	१४४
त्रिर्वर्तियातं त्रिरनुव्रते जने	—ऋ० १-३४-४	१४४
त्रिबन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा	—ऋ० १-४७-२	१४९
त्रिश्चिन् नो अद्या भवतं नवदेसा	—ऋ० १-३४-१	१४२
त्रिंशच्छतं वर्मिणइन्द्रं साकम्	ऋ० ६-२७-६	७८
त्रीणि त आहुर्दिवि बन्धनानि	—ऋ० १-१६३-४	१९, २९, ५१

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

References

1. A. A. Mecdonell—Vedic Index of Name and Subject 29
The Vedic Mythology 44, 68, 69, 83

२. महर्षि स्वामी दयानन्द ६०

३. डॉ० सूर्यकान्त—बैदिक देव शास्त्र ७०

४. श्री सत्यकेतु विद्यालंकार—प्राचीन भारतीय इतिहास में वैदिक युग ७३

5. Encyclopaedia Brittanica (1969) Vol. 6 85
Encyclopaedia Brittanica (1969) Vol.21 167

6. Science and the Future 89

7. Robert M. Wald (Asst. Prof. Enico Ferm Institute, University of Chicago) 114

081
167987

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R 089.9143

वर्ग संख्या........G.U.R– V   आगत संख्या 167987

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गुरुदत्त

शिक्षा: एम. एस. सी.

8-12-1894 से 8-4-1989

लेखक की वेद, उपनिषद, दर्शन एवं वैदिक विज्ञान पर प्रमुख रचनाएं

हिन्दी साहित्य सदन
www.hindisahityasadan.com
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 देश बंधु गुप्ता रोड,
करोल बाग, नई दिल्ली-110 005. फोन : 23553624, 23551344
ई-मेल : indiabooks@rediffmail.com, hindisahityasadan@gmail.com

81-88388-73-4

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar